विद्वत परिषद द्वारा समीक्षित पत्रिका

Peer Reviewed Journal

ISSN 2349-1906

साहित्य यात्रा

वर्ष 10 अंक 42 अप्रैल-जून, 2025

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

'प्रकाश मनु विशेषांक'

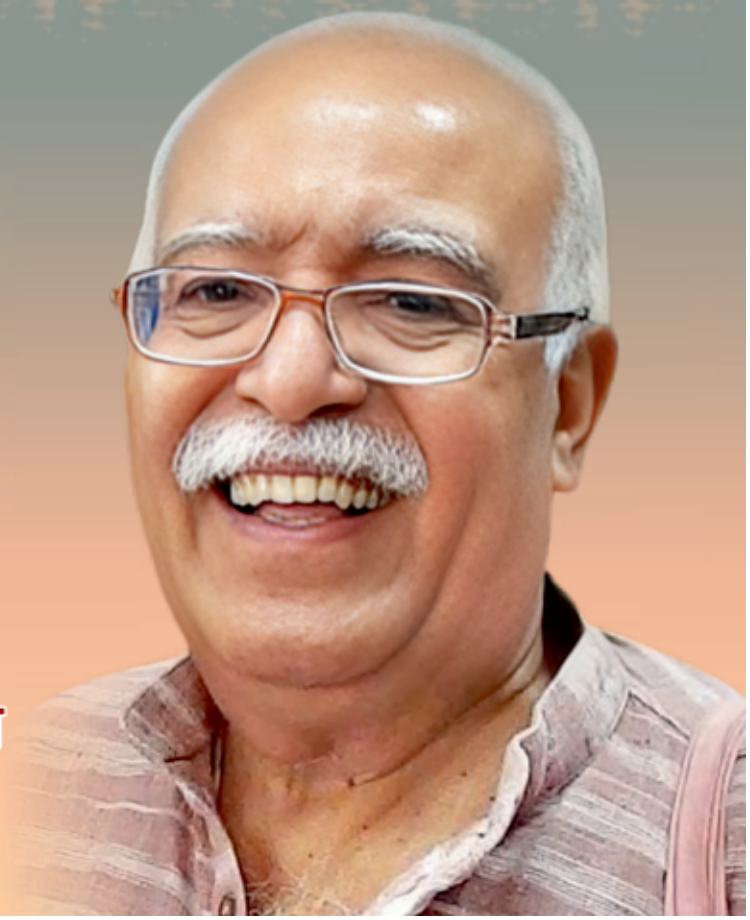

संपादक

कलानाथ मिश्र

मंत्रिमंडल सचिवालय, बिहार सरकार द्वारा आयोजित सृजनात्मक लेखन कार्यशाला (हिंदी कथा साहित्य) में साहित्य यात्रा के संपादक, कथाकार डॉ. कलानाथ मिश्र, डॉ. शिवदयाल, डॉ. ध्रुव कुमार, डॉ. वरुण कुमार और निदेशक श्री सुमन जी प्रतिभागियों को प्रमाण पत्र प्रदान करते हुए।

संबोधित करते हुए मंत्रिमंडल सचिवालय, राजभाषा विभाग के निदेशक श्री सुमन कुमार

मंत्रिमंडल सचिवालय, बिहार सरकार के राजभाषा विभाग द्वारा आयोजित सृजनात्मक लेखन कार्यशाला में सभा को संबोधित करते हुए राजभाषा विभाग के निदेशक श्री सुमन कुमार।

अनुग्रह नारायण महाविद्यालय, पटना और हिंदवी के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित 'हिंदी कैंपस कविता' का उद्घाटन करते हुए हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ. कलानाथ मिश्र, कवि डॉ. राकेश रंजन, वरिष्ठ कवि आलोकधन्वा, चर्चित कवयित्री निर्मला पुतुल और डॉ. संजय कुमार सिंह।

विद्वत परिषद् द्वारा समीक्षित पत्रिका

Peer Reviewed Journal

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा का साक्षी

संपादक

कलानाथ मिश्र

साहित्य यात्रा
साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा का साक्षी

सदस्यता फार्म

एक अंक	:	150/- (डाक खर्च के साथ)
'साहित्य यात्रा' विशिष्ट सदस्यता	:	2100/-
एक वर्ष (4 अंक)	:	600/- (डाक खर्च सहित)
तीन वर्ष (12 अंक)	:	2000/- (डाक खर्च सहित)
संस्थागत मूल्य (3 वर्ष)	:	2100/-
आजीवन सदस्यता	:	25000/-
विदेश के लिए (3 अंक)	:	60 डॉलर

(पटना के बाहर के चेक पर कृपया बैंक कमीशन के 40/- रूपये अतिरिक्त जोड़ दें।)

उक्त दर के अनुरूप मैं चेक / ड्राफ्रट संलग्न कर रहा हूँ। ऑन लाईन खाते में डाल दिया हूँ (रेपफरेन्स नं.) कृपया मुझे ग्राहक बना कर मेरी प्रति निम्न पते पर भिजवाएँ।

नाम :-	पद :-
पता :-	
दूरभाष 1 :	दूरभाष 2 :
शहर :	पिन नं. :-
देश :	ईमेल -
संकाय / विभाग / विद्यालय :	

यहाँ से काटिए

भुगतान की जानकारी

नकद/बैंक रकम : रु. ..... द्वारा.....

डी0डी0/प्रत्यक्ष हस्तांतरण/चेक/बैंक का नाम :.....

डी0डी/चेक/स्थानान्तरण संख्या :..... दिनांक :.....

दिनांक :		हस्ताक्षर (या पूरा नाम लिखें)	

ऑनलाइन हस्तांतरण विवरण :- साहित्य यात्रा, पंजाब नेशनल बैंक,
एस.के. पुरी शाखा, पटना-1

खाता क्रमांक- 6236000100016263, IFSC- PUNB0623600

वेबसाईट - www.sahityayatra.com

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा का साक्षी

(पीयर रिव्युड जर्नल)

वर्ष-10 | अंक-42 | अप्रैल-जून 2025

परामर्शी

डॉ॰ सूर्य प्रसाद दीक्षित

डॉ॰ प्रेम जनमेजय

डॉ॰ हरीश नवल

सम्पादकीय सलाहकार

श्री आशीष कंधवे

समीक्षक मंडल

प्रो. शैलेन्द्र कुमार चौधरी
संकायाध्यक्ष, मानविकी संकाय
(पूर्व विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, कॉलेज ऑफ कॉमर्स)

प्रो. प्रतिभा सहाय
(पूर्व आचार्य, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग)

डॉ. सुजीत दूबे
(अध्यक्ष एवं एसोसिएट प्रोफेसर, मनोविज्ञान विभाग, ए.एन. कॉलेज, पटना)

उप-संपादक

डॉ. करुणा पीटर 'कमल'

सहायक संपादक

डॉ. अमित कुमार मिश्रा

कार्यालय सहयोग

प्रिया कुमारी

साज-सज्जा

निशिकान्त / मनोज कुमार

संपादक

कलानाथ मिश्र

साहित्य यात्रा में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखकों के हैं जिनसे संपादक, प्रकाशक, मुद्रक एवं पत्रिका से जुड़े किसी भी व्यक्ति का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। सभी विवादों का निपटारा पटना क्षेत्र के अन्तर्गत सीमित है। पत्रिका में संपादन से जुड़े सभी पद गैर-व्यावसायिक एवं अवैतनिक है। पत्रिका में प्रकाशित किसी भी आलेख का पुनार्प्रकाशन के पूर्व संपादक की अनुमति अनिवार्य है।

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा का साक्षी

RNI No. : BIHHINO5272
ISSN 2349-1906

विश्व विद्यालय अनुदान आयोग (UGC) द्वारा पूर्व अनुमोदित

विद्वत परिषद् द्वारा समीक्षित पत्रिका

© स्वत्वाधिकार सुरक्षित
प्रकाशित सामग्री के पुनः उपयोग के लिए लेखक,
अनुवादक अथवा **साहित्य यात्रा** की स्वीकृति अनिवार्य है।

संपादकीय कार्यालय
'अभ्युदय'
ई-112, श्रीकृष्णपुरी
पटना-800001 (बिहार)
मोबाइल : 8434880332/09304302308/09835063713/9546138889
ई-मेल : sahityayatra@gmail.com
kalanath@gmail.com
वेब साईट : http:/www.sahityayatra.com

मूल्य : ₹100/- (एक सौ रुपये मात्र)

प्राप्ति स्थान :

पटना-
आलोक कुमार सिंह, मैग्जीन हाउस, शालीमार स्टूडियो के पास,
सहदेव महतो मार्ग, बोरिंग रोड, पटना-800001
दिल्ली -
1. आर.के. मैगजीन सेन्टर, क्रिश्चियन कॉलोनी, पटेल चेस्ट,
दिल्ली, वि.वि., दिल्ली-11007
2. राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, मंडी हाउस, नई दिल्ली

शुल्क '**साहित्य यात्रा**' के नाम पर भेजें।

'**साहित्य यात्रा**' त्रैमासिक डॉ॰ कलानाथ मिश्र के स्वामित्व में और उनके द्वारा 'अभ्युदय' ई-112, श्रीकृष्णपुरी, पटना-800001, बिहार से प्रकाशित तथा ज्ञान गंगा क्रियेशन्स, पटना से मुद्रित। स्वामी/संपादक/प्रकाशक/मुद्रक : प्रो. कलानाथ मिश्र।

अनुक्रम

संपादकीय 07

साक्षात्कार

मैंने बचपन में ही अपने आपको साहित्य देवता के चरणों में अर्पित कर दिया था! 11
प्रकाश मनु

संस्मरण

प्रकाश मनु : आत्मीयता का स्पंदन 43
रामदरश मिश्र

मेरे मित्र और एक आत्मीय शख्सियत 51
हरिपाल त्यागी

आदमी कुछ अलग-सा 56
देवेन्द्र कुमार

सतत परिश्रम और संकल्प की सच्ची प्रतिमूर्ति 62
दिविक रमेश

मित्रता की लंबी पगडंडियाँ और रास्ते 70
ब्रजेश कृष्ण

सतत बहता सोता 82
सूर्यनाथ सिंह

प्रकाश मनु स्मृतियाँ जो कभी विस्मृत नहीं होंगी 89
डॉ. शकुंतला कालरा

कविता

मानसरोवर के हंस 102
बालस्वरूप राही

आलेख

प्रकाश मनु : सदाशय पारदर्शिता 103
गिरधर राठी

उजास भरी जिंदगी के सपने दिखाती प्रकाश मनु की कविताएँ 108
सविता मिश्र

तुम बेहिसाब कहाँ भागे जा रहे हो प्रकाश मनु? 117
प्रियदर्शन

बाल-सखा प्रकाश मनु का रचना-वैविध्य 121
आरती स्मित

उजली हँसी के कथाकार प्रकाश मनु 133
मो. अरशद खाँ

बच्चों को रिझाते हैं प्रकाश मनु के बाल नाटक 141
अशोक बैरागी

संस्मरण

सतत साधना और संघर्षों से सुंदर होती प्रकाश मनु की दुनिया 164
श्याम सुशील

आलेख

बहुत अनूठी और रसमय है प्रकाश मनु की रामकथा 171
सूर्यकांत शर्मा

संस्मरण

मेरे मन्नू भाई उर्फ प्रकाश मनु 181
रमेश तैलंग

प्रकाश मनु सर जब 'साहित्य अमृत' के संयुक्त संपादक बनकर आए 189
प्रेमपाल शर्मा

आलेख

जिंदगी को मायने देने वाली मर्मस्पर्शी कहानियाँ 195
मंजुरानी जैन

प्रकाश मनु की कविताएँ : संभावनाओं का नया आकाश 203
सुरेश्वर त्रिपाठी

लोक के आलोक में स्नात मनु का मन 215
डॉ. रामशंकर भारती

भावों की पुण्य सलिला है प्रकाश मनु की रामकथा 221
पद्मा मिश्रा

संस्मरण

संवेदनाओं की स्याही से लिखी प्रकाश मनु की मर्मस्पर्शी कविताएँ 227
श्रीमती नीलिमा करैया

आलेख

हम उनसे इतना प्रकाश ले सकते हैं कि हमारी आत्माएँ जगमगा उठेंगी 237
अभिषेक मिश्र

संस्मरण

हिंदी बाल उपन्यासों के मौन नायक व साधक प्रकाश मनु जी 245
अमित कुमार

सम्पादकीय

आज के युग में बचपन खोता जा रहा है। उनका बचपन किताबों के बोझ, डिजिटल खिलौनों, मोबाइल, वीडियो गेम आदि में दबकर रह गया है। ऐसे समय में बाल साहित्य का महत्व दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। एक समय था जब नंदन, चंपक, नन्हे सम्राट, बाल हंस, चुनूमुनू, चकमक, बाल भास्कर आदि बच्चों की पत्रिकाएँ हर घर में देखी जा सकती थी। पंचतंत्र की कहानियों के बीच पशु-पक्षियों से बच्चों में मानवीय गुणों का विकास होता था, किन्तु आज बाल साहित्य और बाल पत्रिकाओं का हिन्दी में अभाव हो गया है। ऐसे में प्रकाश मनु जैसे वरिष्ठ एवं यशस्वी बाल साहित्यकार के अवदानों को रेखांकित करना महत्वपूर्ण हो जाता है। प्रकाश मनु आत्मश्लाघा से दूर एकांत साधक की तरह बाल साहित्य का सृजन करते रहे। इन्होंने कई बाल पत्रिकाओं का कुशल संपादन भी किया।

वस्तुतः बाल साहित्य रचने के लिए साहित्यकार के भीतर बचपन का उतर आना आवश्यक होता है, जहाँ रचनाकार को बच्चा बनना पड़ता है। उनकी तरह सोचना पड़ता है और सरल, सहज भाषा में उन तक बातों को पहुँचाना पड़ता है, यह बहुत बड़ी जिम्मेदारी होती है। एक बाल साहित्यकार को एक काल्पनिक लोक का निर्माण करना पड़ता है और उसमें जीवन के यथार्थ का समुचित समावेश भी करना पड़ता है। प्रकाश मनु से बातकर ऐसा प्रतीत हुआ कि उनके भीतर एक बालक बैठा है। कई साहित्यकारों ने बाल साहित्य तो रचा, किन्तु न उनका मन बच्चा हो सका और न लेखन में वह बचपन ही उतर सका। मनु जी लिखते हैं :-

हम हैं नन्हे वीर सिपाही
भारत देश विशाल के,
हमीं मुकुट हैं मणियों वाले
इसके उज्ज्वल भाल के!

मनु जी का रचना संसार उनके व्यक्तित्व की तरह ही व्यापक है। बच्चों और किशोरों की कल्पना और उनकी तर्क-शक्ति के विस्तार के लिए वे खुला आसमान मुहैया कराते हैं। किशोर उपन्यास 'खजाने वाली चिड़िया' पाठकों को जीवन के उबड़-खाबड़ रास्तों पर दौड़ाते हुए, उन्हें जीवन के सत्य-असत्य का ज्ञान कराती है। यह उन्हें जीवन मूल्यों का संस्कार देने के साथ-साथ मन का परिष्कार करती है। इस उपन्यास के जरिए मनु जी यह स्पष्ट करते हैं कि बच्चों को उपदेश देने की जरूरत नहीं है। कथा-कहानी के माध्यम से उनके सामने ऐसे आदर्श रखने चाहिए, जिससे उनकी अंतरात्मा खुद को वैसा ही अच्छा कार्य करने या अच्छा बनने की प्रेरणा प्रदान करे।

मुझसे बातचीत के क्रम में प्रकाश मनु जी सहज ही कहते हैं :-

भाई मिश्र जी, मेरा जीवन एक खुली किताब है। सब कुछ पारदर्शी। न मैंने कभी कुछ छिपाया, न छिपाना चाहा। जो भी अच्छा-बुरा हूँ, आपके सामने हूँ। आप जहाँ से भी चाहें, इस किताब को पढ़ सकते हैं। मेरी कहानी एक ऐसे लेखक की कहानी है, जो बचपन से ही कुछ अलग तो जरूर थी। और एक दीवानगी सी थी उसमें। एक विचित्र दीवानगी, वही मुझे जाने-अनजाने लेखक बना रही थी....

प्रकाश मनु एक बहुआयामी व्यक्तित्व के स्वामी हैं। उन्हें मैं विगत पैंतीस वर्षों से जानता हूँ। वे एक श्रेष्ठ पत्रकार तो रहे ही हैं, साथ ही उनका साहित्यिक रूप भी प्रभावी है। बाल साहित्य के मर्मज्ञ मनु जी ने उत्कृष्ट कहानियों और कविताओं का सृजन किया है।

मनु जी के भीतर साहित्यिक चेतना का उदय 'धर्मयुग' और 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' से हुआ। 'धर्मयुग' और 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' पत्रिकाएँ साहित्य के नवदूतों की तरह मेरे पास आतीं और जितना कुछ उनके जरिए मैं साहित्य की दुनिया में पैठ सकता था, मैं पैठने, सीखने और रमने की कोशिश करता। उनका लिखा उपन्यास 'कथा सर्कस' बहुत चर्चित हुआ था। 'यह जो दिल्ली है' और 'पापा के जाने के बाद' उनके अन्य चर्चित उपन्यास हैं।

मुझे 'पापा के जाने के बाद' बहुत भाया था। इस उपन्यास में मनु जी ने जिस प्रकार एक चित्रकार के संघर्षों को प्रस्तुत किया, वैसा बहुत कम रचनाओं में आ पाया। वसंतदेव कलाकार है। उसके तनाव को मानो लेखक ने खुद जिया है। वसंतदेव के देहावसान के बाद भी वह था। और उसका संघर्ष व्याप्त है, जो पाठक को मथता है। अंतर्विरोधों की ताकत को प्रकाश मनु ने बखूबी दर्शाया है।

दरअसल महानगर और महानगरीय वेदना प्रकाश जी के चिंतन का मुख्य विषय रहा है। उनकी रचनाओं में वह अकसर मुखरित होता है। मुझे इस उपन्यास में इस वेदना की अनुभूति बार-बार हुई। ''जो हर क्षण जलेगा, वही सच्चा रचनाकार होगा'' - प्रकाश मनु का यह कथन सच्चा और प्रेरक लगता है। वे मेरे मित्र और सहयात्री रहे हैं। उनके लेखन और उनके मानव को सलाम!

बच्चों में शिक्षण और सामाजिकता की समझ विकसित करने में बाल साहित्य का बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है। बाल साहित्य की, बालकों के मानसिक विकास में बड़ी भूमिका रही है। बाल साहित्य के रचनाकार बाल मनोविज्ञान को समझकर कविता, कहानी, चित्रकथा आदि के माध्यम से बालकों के भीतर जिज्ञासा जगाने का काम करते रहे हैं। बाल साहित्य की रोचकता बच्चों में जिज्ञासा और लोलुपता पैदा करती है, जिस आकर्षण में बंधकर बच्चे शैक्षणिक गतिविधियों में मनोयोग से जुड़ते हैं। पौराणिक काल से ही बच्चों को शिक्षा देने के लिए घर से लेकर गुरुकुल तक कविता-कहानियों की एक लंबी परंपरा रही है, जहाँ मनोरंजन के साथ-साथ विविध क्षेत्र के ज्ञान से भी बाल मन का उन्नयन किया जाता रहा है। वर्तमान समय की इस सच्चाई को दुखी मन से भी स्वीकार करना ही होगा कि आज की पीढ़ी के बच्चे मोबाइल आदि की सम्मोहक दुनिया में बहुत अधिक उलझ गए हैं और उनका संबंध बाल पत्रिकाओं,

कॉमिक्स आदि से लगभग विच्छेद-सा हो गया है। बाल पत्रिकाओं और साहित्य के माध्यम से बच्चों में जो समझ विकसित की जा रही थी, उसका मार्ग आज अवरुद्ध होने लगा है, जिसका प्रभाव कई बार बहुत ही घातक और विनाशकारी रूप में देखना पड़ रहा है। बाल मनोविज्ञान को समझते हुए उसकी रोचकता के अनुकूल अनेक प्रसिद्ध साहित्यकारों ने लेखन कार्य किया है। कई बाल पत्रिकाएँ भी व्यापक रूप से प्रसिद्ध हुई हैं। पुराने समय में 'बालक', 'गोलमाल' जैसी पत्रिकाओं के माध्यम से बिहार ने भी बाल साहित्य को बहुत अधिक विकसित किया है। बाद के दिनों तक हिंदी प्रदेशों से कई बाल पत्रिकाएँ प्रकाशित होती रही हैं। इन पत्रिकाओं में 'नंदन', 'नन्हे सम्राट', 'बाल हंस' 'बाल भारती', 'चंदा मामा', 'चंपक', 'पराग', 'चकमक', 'बाल भास्कर' जैसी पत्रिकाएँ तो हाल के दिनों तक प्रकाशित होती रही हैं। इन पत्रिकाओं ने बाल मनोविज्ञान को बहुत अधिक प्रभावित किया है। इन पत्र/पत्रिकाओं के माध्यम से बाल साहित्य को विकसित करने का काम सुगम हुआ। बाल साहित्य के रचनाकारों ने गद्य और पद्य दोनों ही विधाओं में लेखन कर बच्चों को साहित्य के प्रति आकर्षित किया।

इन्हीं लेखकों में एक महत्वपूर्ण नाम है श्री प्रकाश मनु जी का, जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से बाल मन को न सिर्फ गुदगुदाया है बल्कि उनके स्वर्णिम भविष्य की नींव भी रखी है। प्रसंगवश बतलाता चलूं कि प्रकाश मनु जी का मूल नाम चंद्रप्रकाश विग है। प्रकाश मनु जी बहुचर्चित बाल पत्रिका 'नंदन' के संपादकीय से लंबे समय तक जुड़े रहे हैं। इसके साथ ही प्रसिद्ध बाल पत्रिका 'बाल वाटिका' के संपादकीय में भी इनके संपादन कौशल का साक्षात्कार होता है। इन्होंने स्वयं बाल साहित्य की शताधिक पुस्तकों का सृजन किया है। साथ ही इनकी एक विशेष उपलब्धि यह भी है कि इन्होंने बाल साहित्य पर शोधपरक कार्य भी हिंदी साहित्य में पहली बार महत्वपूर्ण तरीके से किया है। बाल साहित्य पर लिखे गए शोधपरक पुस्तकों में 'हिंदी बाल साहित्य का इतिहास', 'हिंदी बाल कविता का इतिहास', 'हिंदी बाल साहित्य के शिखर व्यक्तित्व' तथा 'हिंदी बाल साहित्य : नई चुनौतियाँ और संभावनाएँ' जैसी पुस्तकों का लेखन अपने आप में अनूठा कार्य रहा है।

बाल साहित्यकार के रूप में और उसपर शोधपरक कार्य करने वाले स्कॉलर के रूप में प्रकाश मनु जी को सर्वाधिक ख्याति मिली है लेकिन उनका लेखन इतने तक ही सिमटा हुआ नहीं है। उन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास, जीवनी, समीक्षा, साक्षात्कार आदि के क्षेत्र में भी व्यापक लेखन किया है। 'यह जो दिल्ली है', 'कथा सर्कस', 'पापा के जाने के बाद' उनके उपन्यास हैं, जो व्यापक रूप से चर्चित हुए हैं। उन्होंने कई जाने-माने साहित्यकारों के जीवन प्रसंगों और रचनाधर्मिता पर भी कार्य किया है। इन लेखकों में रामविलास शर्मा, रामदरश मिश्र, विष्णु खरे, देवेंद्र सत्यार्थी, शैलेश मटियानी आदि प्रमुख हैं।

इसी दौरान उनसे जुड़े कई संस्मरण रचनाकारों ने साहित्य यात्रा को प्रेषित किए। कुछ लेख आदि भी पत्रिका को प्राप्त हुए हैं। ऐसे में सहज ही यह विचार बना कि हिन्दी के इतने लोकप्रिय लेखक और जीवंत व्यक्तित्व के स्वामी प्रकाश मनु जी पर एक विशेषांक निकाला जाए, जिसमें उनपर केंद्रित सभी रचनाओं को एकसाथ रखा जा सके। पत्रिका परिवार की इसी महत्वाकांक्षा के परिणाम स्वरूप यह अंक साकार हुआ है।

'साहित्य यात्रा' के इस अंक में सुप्रसिद्ध बाल साहित्यकार आदरणीय प्रकाश मनु जी के साथ संपादक प्रो. कलानाथ मिश्र की लंबी बातचीत को प्रकाशित किया जा रहा है। इसके साथ ही इस अंक में प्रकाश मनु जी के लेखन और व्यक्तित्व को उजागर करने वाले कई प्रमुख संस्मरण, लेख और बालस्वरूप राही जी की कविता प्रकाशित किए गए हैं। इन संस्मरणों में वरिष्ठ साहित्यकार रामदरश मिश्र, हरिपाल त्यागी, देवेंद्र कुमार, दिविक रमेश, ब्रजेश कृष्ण, शकुंतला कालरा, प्रेमपाल शर्मा, रमेश तैलंग, सूर्यनाथ सिंह आदि के संस्मरण इस अंक में शामिल हैं। ये संस्मरण समग्र रूप से प्रकाश मनु जी के व्यक्तित्व के विविध आयामों को उद्घाटित करने में सक्षम हैं। इन संस्मरणों के साथ गिरधर राठी, प्रियदर्शन, मंजुरानी जैन, सविता मिश्रा, आरती स्मिता, मो. अरशद खान, अशोक बैरागी आदि के आलेख वरिष्ठ बाल साहित्यकार प्रकाश मनु की रचनाधर्मिता को उजागर भी करते हैं और उसका सम्यक मूल्यांकन भी। इन आलेखों के माध्यम से प्रकाश मनु जी की कविता, बाल साहित्य, उपन्यास आदि के संदर्भो को संपूर्ण परिपेक्ष्य में उजागर करने का सतत् प्रयास किया है। वैसे तो प्रकाश मनु जी की रचनात्मक उपलब्धियों को किसी एक पुस्तक अथवा पत्रिका के किसी एक अंक में समाहित कर पाना कठिन ही नहीं, असंभव है। अतः समयानुसार उन रचनाओं को आगे के अंकों में प्रकाशित करने का हमारा प्रयास रहेगा। यदि यह वामन प्रयास पाठकों को थोड़ा भी संतोष दे पाता है तो मैं अपने श्रम को सार्थक समझूँगा।

प्रिय पाठकों! विगत 11वर्षों में साहित्य यात्रा को आपका भरपूर सहयोग और स्नेह मिला। जिन रचनाकारों ने अपनी रचनात्मक सहयोग पत्रिका को दिया है। उनके प्रति साहित्य यात्रा परिवार हृदय से आभारी है।

आज के युग में पत्रिका का नियमित प्रकाशन अत्यंत दुष्कर कार्य हो गया है। जिन पाठकों ने पत्रिका की सदस्यता ली है, उन्हें धन्यवाद देता हूँ, किन्तु खेद इस बात का है कि अधिकांश पाठक पत्रिका निःशुल्क प्राप्त करना चाहते हैं। तीन महीने पर भी पत्रिका के लिए 100, 200 रुपये खर्च करना, उन्हें नागवार गुजरता है।

ऊपर से सरकार और डाक विभाग द्वारा पत्रिका पोस्टिंग की लागत में जो छूट मिलती थी, वह भी अब नहीं मिलती है।

पत्रिका के पोस्टिंग में पहले 20 रुपया लगता था, अब लगभग 45 रुपया लगता है। मुद्रित सामग्री के लिए बुक पोस्ट में विशेष छुट दी जाती थी, किन्तु वह राशि अब बहुत अधिक हो गई है। ऐसी स्थिति में पत्रिका भेजने की राशि बहुत बढ़ गयी है। मुद्रण का खर्च बहुत अधिक हो जाने की स्थिति में पत्रिका का निरंतर प्रकाशन अत्यंत विकट हो गया है। अतः पाठकों से अनुरोध है कि वे पत्रिका की सदस्यता ले, ताकि पत्रिका नियमित चल सके।

कलानाथ मिश्र

मैंने बचपन में ही अपने आपको साहित्य देवता के चरणों में अर्पित कर दिया था!

वरिष्ठ साहित्यकार प्रकाश मनु से 'साहित्य-यात्रा' के संपादक कलानाथ मिश्र की बातचीत

कलानाथ मिश्र - मनु जी, आपको एक लंबे अरसे से पढ़ता आ रहा हूँ। आप साहित्य-यात्रा के सबसे चर्चित लेखक भी हैं, जिनके लेख और संस्मरणों पर हमें पाठकों की बहुत प्रतिक्रियाएँ मिलती हैं। आपकी पचहत्तरवीं वर्षगाँठ पर आपका अभिनंदन करते हुए साहित्य-यात्रा एक सुंदर विशेषांक भी निकाल रही है। तो आज मन है, इस अवसर पर आपसे कुछ खुलकर बातें भी हों...!

प्रकाश मनु - जी, स्वागत है भाई मिश्र जी। मेरा जीवन एक खुली किताब है। सब कुछ पारदर्शी। न मैंने कभी कुछ छिपाया, न छिपाना चाहा। जो भी अच्छा-बुरा हूँ, आपके सामने हूँ। आप जहाँ से भी चाहें, इस किताब

को पढ़ सकते हैं। मेरी कहानी एक ऐसे लेखक की कहानी है, जो बचपन से ही कुछ अलग तो जरूर था और एक दीवानगी सी थी उसमें। एक विचित्र दीवानगी, वही मुझे जाने-अनजाने लेखक बना रही थी...

कलानाथ मिश्र - तो चलिए इस दीवानगी से ही बात शुरू की जाए। आपने कहा कि एक दीवानगी आपमें बचपन से ही थी। तो यह दीवानगी किस तरह की थी। किस चीज के लिए थी। आज इतने बरस बाद आप उसे कुछ-कुछ समझ तो पाए होंगे। मैं चाहूँगा कि आप साहित्य-यात्रा के पाठकों को जरा इस बारे में बताएँ।

प्रकाश मनु - जी, मिश्र जी! शुरू-शुरू में तो यह दीवानगी कहानी के लिए थी और आप कह सकते हैं कि बहुत छुटपन से थी। मैं शायद तीन-चार बरस का रहा होऊँगा, तभी से; क्योंकि मुझे उस दौर में सुनी नानी की कहानियों की बड़ी धुँधली-सी स्मृति अब भी है। इनमें पिद्दा-पिद्दी की कहानी भी है, जिनमें खूब दोस्ती थी। पिद्दा को कहीं से दाल का दाना मिला, पिद्दी को चावल का। तो दोनों ने सोचा, चलो, खिचड़ी बनाते हैं। मगर पिद्दा था आलसी, सो पिद्दी ने अकेले ही खिचड़ी बनाई, मगर फिर पिद्दे को खूब छकाया भी। कहानी काफी गुदगुदाने वाली थी।

यह कहानी बाद में मैंने कइयों से सुनी भी, पढ़ी भी।...पर कहानी में जो रस और मिठास नानी पैदा कर लेती थी और थोड़ा गुदगुदाने वाला हास्य-विनोद भी, वह किसी और कहानी में न था। नानी सुनाती थीं तो मानो उनके मन का सारा रस ढुर पड़ता था।... मुझे सँभाले...पड़ोसियों के घर...मुझे बिठाकर बातों में लग जातीं। जिस घर में जातीं, वहाँ मुझे भी खूब अच्छी चिज्जी खाने को मिलती।

कलानाथ मिश्र - तो क्या आप मानते हैं, कि यही समय था, जबकि आपके लेखक बनने में भूमिका बन रही थी...?

प्रकाश मनु - जी हाँ, निस्संदेह। हालत यह थी कि बचपन में मुझे याद है, माँ और नानी की सुनाई गई कहानियाँ मुझे किसी और ही दुनिया में पहुँचा देती थीं। लगता था वह दुनिया मेरे आस-पास की देखी-भाली दुनिया से काफी अलग और कौतुक भरी है। उसमें हर क्षण कुछ न कुछ घटित होता था और मुझे लगता था, मैं बिना पंखों के उड़ रहा हूँ, उड़ता जा रहा हूँ एक अंतहीन आकाश में और जीवन-जगत के एक से एक नए रहस्यों को जान रहा हूँ। यों कहानी के जरिए बिना पंखों के उड़ने की कहानी शायद मेरे जीवन की सबसे अचरज भरी कहानी है, जिसने मुझे भीतर-बाहर से बदल दिया, और जिस दुनिया में मैं था, जी रहा था, उसके मानी भी कुछ बदल गए। दुनिया वही थी जिसमें सब जी रहे थे, पर मेरे लिए वह दुनिया कुछ अलग हो गई थी।

कलानाथ मिश्र - तो मनु जी, क्या उन कहानियों को सुनने का सौभाग्य हमारे पाठकों को भी मिलेगा?

प्रकाश मनु - हाँ, क्यों नहीं, मिश्र जी। हालाँकि मुझे लगता है कि सुनकर उन्हें यह न लगे कि अरे, इसमें क्या। ऐसी तो छत्तीस कहानियाँ आपने सुन रखी हैं...

कलानाथ मिश्र - न, न, आप सुनाएँ। आपके सुनाने के ढंग में ही कुछ ऐसा होगा कि वे समझ जाएँगे कि इस कहानी में ऐसा क्या था, जिसने आपके हृदय पर इतनी गहरी छाप छोड़ी।

प्रकाश मनु - जी, तो सुनाता हूँ मिश्र जी। मुझे बहुत अच्छी तरह याद है कि बचपन में माँ से सुनी कहानियों में अधकू की कहानी मुझे सबसे ज्यादा अच्छी लगती थी।

कलानाथ मिश्र - (विस्मय से) अधकू...? बड़ा विचित्र नाम है...

प्रकाश मनु - जी हाँ, अधकू...! भला क्यों? इसलिए कि यह अधकू बड़ा विचित्र था। एक हाथ, एक पैर, एक आँख और एक कान...! सब कुछ आधा। ऐसा विचित्र था अधकू।...और मैं भी तो कुछ ऐसा ही था। एकदम दुबला-पतला, सींकिया-सा। अगर घर में कोई कुछ कह देता तो माँ बरजतीं। बार-बार कहतीं, "मेरा कुक्कू ताँ अड़या-जुड़या होया तीला है। इन्नू कुज्झ न आक्खो!" यानी जैसे तिनते एक-दूसरे में अटके हों, वैसे ही मेरा कुक्कू तो बस किसी तरह जुड़ा हुआ है। हाथ लगते ही तिनके बिखर जाएँगे।...इसलिए इसे जरा भी छेड़ो मत। तो अधकू ऐसा ही था, विचित्र। पर बड़ा हँसमुख था। खुशमिजाज। हिम्मती और दिलेर भी और आसानी से हार मानने वाला नहीं था।... उसकी सबसे बड़ी ताकत थी उसकी माँ, जो उसे बेइंतिहा प्यार करती थी। उसके भाई चोरी और डाका डालने का काम करते थे। वे उसे मारने को तैयार हो गए, यह सोचकर कि यह सींकिया तो किसी काम का नहीं। पर माँ ने चुपके से बता दिया अधकू को कि "अधकू, खबरदार! आज की रात सो मत जाना। तेरे भाई ही तेरा काल बन गए हैं।" तो अधकू चुपचाप लेटा रहा और बाकी छहों भाई पत्थर पर घिस-घिसकर छुरियाँ चमकाने लगे, ताकि एक ही बार में अधकू का काम तमाम हो जाए। वे अधकू के सोने का इंतजार कर रहे थे। पर अधकू सो कहाँ रहा था? वह तो बस आँखें मींचे लेटा था और मन ही मन हँस रहा था। भाइयों को जोर-जोर से छुरियाँ चमकाते देखा तो मजे-मजे में बोला, "छुरियाँ ना चमका, कि अधकू जागदा...!"

सुनकर भाइयों को बड़ा गुस्सा आया। उनमें से एक बोला, "मरे अधकू दी माँ, कि अधकू जागदा...!" आखिर माँ के बहुत समझाने पर वे उसे भी साथ ले जाने लगे। पर अधकू बड़ी होशियारी से कुछ न कुछ ऐसा करता कि वे मुसीबत में पड़ जाते और आखिर भाग लेते। फिर एक बार वे राजा के यहाँ चोरी करने पहुँचे। अधकू के पास एक तूँ-तूँ बाजा था। एक तार का बाजा। अधकू की सबसे बड़ी दौलत। चलते-चलते अधकू ने उसे भी साथ ले लिया था। कुछ देर बाद जब

राजा के महल में उसके भाई चोरी कर रहे थे, तो अधकू परेशान। सोचा, यह तो अच्छी बात नहीं है। उसने झट अपना तूँ-तूँ बाजा निकाला। उस बाजे को बजाते हुए उसने सोते राजा को चेताया कि "अरे ओ राजा, तू तो लंबी तानकर सो रहा है, जबकि तेरे महल में घुस गए चोर...!" सुनते ही राजा हड़बड़ाकर उठा और अधकू के भाई पकड़े गए। राजा ने खुश होकर अधकू को अपना मंत्री और मुख्य सलाहकार बना लिया। पर अधकू को अभी चैन कहाँ था? अगले दिन बेड़ियाँ पहने अधकू के भाई दरबार में लाए गए तो अधकू बोला, "महाराज, ये मेरे ही भाई हैं। गलत रास्ते पर भटक गए थे। इनके पास कोई काम नहीं था। आप कोई ढंग का काम दें तो भला ये चोरी क्यों करेंगे?"

तब राजा ने अधकू के छहों भाइयों को अपने दरबार में रख लिया। यों अधकू जो आधा था, अधकू जो सींकिया था, विचित्र भी, उसने जीवन में एक सम्मानपूर्ण जगह बनाई और अपने भाइयों को भी तार दिया।

कलानाथ मिश्र - कहानी तो सच में सुंदर है मनु जी और इसका अंत तो बड़ा ही सुखद है...

प्रकाश मनु - धन्यवाद मिश्र जी, आपको अच्छी लगी। पर बात तो मन में धँसने की है। इस कहानी में कुछ बात थी कि यह मन में धँसती चली गई और मैं उसे आज तक नहीं भूल पाया। क्यों भला? शायद इसलिए कि मुझे लगता था, मैं ही अधकू हूँ। औरों से बहुत अलग। इसलिए कि मुझमें शारीरिक ताकत ज्यादा नहीं थी। दुनियादारी में कच्चड़। खेलकूद में कच्चड़... बहुत सारी चीजों में फिसड्डी। एकदम फिसड्डी। पर फिर भी लगता, कुछ है मुझमें, मैं भी कुछ कर सकता हूँ। सारी दुनिया से कुछ अलग कर सकता हूँ।...वह क्या चीज थी, जिस पर इतना भरोसा था मुझे? तब तो शायद बहुत साफ न रही होगी। पर आज जानता हूँ कि वह मेरी चुपचाप सोचते रहने की आदत थी और लिखने-पढ़ने की धुन, जो शायद पाँच-छह बरस से ही शुरू हो गई थी। वही धुन जो आगे चलकर मुझे साहित्य की खुली दुनिया में लाई।...

कलानाथ मिश्र - क्या ऐसी कोई और भी कहानी थी, जिसकी आपके मन पर बहुत गहरी छाप पड़ी?

प्रकाश मनु - जी हाँ मिश्र जी, माँ की सुनाई कहानियों में एक और कहानी थी। एक ऐसे राजकुमार की कहानी, जिसे सात कोठरियों वाले महल में कैद कर दिया गया था। उससे कहा जाता है कि वह छह कोठरियाँ तो देख ले, पर सातवीं न खोले; क्योंकि इससे उसका अनिष्ट हो सकता है। तो राजकुमार ने पहली कोठरी खोली, दूसरी कोठरी खोली, तीसरी कोठरी खोली, एक-एक कर छह कोठरियाँ देख लीं। पर सातवीं कोठरी...? उसने सोचा, क्या सातवीं कोठरी भी खोलकर देखूँ? जरा देखना तो चाहिए कि उसमें ऐसा क्या है? उसने धड़कते दिल से सातवीं

कोठरी का दरवाजा खोला और उसे खोलते ही भीषण हलचल हुई, एक तेज बवंडर-सा आ गया। भूचाल...! जैसे सिर पर आसमान टूट पड़ा हो। एक से बढ़कर एक विपत्तियाँ आईं। कभी मौत के खेल सरीखा खौलता हुआ समंदर, कभी आग की ऊँची-ऊँची प्रचंड लपटें, कभी फुफकारते हुए बड़े-बड़े विशालकाय साँप...! एक के बाद एक सात समंदर भीषण आपदाओं के!...और राजकुमार का जी थर-थर, थर-थर, थर-थर। पर उसने बड़ी हिम्मत और दिलेरी से एक-एक कर सातों समंदर पार किए। बीच-बीच में डरा, काँपा, लेकिन जूझा भी हर एक विपत्ति से। फिर एक ऐसे द्वीप पर आ पहुँचा, जहाँ सोने जैसे बालों वाली सुंदर राजकुमारी कैद थी। उसकी आँखों में करुण याचना, जिसने राजकुमार को द्रवित कर दिया। और फिर सोनबाला को कैदखाने से छुड़ाने की मुहिम ने उसे एक भीषण राक्षस के आगे ला खड़ा किया, जिसका भयानक अट्टहास ही धरती को कँपा देता था। पर राजकुमार उस राक्षस की गुफा में गया, और इतनी बहादुरी से भिड़ा कि राक्षस धड़ाम से गिरा...और एक जोर की चीख के साथ ही उसका सारा तिलिस्म खत्म!

कहानी के अंत में राजकुमार जब राजकुमारी को लेकर लौटता है तो उसके चेहरे पर विजेता होने की जो चमक है, जान पर खेलकर भी कुछ हासिल करने की चमक, वह कहानी सुनते समय हमारे दिल और आँखों में भी एक खुशी की कौंध भर देती थी। यों मुझे आज भी अच्छी तरह याद है कि कहानी सुनते हुए हर पल मेरी साँस अटकी रहती। लगता, आँधियों के बीच फँसा वह राजकुमार मैं हूँ। मैं ही हूँ। उसके साथ कुछ बुरा घटता, तो मन बुरी तरह तड़पने लगता। मैं अंदर ही अंदर छटपटाता और उसकी बेहद-बेहद मुश्किलों से भरी किसी छोटी सी जीत पर भी आँख में आँसू आ जाते। यों कोई अच्छी कहानी कैसे हमें अपने साथ बहा ले जाती है, यह मैंने अपने बचपन में बहुत अच्छी तरह जान लिया था।

कलानाथ मिश्र - मनु जी, ऐसी कहानियाँ मैंने सुनी तो बहुत हैं, पर आपने सुनाई तो मैं रोमांचित-सा हो गया।...आपका ढंग सुनने वाले को बाँध लेता है। शायद इसी तरह आप अपनी बाल कहानियों में भी जादू जगाते हैं...?

प्रकाश मनु - जी, जी भाई मिश्र जी! शायद इसलिए कि कहानी केवल शब्द नहीं हैं। बल्कि वह शब्दों के बीच के स्पेस में मौजूद होती है। उसके जादू को जगाना होता है और वह जागती है तो आपको पूरी तरह अपनी लपेट में ले लेती है।...तो मेरे तईं यह ऐसी ही कहानी थी। कहानी का जादू...! मेरा रोयाँ-रोयाँ उस समय कहानी की गिरफ्त में होता। मैं कहानी सुन नहीं रहा होता था। उसके भीतर चला जाता था। कहानी में समा जाता था। बल्कि सच तो यह है कि मैं कहानी में और कहानी मुझमें समा जाती थी। उस समय आस-पास की दुनिया और लोगों से बहुत ऊपर उठ जाता था मैं, और देर तक हवा में चक्कर काटता रहता। मुझे वास्तविक जमीन पर पैर रखने में बड़ी देर लगती थी। सच पूछिए तो इसके लिए काफी प्रयत्न करना पड़ता था और ये मेरे लिए बड़े कष्टकर क्षण होते थे।

यों कहानी के जरिए एक नहीं, कई निराली और अबूझ दुनियाएँ मेरे आगे खुलती चली गईं। और मैंने जाना - बड़े ही अचरज के साथ यह जाना कि जो दुनिया हमारे आस-पास है और जिसे हम हर घड़ी देखते हैं, अकेली वही दुनिया नहीं है। बल्कि इस दुनिया के भीतर बहुत सारी दुनियाएँ हैं और उन दुनियाओं के भीतर और बहुत-सी दुनियाएँ। तमाम रंगों और रहस्यों और अबूझ जिज्ञासाओं से भरी दुनियाएँ, जिन्हें जाने बिना हम अधूरे ही रहते हैं।... आज सोचता हूँ, मिश्र जी, कि यह सब कैसे संभव होता, अगर राजकुमार सातवीं कोठरी का दरवाजा न खोलता तो...? बाकी छह कोठरियों के दरवाजे तो हर कोई खोलता है, पर सातवीं कोठरी का दरवाजा कोई-कोई ही खोलता है और वही शायद अपने समय का नायक भी होता है।

कलानाथ मिश्र - जी, आपने बहुत सही कहा। सातवीं कोठरी का दरवाजा।...जो सातवीं कोठरी का दरवाजा खोलता है, वह खतरे मोल लेता है। और यह खतरे मोल लेना ही लेखक बनना है!

प्रकाश मनु - जी, बिल्कुल ठीक कहा आपने। खतरे मोल लिए बिना आप लेखक नहीं बन सकते।...मैं खुद अपनी जिंदगी के पचहत्तर बरसों के सफर पर नजर डालता हूँ, या कि पीछे मुड़कर देखता हूँ, तो बहुत-सी चीजें याद आती हैं।...चलिए, मैं आपको एक प्रसंग सुनाता हूँ। बहुत पहले का नहीं। बस, कुछ अरसा पहले का ही।...मुझे याद है, बरसों पहले एक साहित्यिक मित्र ने मुझसे सवाल किया था कि "मनु जी, जिस परिवार के आप हैं, उसमें जन्म लेकर भी आप लेखक कैसे बने?" उनका सवाल सुनकर मैं एक क्षण के लिए चुप रहा। फिर कहा, "भाई, इसका जवाब मैं बहुत जल्दी में, या दो-एक सतरों में नहीं दो सकता हूँ, इसलिए कि जवाब थोड़ा लंबा है।" लेकिन सच पूछिए तो सवाल मेरे भीतर गड़ गया और उस दिन से मैंने सोचना शुरू किया। सात भाई और दो बहनें। कुल नौ भाई-बहनों का हमारा बड़ा परिवार था। माता-पिता दोनों लगभग निरक्षर। मेरे परिवार में साहित्यकार होना तो दूर, कोई दूर-दूर तक भी साहित्य के निकट नहीं था। तो फिर मैं क्यों लेखक बना? कैसे...? और भाई मिश्र जी, जब मैं यह सोच रहा था, तो यही कहानी याद आ रही थी। मैं सोच रहा था, अगर इस कहानी का राजकुमार सातवीं कोठरी न खोलता तो जो रोमांचक चीजें उसके जीवन में घटित हुईं, वे कैसे होतीं? वह भी दूसरों की तरह एक सामान्य जीवन जीता और जीकर चला जाता। पर फिर कहानी कैसे बनती...? कहानी तो तभी बनती है, जब हम सारे खतरे उठाकर सातवीं कोठरी खोलते हैं और फिर एक से एक दिल को कँपा देनी वाली भीषण घटनाएँ घटती हैं, मुसीबतों के पहाड़ टूट पड़ते हैं, मन लगातार एक भीतरी द्वंद्व के बीच से गुजरता है। बुरी तरह टूट-फूट। आत्मध्वंस...!

आप को सच बताऊँ, किसी लेखक की जिंदगी में - अगर आप सच में लेखक हैं, जेनुइन लेखक हैं, तो कई बार तो ऐसी तकलीफ और निराशा के क्षण भी आते हैं कि लगता है, जैसे अपने-पराए सब साथ छोड़ गए। अकेलापन, विवशता, लाचारी। कभी बुरी तरह पराजय और

बेचारगी का अहसास भी। पर इन्हीं सब के बीच ही तो एक नवारुण प्रभात सूर्य की तरह जीवन का सत्य चमकता है और जीवन में वह आनंद भी महसूस होता है, जो किसी कदर योगियों की समाधि से कम नहीं है और दुनिया की बड़ी से बड़ी दौलत के आगे भी जो हेठा नहीं पड़ता। यह मनुष्य का मनुष्य होना है, एक आदमकद मनुष्य...!

कभी-कभी लगता है, मिश्र जी, शायद यही मेरे लेखक और कहानीकार होने का भी सच है। याद पड़ता है, अपने छात्र-जीवन में मैं बहुत होशियार विद्यार्थी माना जाता था। हर क्लास के सबसे अच्छे दो-तीन विद्यार्थियों में मेरा नाम चमकता था। माता-पिता और परिवार के लोगों का सोचना था कि मैं इंजीनियर बनूँ। मोतीलाल नेहरू इंजीनियरिंग कॉलेज इलाहाबाद में इंजीनियरिंग में दाखिले के लिए चयन भी हो गया, पर मैंने बहाना बनाया कि नहीं, मैं प्रोफेसर बनूँगा। मुझे इंजीनियर नहीं होना। उसके बाद आगरा कॉलेज, आगरा से भौतिक विज्ञान में एम. एस-सी. पास की। पर यहाँ तक आते-आते लगा, जैसे मन के अंदर बैठा कोई कबीर कह रहा है, "साइंस के प्रोफेसर होकर तो तुम जिंदगी भर चक्की के दो पाटों के बीच पिसते रहोगे, प्रकाश मनु। तो वह कब करोगे, जो करने के लिए तुम्हें भेजा गया है?" तभी जैसे इलहाम हुआ, मुझे तो साहित्य करना है। एक लेखक का, साहित्यकार का जीवन जीना है और उसके लिए जो भी मुश्किलें आएँ, मुसीबतें आएँ, उन्हें मैं सहन करूँगा, लेकिन जीवन वही जिऊँगा, जो मेरे मन में है।

तब से कितने बरस गुजर गए, पर वह क्षण, जब मुझे एक तरह का इल्हाम-सा हुआ था, मैं आज तक भूला नहीं। और वही क्षण था, जिसने मुझे पूरी जिंदगी भर के लिए एक अजब सी दीवानगी दे दी। घर वालों को मैंने अपना निर्णय बताया तो उन्हें लगा, लड़का पागल हो गया है। इसलिए कि यह वैसे ही था जैसे कि बिना कुछ आगा-पीछा सोचे, एक अथाह समंदर में कूद पड़ना था। वही एक क्षण था, जब लेखक होने का एक पूरा बिंब भीतर बना। लगा, अगर लेखक न हुआ तो जीना भी नहीं है। आधी रोटी खाकर रहूँगा, पर बनूँगा लेखक ही।

कलानाथ मिश्र - अब कुछ अपने लेखकीय जीवन के बारे में बताइए। क्या उसमें पग-पग पर मुश्किलें ही थीं, या बीच-बीच में खुशी और आनंद के पल भी आते थे?

प्रकाश मनु - निश्चय ही यह एक मिली-जुली कहानी थी, जिसमें दारुण तकलीफें भी थीं, खुशियाँ भी। एक धूपछाँही जिंदगी और यही इसका मजा भी था। इसलिए गहरे से गहरे दुख और तकलीफों में भी आप हँस सकते थे। और शायद यह न होता, तो मैं जी ही नहीं सकता था।...हाँ, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से शोध करने के बाद करीब दो साल बेरोजगारी के थे। यह आप कह सकते हैं, भीषण तकलीफों का समय था। हिंदी के विभागाध्यक्ष खंडेलवाल जी मुझे बहुत

चाहते थे। पर मैंने और सुनीता ने, जब अपने मन से विवाह किया और साथ रहने का निर्णय किया, तो वे काफी नाराज हो गए और बेहद दुखद स्थितियाँ बनती चली गईं। असल में मैं और सुनीता दोनों ही उनके निर्देशन में शोध कर रहे थे। हम दोनों को ही वे बहुत चाहते भी थे। पर जब वे नाराज हुए, तो उनका एक नया ही रूप हमने देखा, जो बड़ा ही त्रस भरा था।...और यही कारण है कि मुझे कहीं प्राध्यापकी नहीं मिली और बहुत ठोकरें खानी पड़ीं।...फिर हम दोनों की ही पंजाब के डी.ए.वी. कॉलेजों में नियुक्ति हुई, अलग-अलग शहरों में और किसी तरह सिलसिला चल पड़ा...

कलानाथ मिश्र - फिर आप दिल्ली कब आए...?

प्रकाश मनु - यह एक लंबी कहानी है मिश्र जी। पर चलिए, थोड़े से शब्दों में बता देता हूँ। असल में मैं और सुनीता पंजाब के अलग-अलग शहरों में थे। सुनीता अमृतसर के डी.ए.वी. कॉलेज फॉर वीमेंस में और मैं डी.ए.वी. कॉलेज, मलोट में। ये दोनों ही शहर पंजाब में थे, पर काफी फासले पर। कोई छह-सात घंटे की यात्रा थी। मैं शनिवार की रात अमृतसर जाता था, दिन भर वहाँ रुककर फिर रात की बस से मलोट लौटता था। पर यह वह समय था, जब भिंडराँवाले की वजह से आतंकवाद बहुत बढ़ता जा रहा था। आतंकवादी बस रुकवा लेते। फिर हिंदुओं को अलग लाइन में खड़ा करके गोलियों से भूल देते।...संयोग से मेरे साथ ऐसा तो नहीं हुआ, पर दूर से पत्थर मारकर बसों के शीशे तोड़ने का सिलसिला तो बहुत नजदीक से देखा ही। रात में अमृतसर से लौटते हुए, जिस बस में मैं बैठा था, उसके पास का ही शीशा एकाएक धमाके के साथ खील-खील हो गया। अगर मैं सावधान न होता, तो मेरा सिर बुरी तरह लहूलुहान हो जाता।...

यों पंजाब में मैं और सुनीता हम दोनों ही विद्याथियों में बहुत लोकप्रिय थे। विद्यार्थी हमें बहुत चाहते थे और अकसर घेरे रहते थे। हम भी खूब उत्साह से भरे रहते और अपने विद्यार्थियों की जो भी मदद हो सकती थी, जी-जान से करते थे। इस मामले में मेरे और सुनीता, दोनों के ही अनुभव बहुत सुखद थे।...पर दूसरी ओर भिंडराँवाले के आतंक के कारण हालात ऐसे बनते जा रहे थे कि साँस लेना तक कठिन था। तो तय किया कि अब यहाँ से चलकर दिल्ली रहना ठीक होगा। मेरी लिखने-पढ़ने में दिलचस्पी थी, तो सोचा कि पत्रकारिता में रहकर कुछ लिखने-पढ़ने का काम करूँगा। जो कुछ मिलेगा, गुजारा कर लूँगा।

दिल्ली आकर कोई दो-ढाई साल दिल्ली प्रेस में रहा, फिर हिंदुस्तान टाइम्स की लोकप्रिय बाल पत्रिका 'नंदन' के संपादकीय विभाग में आ गया। यहाँ जीवन थोड़ा सुस्थिर हुआ और लिखने-पढ़ने का सिलसिला चल निकला। यों मेरे जैसे कसबाई मिजाज के आदमी के लिए

दिल्ली भी एक बेगाना शहर ही था। पर यहाँ आकर लोक यायावर सत्यार्थी जी मिले, रामविलास जी मिले, रामदरश मिश्र मिले, शैलेश मटियानी मिले, विष्णु खरे मिले, बाबा नागार्जुन और त्रिलोचन मिले, दोस्त चित्रकार हरिपाल त्यागी मिले, और जीवन चल निकला।

कलानाथ मिश्र - आपने हिंदी के इतने बड़े-बड़े लेखकों के नाम लिये। इनसे मिलना तो आपके लिए सौभाग्य की बात रही होगी...?

प्रकाश मनु - निश्चय ही मिश्र जी। इसलिए दिल्ली चाहे मेरे लिए बहुत प्रिय शहर न हो, मैंने अपने उपन्यास 'यह जो दिल्ली है' में इसका कुछ वर्णन किया भी है, पर मैं इस बात के लिए दिल्ली का हमेशा कृतज्ञ रहूँगा कि यहाँ आकर हिंदी साहित्य के बड़े-बड़े दिग्गजों में मेरा मिलना हुआ और मैंने सभी के चरणों में बैठकर कुछ न कुछ सीखा। यह सुख, यह आनंद मेरे लिए इतना बड़ा है कि मैं कह सकता हूँ कि दुनिया का बड़े से बड़ा खजाना और बड़े से बड़ा पुरस्कार भी उसके आगे तुच्छ है...

कलानाथ मिश्र - मनु जी, कुछ थोड़ा बताएँ आप इस बारे में कि आपकी किस तरह इन लेखकों से मुलाकात हुई और आपने क्या महसूस किया...?

प्रकाश मनु - (हँसते हुए) यह तो इतना बड़ा सिलसिला है मिश्र जी, और एक से बढ़कर एक, इतने दुर्लभ और लाजवाब अनुभव हैं मेरे कि अगर इसके संबंध में बताने लगूँ, तो आपका पूरा इंटरव्यू शायद इसी में खप जाएगा।...न आप इससे बाहर आ पाएँगे और न मैं। (मुक्त हँसी) पर हाँ, प्रसंगवश एक-दो चीजें बताता हूँ।...हिंदी के दिग्गज कथाकार शैलेश मटियानी जी से पहले 'हंस' पत्रिका के दफ्तर और फिर बाद में हिंदुस्तान टाइम्स में मेरी बड़ी दिलचस्प मुलाकात हुई। वे खुद मुझे ढूँढ़ते हुए हिंदुस्तान टाइम्स आए थे। उनसे बातें शुरू हुईं तो समय का कुछ होश ही नहीं रहा। न उन्हें, न मुझे। और फिर मैं उन्हें और वे मुझे इस कदर भा गए कि फिर तो मटियानी जी से मेरी बहुत मुलाकातें हुईं और उनसे बहुत अंतरंगता भी हुई।

अच्छा, एक बात और। मटियानी जी जब भी मिलने आते, तो वे अपने बारे में बहुत खुलकर बताते थे। बहुत-बहुत सी बातें। बड़े दुख-दाह से भरी भी। तो उन दिनों उनकी अपनी कहानी खुद उनके मुँह से सुनने को मिली। बहुत कठिन जीवन था उनका। एक अनाथ बच्चा, जिसके भीतर सपने थे। किशोरावस्था में कसाई का काम करना पड़ा। पर उन्हीं दिनों थोड़ा-थोड़ा लिखना भी उन्होंने शुरू कर दिया था। एक दिन कसाई की दुकान पर कीमा कूट रहे थे, तो बगल से गुजरते, किसी शख्स ने बड़ा तीखा और काटने वाला व्यंग्य किया, "देखो, सरस्वती तक कीमा कूटा जा रहा है...!" सुनकर किशोर वय शैलेश मटियानी तिलमिला गए। इतना गुस्सा आया कि लगा, दीवार से सिर दे मारें। भीतर गहरी छटपटाहट। उस रात सोने से पहले वे देर तक दीवार में अपना

सिर मार-मारकर पुकारते रहे, "हे सरस्वती माँ, मुझे चाहे जितने दुख, चाहे जितनी तकलीफें देना, पर मुझे लेखक बनाना!...मैं बस, लेखक ही बनना चाहता हूँ, कुछ और नहीं।"

जितनी-जितनी उनकी जिंदगी में मुसीबतें आतीं, उतनी ही उनके भीतर यह पुकार गहरी होती जाती। तरुणाई में उनके मुंबई प्रवास की तकलीफदेह कहानी पता नहीं आपने पढ़ी है या नहीं। पर वह एक दिल दहला देने वाली गाथा है। हालाँकि उन्हें लगता, अच्छा है कि दुख और संकट मुझ पर टूट पड़े, और एक के बाद एक तकलीफें आई। अच्छा है कि मुझे भूखा रहना पड़ा, और मैंने पुलिस के डंडे तक खाए। पर अच्छा है...! इसलिए कि जितनी ज्यादा तकलीफें आएँगी, उतनी ही मेरे शब्दों में गहरी पुकार आएगी और मैं और-और अच्छा लिखूँगा! और सच ही, मटियानी जी की कहानियों का असर कितना गहरा होता है, दिलों में उनकी कैसी गहरी गूँज पैदा होती है, यह आप देश के हर हिस्से में मौजूद उनके हजारों पाठकों से जान सकते हैं। प्रेमचंद के बाद हिंदी का शायद ही कोई ऐसा साहित्यकार हो, जिसकी कहानियों को इतने पाठक मिले। पर क्या हम भूल सकते हैं कि मटियानी जी ने किन हालात में लिखा और वे क्या चीजें थीं, जो उन्हें लेखक बना रही थीं?

एक दफा मटियानी जी से हुई मुलाकात में जब मैं उनकी कहानी सुन रहा था, उनके लेखक होने की कहानी, तो मुझे बचपन में माँ से सुनी कहानियाँ याद आ रही थीं। फिर-फिर अधकू याद आ रहा था। एक हाथ, एक पैर वाला अधकू, जिसने बड़े-बड़ों को चुनौती दी और अपनी दुनिया बदलकर दिखा दी।...मैं भी तो शरीर से दुबला-पतला सा ही था। तिनके जैसा। पर मन बड़ा था। इसलिए अधकू मुझ पर छा गया। बाद में लिखना शुरू किया तो सोचता था, कि लिखूँगा तो चीजें बदलेंगी। कुछ थोड़े से लोग तो होंगे जो पढ़ेंगे और अंदर तक महसूस करेंगे। बहुत ज्यादा नहीं, तो दो-चार ही सही। बहुत है। किसी एक ने भी उसी भाव से पढ़ा, जो भाव कहानी लिखते समय आपके भीतर जनमा था, तो यही बहुत है। और ऐसा होता है...! यही शायद सच्चाई की ताकत है। यही लेखन की ताकत और सार्थकता भी है।

तो मिश्र जी, एक सच्चे लेखक का जीवन क्या होता है, उसकी खुद्दारी और स्वाभिमान क्या होता है, उसका जमीर क्या होता है और सच मानी में एक लेखक का खतरे मोल लेना क्या है, यह मैंने मटियानी जी के निकट रहकर सीखा। और अब भी उनकी बातें याद करता हूँ, तो भीतर एक कँपकँपी-सी उठती है। जिस तरह के दुख-दाह, गरीबी और विकट यथार्थ की कहानियाँ उन्होंने लिखीं, वैसी भला कौन लिख सका। पर वे कहानियाँ आती कहाँ से थीं, यह मटियानी जी से मिलकर आपको समझ में आता था।

कलानाथ मिश्र - चलिए, मनु जी, अब जरा आपकी कहानियों की बात की जाए। आपने कब से कहानियाँ लिखनी शुरू कीं। कब आपको लगा, कि भीतर कोई आपको कहानी लिखने के लिए

टेर रहा है और आप कहानी लिखे बगैर नहीं रह पाए। आपकी पहली कहानी कौन सी थी, और वह कब लिखी गई?

प्रकाश मनु - मिश्र जी, आपका सवाल बहुत अच्छा है, पर इसका उत्तर देने से पहले जरा मुझे अपने बचपन में जाने की इजाजत दीजिए, क्योंकि वहीं कुछ ऐसा था, जो जाने-अनजाने मुझे एक साथ कवि और कथाकार बना रहा था।...मुझे याद है बचपन में अक्षर-ज्ञान के बाद जब क, ल और म को मिलाकर कलम बना लेने का जादू मैंने जाना, उस दिन मेरी दुनिया में जैसे सबसे बड़ा चमत्कार हुआ था। कहीं भी अक्षर दिखाई देते, दीवार पर, अखबार में, किताबों में, या दुकानों के आगे लगे बड़े-बड़े साइनबोर्डों पर, तो मैं उन्हें मिलाकर पढ़ने लगता। एक अतृप्त प्यास, जो एक बार भड़क गई, तो शांत होने का नाम ही नहीं ले रही थी। पढ़ना पढ़ना और पढ़ना...! इसके अलावा कुछ सूझता ही न था। लगता था, मैं पागल हो गया हूँ, अक्षर पागल...। एक अजब सा दीवानी।

मुझमें पढ़ने-लिखने की रुचि देखी, तो श्याम भैया मेरे लिए चंद्रशेखर आजाद, भगत सिंह और सुभाषचंद्र बोस की जीवनियाँ ले आए। मैंने उन्हें पढ़ा तो मन में एक अलग-सी भावना पैदा हुई। जीवन में कुछ कर गुजरने की भावना और यह भी कि कोई बड़ा उद्देश्य सामने हो, तो आप अपना पूरा जीवन हँसकर दे देते हैं, देवता के चरणों में रखे गए किसी फूल की तरह।...फिर एक दिन श्याम भाईसाहब मेरे लिए जो पुस्तक लाए, उसने तो मेरी जिंदगी ही बदल दी। वह प्रेमचंद की कहानियों की किताब थी। किताब का नाम था, 'प्रेमचंद की श्रेष्ठ कहानियाँ'। उसमें 'ईदगाह', 'दो बैलों की कथा' समेत कई कहानियाँ बड़ी रुचि और आनंद से पढ़ गया। पर जब 'बड़े भाईसाहब' कहानी पढ़ी तो मैं हक्का-बक्का। सचमुच अवाक! मैंने अपने आप से कहा, "अरे, यह तो मेरे श्याम भैया की कहानी है। भला प्रेमचंद को कैसे पता चली...?"

तो मिश्र जी, उस दिन और कुछ हुआ हो या नहीं, पर मैंने कहानी की ताकत जरूर जान ली। एक की लिखी कहानी किसी जादू-मंतर से सबकी कहानी हो जाती है। एक के दिल में कुछ उमड़ता हो और वह उसे वैसे ही जिंदा और दमदार शब्दों में ढाल दे, तो जितने भी उसे पढ़ते हैं, सबके दिल में वही घुमड़ता है। मुझे लगा, अरे, यह तो दुनिया का सबसे बडा जादू है। महान करिश्मा! और यह साहित्य में घटित होता है, कहानी में। वाह, कैसा कमाल है?...बाद में प्रेमचंद की और कहानियाँ पढ़ीं। उनके उपन्यास 'गबन', 'निर्मला', 'कर्मभूमि', 'रंगभूमि', 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम' पढ़े, 'गोदान' पढ़ा, शरत, रवींद्रनाथ के उपन्यास पढ़े। उन दिनों हिंद पाकेट बुक्स से हिंदी साहित्य की बड़ी अच्छी किताबें आती थीं। एक-एक रुपए में संक्षिप्त रूपांतरण मिल जाते थे। कोई-कोई दो रुपए में। तब यह भी समझ न थी कि प्रेमचंद हिंदी के हैं, शरत, रवींद्र, बंकिम बंगला के। इसकी शायद कोई जरूरत भी न थी। सवाल तो कहानी का था,

कहानी जो दिल को छूती है, हर किसी के दिल को छूती है- सभी सीमाओं से परे। दुनिया के तमाम देशों की सरहदों से परे। कहानी में भी कहानी थी, उपन्यास में भी कहानी थी। मैं पढ़ता था और रोता था, रोता था और पढ़ता था।

सच पूछिए तो विश्व की इन महान और विलक्षण कृतियों में बीच-बीच में मनुष्य के भावनात्मक संबंधों के इतने करुण प्रसंग थे कि बिना रोए मैं पढ़ ही नहीं सकता था। हालाँकि कुछ समझ में आता था, कुछ नहीं। पर जो समझ में आता था, उसके सहारे जो चीज नहीं समझ में आती थी, उसके भी अर्थ खुलते जाते थे। और हाथ में किताब लिए मैं जान लेना चाहता था कि आगे क्या हुआ, आगे क्या, आगे क्या....? कई बार तो पढ़ते-पढ़ते ऐसे करुण प्रसंग आ जाते कि आँखों से लगातार गंगा-जमुना बहती। एक हाथ में किताब पकड़े, दूसरे से मैं आँसू पोंछता जाता और आगे पढ़ता जाता। पढ़ते-पढ़ते कई बार जोर से रोना छूट जाता, पर तब भी किताब के पन्ने पलटता जाता, क्योंकि यह जाने बिना निस्तार न था कि आगे क्या हुआ, आगे...?

उन दिनों मिश्र जी, घर में बिजली नहीं थी। बल्कि हमारे कस्बाई शहर शिकोहाबाद में ही बिजली अभी आई नहीं थी। लालटेन जलाई जाती। पर पूरे घर में दो-तीन ही लालटेनें होती थीं। तो मैं जो छत पर पढ़ रहा होता, अकसर रात की स्याही गहराने तक, जब तक अक्षरों का अनुमान लगा सकता था, पढ़ता...पढ़ता और पढ़ता ही रहता, क्योंकि कहानी का डंक मुझे चुभ गया था और जितना अधिक पढ़ता, नशा और गहराता जाता। उसकी गिरफ्त और-और तेज होती जाती। और शायद यही क्षण थे, जब जाने-अनजाने में मैं लेखक हुआ। भले ही उसका पता थोड़ा आगे चलकर लगा हो।...यों पहली कहानी 'यात्रा' तो कुरुक्षेत्र में लिखी गई। सन् 1977-78 के आस-पास, जब मैं वहाँ शोध कर रहा था। रात-दिन किताबों में डूबा रहता। पर बीच-बीच में मन में आता, कि जब यह शोध का काम पूरा होगा, तो आगे क्या होगा? जिंदगी किस राह पर जाएगी? बीच-बीच में बहुत सारी आशंकाएँ सिर उठातीं।

तब सुनीता से मेरी काफी अधिक निकटता हो गई थी। मन में सपना था, कि हम अपने ढंग का घर बनाएँ। एक सादा सा घर, जिसमें हम निश्चिंत होकर लिख-पढ़ सकें। इसलिए कहीं पैर टिकाने के लिए जमीन चाहिए, बार-बार मन में यह बात उठती। पर कहीं ठौर न मिलता। तो मन के इसी गहरे द्वंद्व और आशंकाओं के बीच लिखी गई थी 'यात्रा' कहानी, जिसे मेरे बहुत सारे मित्रों ने पसंद किया। हालाँकि वह एकदम सच्ची कहानी है। आप कह सकते हैं, मेरी आत्मकथात्मक कहानी। इसलिए आज भी उसे पढ़ता हूँ, तो गुजरा हुआ समय आँखों के आगे आ जाता है और आँखों की कोरें भीगने लगती हैं।

यों मिश्र जी, कहानियाँ तो मैंने सन् 1970 के आस-पास ही लिखना शुरू कर दिया था। उन दिनों कविताएँ लिखता था। बीच-बीच में कहानियाँ भी लिखी जाती थीं। पर वे शायद

आधी-अधूरी कोशिशें ही थीं। 'यात्रा' को मैं अपनी पहली मुकम्मल कहानी मानता हूँ।

कलानाथ मिश्र - आज अपनी पचास बरस लंबी कथा-यात्रा पर निगाह डालें, तो आपको क्या लगता है? मन में संतोष अधिक है या असंतोष?...क्या आप लिख सके, जो आप लिखना चाहते थे?

प्रकाश मनु - मिश्र जी, मैं अपनी कोई पचास बरस लंबी कथा-यात्रा पर निगाह डालता हूँ, तो मन में संतोष के साथ ही एक विस्मयजनक आह्लाद का भाव उपजता है। इसका कारण यह है कि मेरी कहानियाँ कहानी के बने-बनाए रास्ते पर कभी नहीं चलीं। वे अपनी अलग ही राह पर चलती रही हैं। पर आश्चर्य, इसके बावजूद पाठकों ने इन्हें बहुत सराहा और इन पर इतनी भावनात्मक प्रतिक्रियाएँ मिलती थीं, कि इसकी चर्चा करूँ तो शायद खुद एक कहानी बन जाए। हाँ, इन प्रतिक्रियाओं में एक बात आश्चर्यजनक रूप से मिलती-जुलती और साझी थी कि इनमें से सभी को लगा था कि ये कहानियाँ एकदम सच्ची हैं। इन कहानियों के पात्र एकदम सच्चे हैं और ये कहानियाँ मेरी आत्मकथा के अनलिखे पन्नों में से चुपके-चुपके निकलकर आई हैं।

बहुत-से मित्रों और पाठकों ने तो इन कहानियों को मेरे जीवन में सच-सच इसी रूप में घटित हुआ मानकर, उन पात्रों के बारे में और भी बहुत-सी बातें दरियाफ्त करनी चाहीं। मसलन, "मनु जी, अरुंधती क्या आपको फिर कभी मिली?...क्या वह अब भी उसी तरह दुख और अकेलेपन का बोझ ढो रही है?" वगैरह-वगैरह। भला ऐसे सवालों का क्या जवाब हो सकता था? तो मैं हँसकर रह जाता था। सच तो यह है कि ये आत्मकथात्मक कहानियाँ भले ही हों, पर ये कहानियाँ पूरी तरह आत्मकथा न थीं, हो भी नहीं सकती थीं। तो भी ये कहानियाँ पाठकों को एकदम सच्ची और जीवन में ठीक-ठीक ऐसे ही घटित होती हुई लगीं, इसे इन कहानियों की शक्ति तो मान ही सकता हूँ।

कलानाथ मिश्र - और इन पर आपको लेखकों की कैसी प्रतिक्रियाएँ आपको मिलीं?

प्रकाश मनु - ज्यादातर उत्साहपूर्ण। लोक यायावर और दिग्गज कथाशिल्पी देवेंद्र सत्यार्थी को मैं अपना कथागुरु कहता हूँ। एक बार वे घर आए और उन्होंने मुझे कुछ सुनाने को कहा। तब मैंने शुरुआती दौर की लिखी अपनी कहानी 'यात्रा' उन्हें सुनाई। कहानी सुनने के बाद जिस तरह मुग्ध और अभिभूत होकर उन्होंने आशीर्वाद दिया था और कहानियाँ लिखने की अपनी ही लीक पर चलते रहने का जो बल दिया था, उसे भूल पाना असंभव है। साथ ही उन्होंने कहानी को लेकर कबीर की उलटबाँसी की तरह जो बड़ी कमाल की बात कही, वह मुझे आज भी कहानी के बड़े से बड़े शास्त्रीय सिद्धांतों से बड़ी लगती है कि "याद रखो मनु, कहानी सिर्फ तुम ही नहीं लिखते, बल्कि कहानी भी तुम्हें लिखती है। इसीलिए कहानी लिखने के बाद तुम वही नहीं रहते, जो

कहानी लिखने से पहले थे।"

कलानाथ मिश्र - वाह, कितनी अद्‌भुत-सी बात है, कि सिर्फ तुम ही कहानी नहीं लिखते, बल्कि कहानी भी तुम्हें लिखती है!

प्रकाश मनु - जी हाँ, मिश्र जी, जितना-जितना इस कथन के बारे में सोचता हूँ, उतना ही भीतर उजाला-सा होता जाता है। जैसे कुछ अंदर की गहरी, बहुत गहरी सच्चाइयाँ सामने आ रही हों। कोई बड़ी बात कही जाती है, तो कैसे चीजों के नए-नए अर्थ खुलते हैं, यह मैंने सत्यार्थी जी के इस कथन के साथ-साथ बहुत बार भीतरी नदी की यात्राएँ करते हुए जाना। इसके साथ ही मैंने पहलेपहल यह भी जाना कि कोई कहानी भी, अगर वह सच में कहानी है, तो अपने आप में एक खोज है। भाषा और अनुभव के स्तर पर एक बड़ी खोज और वह सबसे पहले तो खुद लेखक को ही समृद्ध करती है। शायद इसीलिए कहा था मेरे गुरु और कथाशिल्पी सत्यार्थी जी ने कि कहानी लिखने के बाद आप ठीक-ठीक वही नहीं रहते, जो कहानी लिखने से पहले थे। आप भीतर-बाहर से बहुत कुछ बदल चुके होते हैं। कुछ भी हो, सत्यार्थी जी के इस महा कथन ने मुझे बहुत सारी विलक्षण अंतर्यात्राओं से जोड़ दिया। और हर यात्रा मेरे लिए कुछ बड़ी और गहन उपलब्धियाँ लेकर आई।

इसी तरह सत्यार्थी जी ने मुझे कहानी के एक और विराट सत्य का दर्शन कराते हुए कहा, "अगर तुममें कहानी को देखने की दृष्टि है, तो तुम देखोगे मनु, तुम्हारे सब ओर कहानियाँ ही कहानियाँ बिखरी पड़ी हैं। बस, उन्हें तुम्हारी कलम के स्पर्श की प्रतीक्षा है। तुम उन्हें प्यार से उठाओ और लिखना शुरू कर दो। वे देखते ही देखते तुम्हारे सामने हँसते-बोलते, चहचहाते या फिर उदास रंगों वाले जीवित संसार में बदल जाएँगी।" बेशक सत्यार्थी जी की इस बात ने मेरे भीतर के तमाम कपाट और खिड़कियाँ खोल दीं। इसके साथ-साथ अपने भीतर की और बाहर की दुनिया भी मुझे एकदम नई-नई लगने लगी।

कलानाथ मिश्र - क्या आपकी कहानियों पर सत्यार्थी जी की तरह और मित्रों या लेखकों की भी ऐसी ही प्रतिक्रियाएँ थीं? आपने लीक से हटकर कहानियाँ लिखीं, क्या इससे उन्हें परेशानी नहीं होती थी?

प्रकाश मनु - नहीं, बल्कि उलटे इसीलिए वे इन्हें अधिक सराहते थे। यहाँ तक कि पाठक भी, जिनके बहुत फोन मेरे पास आते थे। अब भी आते हैं।...आपको बताऊँ, सत्यार्थी जी से भी बहुत पहले बल्लभ जी ने मेरी काफी निकटता थी और उन्होंने मेरी लिखी कहानियों में बहुत रुचि ली। बड़े ही पढ़ाकू और उस्ताद कहानीकार बल्लभ सिद्धार्थ, जिनकी कहानियों की उन दिनों धूम थी, मुझ पर छा गए थे।...असल में जिन दिनों मैं कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में शोध कर रहा था, बल्लभ

जी अकसर हमारे विश्वविद्यालय में आया करते थे और हम रिसर्च स्कालर्स के छात्रावास, टैगोर हॉस्टल में ही वे ब्रजेश भाई के साथ रुकते थे। तब पहलेपहल उन्हें जाना और उनकी कहानियों के जरिए ही बहुत यात्राएँ भीतर-बाहर की हुईं। घंटों उनके रचनात्मक संग-साथ से अंदर बहुत कुछ प्रकाशित होता चला गया।

कहानियाँ लिखता तो पहले से ही था, पर बल्लभ जी से मिलने के बाद खुद-ब-खुद बहुत कुछ बदलता चला गया। फिर कुछ अरसा बाद तो अंदर से कहानियों का जैसे एक सोता ही फूट पड़ा। मेरा शोध पूरा होने के बाद भी, जब मैं कुरुक्षेत्र में किराए के मकान में रहता था, बल्लभ जी से निरंतर मुलाकातें होती रहीं, और मेरी कहानियों को वे खासी रुचि से देखते थे। अपनी विस्तृत राय भी बताते।

याद पड़ता है, बरसों बाद- जब मैं हिंदुस्तान टाइम्स में आ चुका था, फिर तेजी से कहानियाँ लिखने का सिलसिला चला। मेरा पहला कहानी-संग्रह 'अंकल को विश नहीं करोगे' छपा, तो मैंने वह बल्लभ जी को भिजवाया। कुछ अरसे बाद संग्रह की शीर्षक कथा 'अंकल को विश नहीं करोगे' पढ़कर उन्होंने जो पत्र लिखा था, उसे पढ़कर मैं रोमांचित हो उठा था। उन्होंने लिखा था, 'अंकल को विश नहीं करोगे' उन्हें इस बुरी तरह बेचैन करने वाली पाँच-सात कहानियों में से एक है और - "मनु, तुमने कम से कम एक 'बड़ी' कहानी लिखी है!"

बल्लभ जी की तरह ही मेरे बहुत-से कहानीकार मित्रों को यह कहानी इस कदर प्रिय है कि बरसों बाद मिलने पर आज भी कहीं न कहीं, कभी न कभी इसकी चर्चा छिड़ ही जाती है। मेरे साहित्यिक मित्रों में श्रवणकुमार और डॉ. माहेश्वर भी इस कहानी की बहुत प्यार से चर्चा करते थे। श्रवणकुमार ने मेरी कहानी 'एक सुबह का महाभारत' का अंग्रेजी में तर्जुमा किया था। फिर उन्हीं के संपादन में यह अंग्रेजी के एक कथा-संचयन में भी आई।

कलानाथ मिश्र - मनु जी, आपने कई लंबी कहानियाँ भी लिखी हैं...?

प्रकाश मनु - जी, लिखी हैं। ये ऐसी कहानियाँ हैं, जिन्हें 'लघु उपन्यास' कहने का चलन है। पर मैंने उन्हें 'लंबी कहानी' कहना ही पसंद किया। इसलिए कि ये कहानियाँ ही हैं, पर ऐसी कहानियाँ जिनमें मैं अधिक देर तक और दूर तक रमा हूँ। एक बात और। ये ऐसी कहानियाँ हैं, जिनके चरित्र मेरे बहुत निकट के देखे हुए हैं। इसलिए इनमें एक महाकाव्यात्मक उदात्तता भी है। उदाहरण के लिए, मेरी लंबी कहानी 'टैक्सी ड्राइवर रामलाल दुआ की कहानी'। इसका नायक ड्राइवर रामलाल केवल ड्राइवर ही नहीं है, एक बेजोड़ इनसान है। एक अनोखा शख्स, और शायद इसीलिए कहानी काफी ऊपर उठ गई है। यह कहानी, आपको बताऊँ, बरसों पहले डॉ. माहेश्वर और श्रवण कुमार जैसे प्यारे लेखक-मित्रों के बीच हिंदुस्तान टाइम्स की कैंटीन में पढ़ी

गई थी। उस समय कहानी सुनते हुए डॉ. माहेश्वर की आँखों में आँसू छलछला आए थे। कहानी बीच में रोकनी पड़ी थी और एक अंतराल के बाद वह फिर शुरू हुई।

इस लंबी कहानी के पूरे होते-होते रात घिर आई थी। मैंने डॉ. माहेश्वर और श्रवण कुमार दोनों मित्रों से क्षमा माँगते हुए कहा, "माफ करें, कहानी बहुत लंबी थी। इस वजह से आपको देर हो गई।" इस पर डॉ. माहेश्वर ने एक सीझी हुई हँसी के साथ कहा था, "दोस्त, यही तो तुम्हारी अदा है कि जिस चीज का भी वर्णन करते हो, तुम उसके इतने बारीक से बारीक डिटेल्स देते जाते हो कि सुनने वाला ताज्जुब में पड़ जाता है। कितने लेखक हैं, जिनमें अपने पात्रों के भीतर इतनी गहराई में उतरने का धीरज है, तो तुम अपनी कहानी के लंबे होने से क्यों परेशान हो? प्रकाश मनु ऐसी कहानियाँ नहीं लिखेगा तो कौन लिखेगा?" इसी तरह 'अरुंधती उदास है', 'सुकरात मेरे शहर में', 'अपराजिता की सच्ची कहानी', 'कुनु', 'प्रतिनायक', 'जिंदगीनामा एक जीनियस का'- ये सभी अलग-अलग मूड्स की कहानियाँ हैं। कहीं न कहीं मेरी आत्मकथा के पन्ने इनमें फड़फड़ा रहे हैं और इन पर अब भी इतनी ऊष्माभरी और अलग-अलग किस्म की प्रतिक्रियाएँ मिलती हैं, तो पता लगता है, एक लंबे अरसे तक 'भूमिगत' रही, अंदर ही अंदर बहती मेरी कथा-यात्रा अकारथ तो नहीं गई। यों यह बात अपनी जगह सही है कि 'यह जो दिल्ली है', 'कथा सर्कस' और 'पापा के जाने के बाद' उपन्यासों की जबरदस्त चर्चा के कारण मेरे बहुत-से निकटस्थ मित्रों-लेखकों का ध्यान इस ओर न जाता, तो यह कथा-यात्रा अभी तक भूमिगत ही रहती।

इसी तरह अपनी कहानियों पर समय-समय पर पाठकों की बड़ी आत्मीय और भावुक कर देने वाली प्रतिक्रियाएँ मुझे मिलती रही हैं। बहुत-से पाठकों का कहना था, "आपकी कहानियों का अनौपचारिक अंदाज हमें पसंद है। आप अपने साथ बहा ले जाते हैं और एक बार पढ़ने के बाद आपकी कहानियाँ हमेशा के लिए हमारे साथ हो लेती हैं।" ऐसे ही 'एक सुबह का महाभारत', 'कुनु', 'नंदू भैया की कहानी', 'एक बूढ़े आदमी के खिलौने' पढ़कर लिखे गए पत्रों में उस भावनात्मक संवाद के अक्स मिले, जिसमें आत्म और पर के बीच के फासले गायब हो जाते हैं। और कुछ अरसा पहले 'साहित्य अमृत' में छपी 'जोशी सर' कहानी पढ़कर जो भावुक कर देने वाले पत्र मिले, उनमें सभी का कहना था, "मनु जी, आपने हमारे बहुत प्यारे अध्यापक की याद दिला दी...!" कुछ ने तो बड़ी संजीदगी से अपने उन प्रिय अध्यापक के बारे में लिखकर भी भेजा, जिसे 'जोशी सर' कहानी पढ़कर उन्होंने बेतरह याद किया।

कलानाथ मिश्र - आपकी लंबी कहानी 'मिसेज मजूमदार' की भी काफी चर्चा रही है और इस नाम से आपका एक कहानी-संग्रह भी है...

प्रकाश मनु - जी हाँ, मिश्र जी, 'मिसेज मजूमदार' नाम से मेरा कहानी-संग्रह है और इस कहानी

की अपने समय में बहुत चर्चा हुई थी। मेरी बहुचर्चित लंबी कहानियों में 'मिसेज मजूमदार' भी है, जिसमें एक बंगाली स्त्री की विचित्र किस्म की रुक्षता और निर्ममता है, जिससे पड़ोस का परिवार करीब-करीब आक्रांत हो उठता है। उसे मिसेज मजूमदार एक ऐसी मोटी खाल वाली स्त्री लगती है, जिसके भीतर करुणा और संवेदना का नामोनिशान नहीं है। तिस पर उसकी अजीब सी सनकें और कर्कशता उसे मोहल्ले में लगभग सभी की घृणा का पात्र बना देती है। पर कहानी के अंत में उसकी दीनता और असहायता की जो अचीन्ही छवियाँ उभरती हैं, उससे एक और ही मिसेज मजूमदार सामने आती है, जो सचमुच करुणा की पात्र हैं। कहानी का अंत आते-आते मिसेज मजूमदार के दुख, करुणा और असहायता का चित्रण करते हुए, खुद मेरी हालत बहुत खराब हो गई थी, और किस पीड़ा और वेदना से भरकर मैंने डबडबाई आँखों से उसे आखिरी छोर तक पहुँचाया था, इसकी याद आज फिर मुझे भावुक बना रही है।

इसी तरह 'गंगा चौकीदारनी की कथा' भी एक ऐसे स्त्री पात्र पर लिखी गई कहानी है, जिसको दर्जनों बार बहुत पास से देखा। हर बार कुछ न कुछ अलग और बदला हुआ उसका रूप। कुछ-कुछ अबूझ, रहस्यपूर्ण और मायावी भी। लेकिन कुछ ऐसा भी था, जो कभी नहीं बदला, और उसी के भीतर से उसकी तरह-तरह की शक्लें और अक्स प्रकट हो जाया करते थे। 'तुम कहाँ हो नवीन भाई', 'प्रतिनायक' और 'अंधी गुफा का मसीहा' कहानियाँ साहित्यिक दुनिया के भीतरी अँधेरों की कहानियाँ हैं और अपने कुछ अलग और विशिष्ट ढंग से उन शक्लों को उजागर करती हैं, जो शायद बहुतों के लिए अनजानी और विस्मयजनक होंगी। थोड़ी चौंकाने वाली भी। स्वयं मेरे लिए इन कहानियों को लिखना बेहद तकलीफ भरी, काली अँधेरी सुरंग से गुजरने जैसा मर्मांतक अनुभव था। जाहिर है, इन कहानियों को बहुत अंदर तक टूट-फूटकर ही लिखा गया। लिहाजा इन कहानियों को पढ़ना आज भी मुझे भीतर-बाहर से थरथरा देता है।

कलानाथ मिश्र - आपके कहानी-संग्रह 'तुम याद आओगे लीलाराम' की भी बहुत चर्चा हुई है, और उसकी शीर्षक कथा 'तुम याद आओगे लीलाराम' की भी। क्या इस कहानी की भी कोई कहानी है?

प्रकाश मनु - जी, भाई मिश्र जी, 'तुम याद आओगे लीलाराम' मेरी आत्मकथात्मक कहानी है, जिसमें गर्दिश के दिनों की ऐसी तकलीफें हैं, जिन्हें कभी किसी से कहा या बाँटा नहीं जा सका। मेरे समय और जीवन का बहुत कुछ जो अभी तक अनकहा है, वह न जाने कैसे इस कहानी में खुद-ब-खुद ढलता चला गया। यह ऐसी कहानी है, जिसके बारे में मैं कह सकता हूँ कि इसमें आपको मेरी आत्मकथा के बहुत करुण पन्ने फड़फड़ाते मिलेंगे। मेरी आत्मकथा का यह भाग अभी सामने आया नहीं है, पर 'तुम याद आओगे लीलाराम' में कुरुक्षेत्र के दिनों के दारुण कष्टों की तस्वीर आप शायद बहुत विश्वसनीय रूप से देख पाएँगे। यों 'तुम याद आओगे लीलाराम'

कहानी ही है, आत्मकथा नहीं। पर बेशक वह मेरी आत्मकथा से बहुत सटकर निकलती कहानी है। मेरे जीवन का यह वह दौर था, जब बहुत रोना आता था और हम रो भी नहीं पाते थे। अंदर-अंदर रुदन दबाकर जीना और इस हालत में भी मजबूती से कलम पकड़े रहना, यह उस दौर की एक ऐसी खब्त है, जिसे मैं ताजिंदगी नहीं भूल सकता। उन दिनों इस हालत में भी जो कुछ लिखा गया, वह एक जलती भट्ठी के बीच बैठकर लिखने से कम न था।

मिश्र जी, मैं अपने उस गर्दिशों भरे दौर को याद करता हूँ, तो मानसिंह की काफी याद आती है। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में शोध के दौरान हिंदी विभाग के पीयन भाई मानसिंह का प्यार, अपनत्व और दिलासा भरा साथ हमें निरंतर मिला। हमें, यानी मुझे और सुनीता को। रात-दिन काम और काम के बीच मानसिंह ने कड़क चाय पिलाकर हमें जीवंत रखा था। इससे भी अधिक उसके किस्से और कहानियाँ की अविरल वाग्धारा ने, जिनमें जीवन बोलता था। कहने को मानसिंह पीयन ही था। ज्यादा पढ़ा-लिखा भी नहीं। पर उसकी चेतना मुझे बहुतेरे कथित भद्र जनों और दिन-रात किताबें घोकने वालों पढ़ाकुओं से कहीं अधिक उजली नजर आई। ऐसे मानसिंह की एक उजली सी छवि मेरी कहानी 'तुम याद आओगे लीलाराम' में कहीं उतर आई है। कहानी में आते-आते बहुत कुछ बदल गया है। पर वह बुनियादी तौर से मानसिंह के चरित्र का विकास ही है और कहानी में मानसिंह को पहचानना मुश्किल नहीं है।

हिंदी के जाने-माने लेखक और प्रोफेसर शशिभूषण सिंहल भी उन दिनों कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में ही थी। कोई तीन बरस पहले 'साहित्य अमृत' में यह कहानी छपी, तो उनका फोन आया। कहानी की देर तक प्रशंसा करने के बाद उन्होंने कहा, "मानसिंह को हमने भी देखा तो था। पर उसका चरित्र इतना बड़ा है, यह तो मनु जी, पहली बार आपकी कहानी पढ़कर ही पता चला।" अब मैं उनसे क्या कहता और कैसे समझाता कि अगर वे मेरी जगह खड़े होकर देखते, तभी समझ सकते थे कि मानसिंह क्या था। उनकी नजर में वह एक पीयन था और मेरी नजरों में सोने के दिल वाला एक खरा इनसान। देखने के अलग-अलग 'फ्रेम ऑफ रेफरेंस' ने सब कुछ बदल दिया।

आज मानसिंह नहीं है, पर सच कहूँ तो उसके लिए मन में जो गहरी कृतज्ञता का भाव है, उसे शब्दों में कैसे व्यक्त करूँ, मैं नहीं जानता। आज वह जिंदादिल शख्स नहीं है, पर उसकी स्मृति को तो मैं प्रणाम कर ही सकता हूँ। उसकी निकटता में मैंने जीवन के जो गहरे पाठ पढ़े, उन्हें आज भी भूला नहीं हूँ और शायद कभी भूलूँगा भी नहीं।

कलानाथ मिश्र - आपकी कहानी 'आप कहाँ हैं जित्ते सर' के नायक जित्ते सर कुछ ज्यादा ही जिद्दी हैं, खुद्दार भी...और लगता है, इसका परिवेश पंजाब का पुराना दौर है...?

प्रकाश मनु - जी, आपने ठीक कहा। 'आप कहाँ हैं जित्ते सर' में मेरे मलोट के दिनों के अनुभव हैं, और जो मुझे थोड़ा निकट से जानते हैं, वे जित्ते सर की चिंताओं और कशमकश में कहीं न कहीं खुद मेरी व्यथा और बेचैनी ढूँढ़ ही लेंगे। कहानी का करुण अंत एक लेखक की उस त्रासदी को सामने रखता है, जिसमें एक ईमानदार, धुनी और जेनुइन लेखक अंत में एकदम अकेला होता जाता है। पूरी दुनिया में अकेला और बेतरह प्रेम करने वाले कुछ निकटस्थ जनों और अंतेवासी लोगों के सिवा कोई नहीं जान पाता कि वह कैसी परिस्थितियों में निरंतर टूटता चला गया। हालाँकि उसकी खुद्दारी, जिद और स्वाभिमान तब भी कम नहीं होता। उसे टूट-टूटकर मरना पसंद है, पर बहुत से दुनियादार लेखकों की तरह दूसरों की शर्त पर जीना और सफल होना नहीं। इसी तरह मेरी लंबी कहानी 'एक और मोचीराम' की भी बहुत चर्चा हुई है। मेरी लंबी कहानियों में शायद यह सबसे अलग है, जिसमें मोचीराम का चरित्र खासा दिलचस्प है, जिंदगी और जिंदादिली से लबरेज भी। इस कहानी के बारे में सिर्फ इतना कहना है कि जिस मोचीराम की यह कहानी है, उसकी भीतरी-बाहरी शक्लें मैंने बहुत करीब से देखी हैं। वह सिर्फ एक जूते ठीक करने वाला इनसान नहीं था, सच में एक कलाकार था, अभिनेता भी। इस कहानी में वह थोड़ा-थोड़ा उभरा है। यों 'एक और मोचीराम' सिर्फ लंबी कहानी ही नहीं है, बल्कि उसमें एक सुर है, भीमसेन जोशी जैसा शास्त्रीय संगीत का एक अलग-सा और गहरा-गहरा सा सुर, जिसके आरोह-अवरोह और आलोपों में कहीं न कहीं मेरी अपनी जिंदगी और परिवेश की कशमकश भी जुड़ गई है। लिहाजा इस कहानी में भी स्वभावतः मेरी आत्मकथा के पन्ने बिखरे हुए नजर आ सकते हैं।

कलानाथ मिश्र - आपकी कहानी 'भटकती जिंदगी का नाटक' का हिंदी अकादमी द्वारा नाट्य रूपांतरण करवाकर, मंचन किया गया था...?

प्रकाश मनु - जी, आपने ठीक कहा मिश्र जी, हिंदी अकादमी द्वारा एक भव्य समारोह में इसका मंचन हुआ और यह बेहद कामयाब रहा था। असल में मेरे बहुत प्रिय कवि विष्णु खरे जब हिंदी अकादमी के उपाध्यक्ष बने, तो उन्होंने 'इंद्रप्रस्थ भारती' का कहानी विशेषांक निकालने की योजना बनाई। इस विशेषांक के लिए उन्होंने आग्रहपूर्वक कहानी माँगी, तो मैंने उन्हें बताया कि "मेरे पास अधलिखी कुछ कहानियाँ हैं। उनमें से एक कहानी मैं जल्दी ही पूरी करके भेजता हूँ।" इस पर विष्णु जी का आग्रह था, "प्रकाश जी, कहानी आज ही चाहिए।" उनके आग्रह की अवहेलना भला मैं कैसे कर सकता था? लिहाजा सुबह से लेकर रात कोई बारह बजे तक इस कहानी से जूझता रहा। तब कहीं यह पूरी हुई। रात में ही मैंने विष्णु जी को कहानी भेजी और आश्चर्य, रात में ही उन्होंने इसे पढ़ भी लिया। सुबह पाँच बजे मैं उठा तो देखा, मोबाइल में उनका संदेश था। कहानी उन्हें बेहद पसंद आई थी और बड़ी प्रमुखता से उन्होंने इसे 'इंद्रप्रस्थ भारती' में छापा। तब से दर्जनों

फोन इस पर प्रशंसा के आ चुके हैं और इनमें नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा से निकले तीन नाट्यकर्मी भी हैं। थोड़े-थोड़े अंतराल बाद उनके फोन आए और तीनों ने ही इस कहानी के नाट्य रूपांतरण की अनुमति देने की गुजारिश की। वे इसे रंगमंच पर लाने के लिए उत्सुक थे।

मेरे जीवन का यह पहला और विलक्षण अनुभव था कि किसी एक कहानी की नाट्य संभावनाएँ इतने संभावनाशील रंगकर्मियों को लगभग एक साथ ही नजर आई। मेरी कई कहानियों में खासा नाटकीय तत्व है, यह तो मैं जानता था, पर वे रंगकर्मियों को भी इस कदर मोह लेंगी, मैंने सोचा न था।

कलानाथ मिश्र - मनु जी, आपके बहुत से पाठकों का कहना है कि इधर आपकी कहानियाँ लगातार आत्मकथा के निकट आ रही हैं...तो क्या आपको भी लगता है कि...?

प्रकाश मनु - जी, बिल्कुल। मैं इसे बिल्कुल छिपाऊँगा नहीं और भला इसमें छिपाने की बात भी क्या है।...मैं नहीं जानता मिश्र जी, कि यह अच्छा और वरेण्य है या नहीं, पर इधर मेरी कहानियों में आत्मकथा के हरफ ज्यादा से ज्यादा उतरते गए हैं। इसकी वजह क्या है, यह खुद मेरे लिए एक पहेली से कम नहीं है। हालाँकि देश भर में फैले मेरे पाठकों ने इसे पसंद किया और इन कहानियों के साथ एक गहरा नाता और जुड़ाव महसूस किया, यह स्वयं मेरे लिए कम सुकून और तसल्ली की बात नहीं है। पाठकों की अपरंपार स्नेहमय चिट्ठियाँ और फोन-वार्ताएँ मेरे लिए कितने बड़े सुख का खजाना हैं, मैं बता नहीं सकता। कई बार लगता है, मेरे पास यह ऐसी अकूत दौलत है, जिसका मुकाबला किसी से नहीं हो सकता। बड़े से बड़े अमीरों की अमीरी और राजे-महाराजाओं के सिंहासन भी इसके आगे पोच हैं। और तभी लगता है, मैं एक फक्कड़ लेखक सही, पर ऐसा फक्कड़ बादशाह हूँ, जिससे बड़ी बादशाहत इस दुनिया में कोई और नहीं।

देश में दूर-दूर तक फैले असंख्य पाठकों का यह अकूत स्नेह-सम्मान मैंने अपने रचे साहित्य के जरिए पाया, खासकर कहानियों और उपन्यासों के जरिए, यह उपलब्धि कोई छोटी उपलब्धि नहीं है। अपने बड़े से बड़े दुख और मुश्किलें तब मुझे हलके जान पड़ते हैं। लगता है, इन दुखों का हार पहनकर जीना भी कम गौरव की बात नहीं। आखिर यही तो एक सच्चे लेखक की विभूति हैं। एक शाश्वत, कालजयी और अपार्थिव विभूति...!! और मेरे साहित्य का तो उत्स ही यही है। क्या मैं बताऊँ कि ऐसे क्षण ही मेरे जीवन के सबसे बेशकीमती, यादगार और भावुक कर देने वाले पल-छिन हैं, जब मन में यह अहसास उपजता है कि शायद थोड़ा-सा तो मैं अपनी इस यात्रा में सफल हुआ। तब अनायास ही, अपने अंतर्मन में बैठे देवता के लिए हाथ जुड़ जाते हैं। ये मेरे जीवन के ऐसे आनंद के क्षण हैं, जब आँखें भीगती हैं और आप निःशब्द रह जाते हैं। इसलिए कि आखिर तो कोई भी कहानी, कहानी से पहले जिंदगी का एक टुकड़ा है...एक धड़कता हुआ

टुकड़ा, जो अपने आप में मुकम्मल भी है।

अलबत्ता, वे अजब कशिश भरे दिन थे, जब बहुत कहानियाँ लिखी गईं और लिखूँ या न लिखूँ, हर वक्त कहानियों की एक दुनिया मेरे साथ चलती थी। मेरे अंदर-बाहर उसी का पसारा था, बल्कि हर पल वह मेरे साथ-साथ साँस लेती थी। बहुत से जाने-अनजाने पाठकों ने फोन पर या चिट्ठियों के जरिए गहरी तन्मयता के साथ मेरी इन लंबी और कुछ अलग लय-सुर में लिखी गई कहानियों की बड़ी शिद्दत से चर्चा और तारीफ की। पाठकों के ऐसे दीवानगी भरे फोन अब भी आ जाते हैं और मेरा वह दिन कुछ अलग-सा हो जाता है। उनके शब्दों का आवेग मन को रोमांच से भर जाता है। इनमें से एक उम्रदराज पाठक, जो पिछले चालीस बरसों से बड़ी उत्कटता से कहानियों को जी रहे थे- ने मेरी एक लंबी कहानी 'तुम याद आओगे लीलाराम' की चर्चा करते हुए, गुलेरी जी की 'उसने कहा था' कहानी से उसकी तुलना की और उसे हिंदी की कुछ महानतम कहानियों में शुमार किया, तो कुछ देर के लिए मैं अवाक्-सा रह गया।

बरसों तक उनके फोन आते रहे और हर बार वे कुछ नए अंदाज में, मगर उसी शिद्दत से मेरी कहानी 'तुम याद आओगे लीलाराम' की चर्चा करते रहे। उनका कहना था कि "मनु जी, आपकी कहानी 'तुम याद आओगे लीलाराम' पढ़ने के बाद इधर पढ़ी हुई तमाम कहानियाँ मुझे बहुत फीकी और बेजान लगती हैं। बार-बार 'तुम याद आओगे लीलाराम' उनके आगे आकर खड़ी हो जाती है। कोई महान कहानी तो ऐसी ही होती है। उससे मन को इतनी तृप्ति मिल जाती है कि बहुत अरसे तक फिर कुछ और पढ़ने का मन ही नहीं करता।" अपनी कहानियों के इन सीधे-सरल पाठकों के प्रति आज भी मैं गहरी कृतज्ञता अनुभव करता हूँ।

कलानाथ मिश्र - कहानी के अलावा कविताओं से भी आपका पुराना रिश्ता है मनु जी। और कविताएँ आपने लिखीं भी खूब, जिनकी बहुत चर्चा हुई है। आपके कविता-संकलन 'छूटता हुआ घर' को प्रथम गिरिजाकुमार माथुर स्मृति पुरस्कार मिला था...

प्रकाश मनु - जी, मिश्र जी। जितना पुराना रिश्ता मेरा कहानी से है, तकरीबन उतना ही पुराना रिश्ता कविता से है।...सच पूछिए तो कविताएँ मैंने बहुत पहले लिखनी शुरू कर दी थीं। किशोर काल में ही। कहानियाँ लिखने का सिलसिला कुछ आगे चलकर शुरू हुआ।...यों आप कह सकते हैं कि कविता का और मेरा पुराना साथ है। कभी-कभी तो लगता है, जन्म-जन्मांतरों का। बचपन और किशोरावस्था की लटपट कोशिशों को छोड़ दें, तो सन् 1970 के आस-पास बाकायदे कुछ न कुछ लिखने और नियमित लिखते रहने की शुरुआत हुई। तब मैं कोई बीस बरस का रहा होऊँगा। कविता मेरी एकमात्र सहयात्री थी। मेरी दोस्त और हमकदम भी। और बरसों तक यही सिलसिला चलता रहा। कविता और मैं। मैं और कविता। एक अनंत सिलसिला था। बेछोर।

उन दिनों अपने गृहनगर शिकोहाबाद से मैं बी.एस-सी. कर रहा था। विज्ञान का विद्यार्थी, पर मन बार-बार उड़कर साहित्य की मायानगरी में पहुँच जाता। वहाँ निराला थे, जो मुझे बहुत मोहते थे। दिनकर और मैथिलीशरण गुप्त थे, जयशंकर प्रसाद और पंत भी। और इनके साथ ही अज्ञेय, धर्मवीर भारती, गिरिजा कुमार माथुर, भवानी प्रसाद मिश्र, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे वगैरह-वगैरह। तब 'धर्मयुग' और 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' पत्रिकाएँ एक नए युग की संदेशवाहक बनकर आती थीं और ये भी मुझे बार-बार उड़ाकर साहित्य की नगरी में ले जाती थीं, जिसका आकर्षण मेरे लिए निरंतर दुर्निवार होता जा रहा था। फिर आगरा कॉलेज, आगरा से एम.एस-सी. करने गया, तब भी यही हालत। हाथ में विज्ञान के भारी-भरकम पोथे, पर मन कल्पनालोक में पता नहीं कहाँ-कहाँ मँडराता। कोई हाथ हिला-हिलाकर मुझे बुला रहा था, 'आ जा, आ जा, आ जा...!' यह कौन था, जो इतनी व्यग्रता से मुझे बुला रहा था और मेरी आत्मा को बेतरह व्याकुल बना रहा था? मैं अनगिनत छेदों वाला एक बाजा बन चुका था, जिसमें से हवा गुजरती तो अजीब-सा संगीत गूँजता था। एक आदिम संगीत। वह बार-बार मुझे सवालों के घेरे में डाल देता, मैं कौन हूँ...क्या करना चाहता हूँ...? मेरे जीवन की सार्थकता क्या है...? यह विचित्र संगीत था। मेरे होने का संगीत। मेरे अस्तित्व का संगीत। वह बार-बार मुझे अपने जीवन का मकसद खोजने के लिए कहता। मेरे भीतर उसकी गूँजें-अनुगूँजें भरती जातीं और मैं बेचैन सा यहाँ-वहाँ डोलता।

मैं ठीक-ठीक समझ नहीं पा रहा था कि मेरे साथ यह हो क्या रहा है। पर शायद कुछ थोड़ा-थोड़ा समझ भी पा रहा था। पर मैं क्या करूँ, क्या नहीं, यह मुझे कौन समझाता? चीजें अब भी उलझी हुई थीं। लेकिन आगरा कॉलेज, आगरा से भौतिक विज्ञान में एम.एस-सी. पास करते-करते चीजें साफ हो चुकी थीं। मुझे जैसे कुछ इल्हाम सा हुआ कि प्रकाश मनु, तुम्हारा जन्म तो साहित्य के लिए ही हुआ है। तो तुम कब तक चक्की के दो पाटों के बीच पिसते रहोगे? क्या जिंदगी भर...? लगा कि अब निर्णय लेने का समय आ गया है। हालाँकि यह आसान नहीं था। कदम-कदम पर मुश्किलें आईं। लेकिन मैं जीवन की फिर से नई शुरुआत करने का निश्चय कर चुका था।

यों जीवन अब बदल चुका था। जीवन की डगर भी। बहुत कुछ नया-नया सा था। शायद मैंने कुछ-कुछ अपने आप को पहचान लिया था। आत्मा पर पड़ी हुई बेड़ियाँ टूट रही थीं। हालाँकि अंदर बराबर एक धुकधुकी-सी बनी रहती। क्या मैंने सही निर्णय लिया है? क्या मैं किसी अनजानी राह में भटक तो नहीं जाऊँगा? मेरा क्या होगा, क्या नहीं?...सवालों पर सवाल। कुछ सख्त, कठोर, कुछ धुँधले। धुँधुआते से। एक अनिश्चितता भरा जीवन मेरे आगे था और मैं नहीं जानता था कि वह कहाँ जाएगा, कहाँ नहीं। इस सबका एक ही जवाब बार-बार मेरे अंदर से

आता कि मैं पूरी नहीं, आधी रोटी खाऊँगा या फिर भूखा ही रह लूँगा, पर जिऊँगा साहित्य के लिए ही।

कलानाथ मिश्र - तो आगरा की आपके जीवन समर में एक निर्णायक भूमिका रही मनु जी, कि आप एक निश्चय पर पहुँच सके?

प्रकाश मनु - जी...जी, बिल्कुल। यानी, वह चीज जो मैं बरसों से महसूस कर रहा था... शायद किशोर काल से ही, पर कहते हुए डरता था, मन में एक झिझक-सी थी, आगरा में एक तेज भावावेग के साथ जो इल्हाम हुआ, उसमें यह डर, झिझक, संकोच सब बह गया, बहता चला गया...और मैंने फैसला कर विया था कि अब जिऊँगा तो साहित्य के लिए, मरूँगा तो साहित्य के लिए। मैंने पूरी तरह खुद को साहित्य देवता के चरणों में समर्पित कर दिया था।

इससे पहले आगरा छोड़ते-छोड़ते 'रोशनी के बीज' कविता-संकलन मैंने निकाला था। तब मैं प्रकाश मनु नहीं, चंद्रप्रकाश रुद्र हुआ करता था। तो यह चंद्रप्रकाश रुद्र के संपादन में ही निकला था, जिसमें रामविलास शर्मा, पद्मसिंह शर्मा कमलेश, घनश्याम अस्थाना, सुखराम सिंह सरीखे आगरा के पुराने कवियों के साथ ही बहुत से नए कवि भी थे, जिनकी कविताओं के ताप को मैंने नजदीक से महसूस किया था और मन हुआ कि इन्हें सामने आना चाहिए। मेरे आगरा प्रवास की यह अंतिम निशानी थी। सिग्नेचर ट्यून। और अब तो पूरा जीवन ही इसी डगर पर बीतना था। यही मेरे जीने-मरने की राह थी। जी गया तो ठीक, नहीं तो जो भी होता... हो सकता था, मुझे मंजूर था। फिर तो लिखना, लिखना, निरंतर लिखना...! लिखना और पढ़ना। पढ़ना और लिखना। जीवन का मकसद तय हो चुका था। रात-दिन पढ़ाई। मैंने अपने आपको शब्दों की दुनिया के लिए समर्पित कर दिया। जैसे मेरा जीवन बिना गंध वाला एक जंगली फूल हो, और मैंने उसे पूरी भावाकुलता के साथ साहित्य देवता के चरणों में अर्पित कर दिया हो और अब मेरा अपना कुछ न बचा हो।

तब मैं साहित्य की दुनिया का अनाड़ी यात्री था। कुछ कच्चा और बौड़म भी। पर दिल में उत्साह था और शब्दों में सच्चाई। वही मुझे आगे, आगे और आगे ले जा रही थी। गहरे, गहरे और गहरे। मैं शब्दों के जरिए और-और गहरे तल तक जाने की कोशिश करता था, ताकि शब्दों के जरिए पूरी मार्मिकता और बेधकता के साथ वह सच कह सकूँ, जो मेरे भीतर हलचल मचा रहा है। मगर उन दिनों साहित्य माने कविता, कविता और कविता ही थी। या तो कविता या फिर कविता की बात। कविता का जीवन या कहें कवितामय जीवन।...और कविता के सबसे बड़े प्रतिमान तो निराला ही हो सकते थे। तो फिर निराला। निराला की कविताएँ, निराला का गद्य, निराला का जीवन। या फिर निराला पर बातें, बातें और बातें। उन्हीं दिनों निराला पर रामविलास

जी की दोनों पुस्तकें पढ़ीं। पहले 'निराला', फिर 'निराला की साहित्य साधना' के तीनों खंड। और मैं बावला-सा हो गया। हर क्षण निराला से मिलने या उनके नजदीक होने का अहसास। लगता, निराला से मेरी बातें होती हैं। अहर्निश बातें। मैं कहीं आता-जाता तो लगता, निराला मेरे साथ-साथ चल रहे हैं। उन्हीं दिनों निराला पर 'विषपायी निराला' खंडकाव्य लिखना शुरू किया, जो काफी कुछ लिखा गया था। वह शायद अब भी मेरे पुराने पन्नों में कहीं मिल जाएगा।

एक छोटे से कसबे की अपनी सीमा थी। बहुत कुछ नया वहाँ नहीं मिल पाता था। पर 'धर्मयुग' और 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' पत्रिकाएँ साहित्य के नवदूतों की तरह मेरे पास आतीं और जितना कुछ उनके जरिए मैं साहित्य की दुनिया में पैठ सकता था, मैं पैठने, सीखने और रमने की कोशिश करता। एम.ए. करते हुए नारायण कॉलेज, शिकोहाबाद का पुस्तकालय जैसे मेरा स्थायी अधिवास हो गया। एम.ए. की कक्षाएँ लगतीं सुबह सात से दस-साढ़े दस बजे तक। उसके बाद पूरा दिन खाली था। कक्षाएँ खत्म होने के बाद शाम को पाँच बजे तक पुस्तकालय में बैठकर किताबें पढ़ना यह तकरीबन रोज का सिलसिला था। जितना साहित्य वहाँ उपलब्ध था, पढ़ा। फिर शहर में आर्य समाज का पुस्तकालय भी कुछ ठीक-ठाक ही था। वहाँ से लेकर बहुत पुस्तकें पढ़ीं। खासकर धर्मवीर भारती की 'कनुप्रिया', चंद्रदेव सिंह द्वारा संपादित बेजोड़ नवगीत संग्रह 'पाँच जोड़ बाँसुरी', अज्ञेय का 'बावरा अहेरी' और 'हरी घास पर क्षण भर'। और भी बहुत चीजें। शायद धर्मवीर भारती का उपन्यास 'गुनाहों का देवता' भी उन्हीं दिनों पढ़ा गया। पर मुझ पर छाई रही 'कनुप्रिया', बरसोंबरस छाई रही। कविता यह भी हो सकती है, मैं चकित। हैरान। पुस्तक की पूरी धज ही बेहद कलात्मक थी। जगदीश गुप्त के छायांकनों ने जैसे भारती जी की संवेदनशील नायिका कनुप्रिया को साकार कर दिया हो!

कलानाथ मिश्र - आपने 'विषपायी निराला' की चर्चा की। इसके अलावा इन दिनों और क्या लिखा गया?

प्रकाश मनु - एक खंडकाव्य उन दिनों लिखना शुरू किया था, बड़े ही तीखे आवेग के साथ। उसका नाम सुनकर आप चौंकेंगे, 'रघुवंश में विद्रोह'।...भला यह कैसा नाम और मैं उसमें क्या लिखने जा रहा था? तो मैं बताता हूँ, मिश्र जी, उस पूरे प्रसंग के बारे में। असल में उठती हुई तरुणाई थी, तो उन दिनों चीजों की प्रतिक्रिया बहुत ज्यादा होती थी। इतनी कि मैं पगला-सा जाता। लगता था, भीतर एक ज्वालामुखी सो रहा था, वह जाग गया है।...वाल्मीकि रामायण में राम द्वारा सीता के परित्याग की कथा उन्हीं दिनों पढ़ी, तो मन तड़प उठा। यह कैसे राम, जिन्होंने गर्भवती सीता का अकारण परित्याग कर दिया! यह कैसा आदर्श, जो सीता जैसी महिमामयी स्त्री को भी निष्कासित कर सकता है?...मेरा मन वन में अकेली छूट गई सीता के लिए रोता था। राम के लिए एक तरह का क्रोध और तिरस्कार का भाव मन में उठता था, जिन्होंने इतना बड़ा

अन्याय किया। हम सभी के साथ न्याय करें, हर किसी के छोटे से छोटे सुख-दुख की चिंता करें, पर इसके लिए अपनों को इतनी बड़ी यातना दें- इतना बड़ा अन्याय, तो क्या यह अन्याय न होगा? भला कौन इसे उचित ठहरा सकता है?

जितना-जितना मैं इस बारे में सोचता, मेरे अंदर कुछ धधकता सा था। किसी भी तरह राम का यह रूप मैं स्वीकार नहीं कर पा रहा था। बचपन से तुलसी का रामचरित मानस पढ़ता आया हूँ। तो उनकी एक ऊँची, बहुत ऊँची प्रतिमा मन में थी। पर उनका यह व्यवहार तो उसके अनुरूप न था। लगता था, वह मूर्ति खंडित हो रही है। आज सोचता हूँ, क्या तुलसी ने इसी लिए अपने राम-काव्य को राम के राज्याभिषेक और रामराज के महिमागान तक ही समेट लिया। लवकुश कांड उन्होंने नहीं लिखा। शायद उन्हें यकीन न हो कि उनके आराध्य राम ऐसा कर सकते हैं। या फिर वे स्वयं भी इसे उचित न ठहरा पा रहे हों। अमृतलाल नागर के उपन्यास 'मानस का हंस' में तुलसी और रत्नावली की बड़ी अद्‌भुत मुलाकात का चित्रण है। तब तक तुलसी मानस लिख चुके थे और उनकी काफी ख्याति हो चुकी थी। यहाँ भी रत्नावली और तुलसी की बातों में यह प्रसंग उठता है और तुलसीदास का उत्तर बड़ा मार्मिक है।

जिन दिनों यह सारा बवंडर मन में चल रहा था, मुझे बार-बार 'संपूर्ण रामायण' की याद आ रही थी। बचपन में पूरे परिवार के साथ 'संपूर्ण रामायण' फिल्म देखी थी, जिसने बहुत विचलित किया था। उसके दृश्य फिर-फिर मन में ताजा होने लगे। और खासकर लव-कुश का यह चुनौती भरा गीत, "हे राम तुम्हारी रामायण तब तक होगी संपूर्ण नहीं, हे राम...हे राम...हे राम...!" मेरे भीतर इसने गूँजों पर गूँजें पैदा कर दी थीं। लगता था, कोई मुझे भीतर-बाहर से बुरी तरह मथ रहा है। दोनों हाथों से पकड़कर झिंझोड़ रहा है। मेरी विचित्र हालत थी। जैसे अपना गुस्सा, अपना आवेश खुद ही सँभाल न पा रहा होऊँ। उन्हीं दिनों 'रघुवंश में विद्रोह' खंडकाव्य लिखना शुरू किया, जिसमें लव-कुश बड़े होने पर राम को चुनौती देते हैं और सारा जन-मानस उनके साथ है। लव-कुश वीर हैं। उनके तीर अग्नि बरसाते हैं, पर शब्द उससे भी ज्यादा। यह नई पीढ़ी का विद्रोह है, जो अपनी माँ के साथ हुए अपमान को सह नहीं पाती। क्षुब्ध है, नाराज।...सीता उन्हें बरजती है, पर लव-कुश अपनी बात कहे बगैर नहीं रहते। अंत में राम अपनी भूल स्वीकार करते हैं। वे सीता को पत्नी के रूप में फिर से स्वीकार करना चाहते हैं, पर सीता का इनकार। अयोध्या के महलों की रानी होने के बजाय वह महामानवी भूमिपुत्री बन जाती है। जन-जन की सेवा ही उसका आदर्श बन जाता है और अपना पूरा जीवन वह इसी के लिए समर्पित कर देती है।...

'रघुवंश में विद्रोह' पूरा न हो सका। कहीं बीच में ही अटक गया। पर उन दिनों का अपना सच्चा क्रोधावेश मुझे याद है। वह रात-दिन मुझे मथता था। जलाता था। मैं पागल-सा काव्य के ताने-बाने जोड़ता था और नई-नई कल्पनाओं की दुनिया में विचरता था। मैं कुछ ऐसा लिखना

चाहता था, जो स्तब्धकारी हो। नए जमाने का आदर्श उसमें आए। पर शायद उतनी तैयारी अभी न थी। मैं कविता की दुनिया का एक कच्चा खिलाड़ी था। तो 'रघुवंश में विद्रोह' बीच में ही छूट गया। पर उसके जरिए मैंने अपने आप को भीतर तक मथा, शायद यही बड़ी बात थी। सच कहूँ तो उसके बहाने आगे की कविताओं के लिए जमीन तैयार हो रही थी।

कलानाथ मिश्र - मनु जी, आपने तो बहुत गहरी उत्सुकता जगा दी। फिर आगे...? आगे किस तरह चली आपकी काव्य-यात्रा...?

प्रकाश मनु - ऐसा है मिश्र जी, खंडकाव्य 'रघुवंश में विद्रोह' तो पूरा नहीं हुआ, पर विद्रोह जो भीतर जाग चुका था, वह किसी न किसी रूप में तो व्यक्त होना ही था। तो मैं अपने आस-पास के जीवन-यथार्थ और विसंगतियों को लेकर बहुत गुस्से और आक्रोश की कविताएँ लिखने लगा। नाम भी उसके अनुरूप मैंने खोज लिया, 'रुद्र'। तो मैं उन दिनों चंद्रप्रकाश रुद्र नाम से लिखता था।...फिर एम.ए. करने के बाद शोध करने कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में गया तो वहाँ ब्रजेश कृष्ण मिले, जो जल्दी ही मेरे प्यारे ब्रजेश भाई हो गए। उनका मिलना मेरे जीवन की एक बड़ी घटना थी। ब्रजेश भाई अच्छी कविताएँ लिखते थे, बहुत कुछ नया पढ़ा भी था। बहुत परिष्कृत साहित्यिक रुचियों वाले ब्रजेश भाई ने मेरे लिए समकालीन साहित्य के द्वार खोल दिए। उन्होंने नए साहित्य से मेरा परिचय करवाया और बहुत सारी बेड़ियाँ तोड़कर, एक नई राह दिखाई। अगर वे न होते तो सच मानिए, आज प्रकाश मनु कहीं न होता, कुछ न होता! ब्रजेश भाई ने मुक्तिबोध, धूमिल, विष्णु खरे, कैलाश वाजपेयी, ज्ञानेंद्रपति, अशोक वाजपेयी, जितेंद्र कुमार, कमलेश समेत बहुत से कवियों से मिलवा दिया था, जिनकी प्रतिभा का आलोक मुझे बेचैन कर रहा था। इनमें सभी को किसी न किसी रूप में मैंने पसंद किया। लेकिन मुक्तिबोध, धूमिल और विष्णु खरे तो मुझ पर छा गए थे। हालाँकि इनमें सबसे ऊपर थे मुक्तिबोध। वे जैसे मेरे व्यक्तित्व के भीतर धँस गए थे। मेरे पोर-पोर में समा गए थे। मेरे लिखने-पढ़ने, बोलने-चालने सबमें वे थे। यहाँ तक कि साँस लेने में भी। निराला के बाद पहली बार किसी कवि को मैंने अपने ऊपर इस कदर छाते हुआ देखा कि मैं हर पल उनकी कविताओं के भीतर आवाजाही कर रहा होता था। राह चलते भी।...

यों अब राहों पर राहें खुलने लगी थीं और मैं कभी इधर दौड़-दौड़कर जाता, कभी उधर। मैं कविता में जिंदगी की पूरी सूरत टटोलना चाहता था। मैं अपने और आस-पास के पूरे जीवन को कविता में परिभाषित करना चाहता था।...कविता के हर्फों में अपने जीने और मरने के मानी खोजना चाहता था। शुरुआत हो चुकी थी। फिर अपने शोध के दौरान नई कविता के साथ-साथ समकालीन कवियों को बहुत गहराई से पढ़ने और समझने का अवसर मिला। रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर, भवानी प्रसाद मिश्र, भारत भूषण अग्रवाल, गिरिजा कुमार माथुर, केदारनाथ सिंह,

कुँवर नारायण, रामदरश मिश्र, जगदीश चतुर्वेदी, राजकमल चौधरी, श्रीकांत वर्मा सरीखे अलग-अलग स्वभाव और रुचियों के बहुत समर्थ और प्रतिभावान कवियों की उपस्थिति समकालीन कविता की शक्ति और व्यापकता साबित करने के लिए काफी थी।

इन्हीं दिनों अज्ञेय द्वारा संपादित तीनों सप्तक भी पढ़े। उसमें एक से एक बड़े और समर्थ कवियों को पढ़ने का अवसर मिला। सबकी कविताओं का आस्वाद अलग-अलग। कविता गढ़ने का ढंग और मुहावरा भी। इन कवियों में धर्मवीर भारती, गिरिजा कुमार माथुर, प्रभाकर माचवे, केदारनाथ सिंह, रघुवीर सहाय और सर्वेश्वर की छाप कुछ अधिक गहरी पड़ी। हालाँकि आश्चर्य, सप्तक के कवियों में मुझे सबसे अधिक आकर्षित किया मदन वात्स्यायन और कीर्ति चौधरी ने, जो अपेक्षाकृत कम जाने गए कवि थे। पर उनकी कविताओं की सहजता ने मुझे बहुत प्रभावित किया। मुझे लगा, अनायास बड़ी बात कह जाना ही बड़ी कविता है। शायद यही कारण है कि उन दिनों पढ़ी गई मदन वात्स्यायन और कीर्ति चौधरी की कविताएँ आज भी मेरे भीतर बसी हुई हैं और मन में एक पुकार-सी उठाती हैं। अच्छी कविताएँ कैसी होती हैं और खासकर मेरे मन को भाने वाली कविताएँ कौन-सी हैं, मुझे समझ में आने लगा था। इसी दौरान बाद की पीढ़ी के कवियों को भी पढ़ा। इनमें दिविक रमेश की कविताएँ मुझे अच्छी लगीं। सीधी-सच्ची कविताएँ। मुझे आगे की राह टटोलने में उनसे मदद मिली।

कलानाथ मिश्र - तो क्या कुरुक्षेत्र जाने पर आपकी कविता में एक बड़ा मोड़ आया?

प्रकाश मनु - जी मिश्र जी, बल्कि मुझे लगा, अब तक मैं भटक रहा था, अब कविता की राह मुझे मिल गई है।...अब तक मेरी कविता के सफर में सुनीता भी जुड़ गई थी, जो कुछ अरसा पहले ही मेरे जीवन में आई थी। वह भी कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से समकालीन कविता में शोध कर रही थी। हमें लगा, हमारी रुचियाँ मिलती हैं, मन भी। सीधे-सरल और बेबनाव ढंग से जीवन जीने का ढब भी। हम यों ही साथ-साथ जीवन गुजारें और अपना एक अलग-सा घर बनाएँ, यह सपना उसका भी था, मेरा भी। हम लोग साथ-साथ कविताएँ पढ़ते थे, उन पर बात भी करते थे। अकसर सुनीता ही पुस्तकालय से समकालीन कवियों के नए-नए कविता संकलन खोजकर लाती थी, जिन्हें हम मिलकर पढ़ते थे। कविताओं के साथ-साथ अपने आसपास के जीवन और अनुभवों की भी बात करते।

बहरहाल पढ़ना और लिखना, लिखना और पढ़ना जारी था। बस, यही मेरा जीवन था। इस बीच अचानक किसी गहरे भावावेश के साथ एक लंबी कविता 'भीतर का आदमी' लिखी गई। शायद मैं जिन तकलीफों से गुजर रहा था, उन्होंने ही मुझे ठेलकर उस कविता के करीब पहुँचा दिया था। असल में कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में मैं डॉ. रामेश्वरलाल खंडेलवाल जी के निर्देशन में

'छायावाद एवं परवर्ती काव्य में सौंदर्यानुभूति' विषय पर शोध कर रहा था। डॉ. खंडेलवाल हिंदी के विभागाध्यक्ष थे। बड़े अच्छे और संवेदनशील व्यक्ति। कवि भी। पर किसी के कहने में आकर उन्होंने मुझे बहुत तकलीफ दी थी। मेरी कविता 'भीतर का आदमी' में वही सब था, पर बड़े व्यापक धरातल पर और गहरी संवेदना के स्तर पर।

उन्हीं दिनों कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में भारतीय भाषा परिषद का एक विशाल सम्मेलन हुआ। उसमें कवि सम्मेलन भी था। मैंने मंच पर बड़े ही आविष्ट ढंग से 'भीतर का आदमी' कविता पढ़ी तो एक सन्नाटा सा खिंच गया। जगदीश गुप्त ने कहा, "इस तरुण कवि ने मुझे मुक्तिबोध की याद दिला दी।" यों कुरुक्षेत्र में मेरा पुनर्जन्म हुआ, मेरी कविताओं का भी। और हाँ, एक बात और। कुरुक्षेत्र में ही मैं चंद्रप्रकाश रुद्र से प्रकाश मनु हुआ। एक दिन अचानक लगा, जैसे चंद्रप्रकाश रुद्र नाम अब ठीक नहीं है। तो उस दिन शाम के समय मैं देर तक नाम लिख-लिखकर देखता रहा। कोई दर्जनों बार लिखा गया, 'प्रकाश मनु...प्रकाश मनु'। नाम मुझे जँच गया। और उसी दिन मैं चंद्र प्रकाश रुद्र नहीं रहा, प्रकाश मनु हो गया।

यों सच पूछिए तो मुझे प्रकाश मनु बनाने का श्रेय जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' को है। 'कामायनी' मुझे बहुत प्रिय थी। उसमें श्रद्धा और मनु की कथा मुझे बेतरह मोहती थी। कहना चाहिए, यह कथा मेरे मन पर छा गई थी। मुझे लगा, मैं भी तो मनु ही हूँ, अपनी कुछ संभावनाओं और तमाम कमजोरियों के साथ भी। तो मैं मनु क्यों नहीं हो सकता? चंद्र प्रकाश मनु नाम मुझे अटपटा लगा। इतना लंबा नाम क्यों? तो मैं प्रकाश मनु हो गया।

कलानाथ मिश्र - जी, आपके नाम के प्रति मन में जिज्ञासा तो थी कि प्रकाश मनु में प्रकाश के साथ जुड़ा यह मनु भला कहाँ से आया होगा? आपने खुद ही पूरी अंतर्कथा सुना दी...

प्रकाश मनु - जी, मिश्र जी। फिर कविताएँ लिखने के साथ-साथ छपने का सिलसिला भी शुरू हुआ। उन दिनों बहुत लघु पत्रिकाएँ निकलती थीं। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में वे अकसर देखने को मिल जातीं। मैं उन्हें पढ़ता तो अपने जैसे बहुत सारे और कवियों से परिचित हुआ। फिर लघु पत्रिकाओं में छपने का सिलसिला शुरू हो गया। बहुत-सी पत्रिकाएँ मेरे पास आने लगीं। कवि के रूप में मेरी एक पहचान बनने लगी।

कलकत्ते से अशोक जोशी एक अखबारनुमा साहित्यिक पत्रिका निकालते थे, 'आने वाला कल'। उसमें काफी अच्छे कवि छपते थे। धीरे-धीरे मेरी कविताएँ भी उसमें छपने लगीं। अशोक जोशी मेरी कविताओं के इस कदर मुरीद थे कि पत्रिका के हर दूसरे-तीसरे अंक में मेरी कविता छपती थी। उनके पत्र बराबर मेरे पास आते थे। उसके जरिए बहुत से लोगों ने मुझे जाना। ऐसे ही 'लहर' अपने दौर की बहुत चर्चित पत्रिका थी, जिसे एक बड़े कद के संपादक प्रकाश जैन

निकालते थे। मैंने एक पत्र के साथ अपनी कुछ कविताएँ उन्हें भेजीं, तो उनका प्रेम जैसे बहने लगा। बहुत प्यार उनका मुझे मिला। मेरी बहुत सी चर्चित कविताएँ उस समय 'लहर' में छपीं। 'लिखूँ', 'छूटता हुआ घर', 'सुनें श्रीमान' सरीखी मेरी कई कविताएँ उन्होंने बहुत प्यार से छापीं। बाद में 'छूटता हुआ घर' नाम से मेरा कविता संग्रह निकला, जिस पर मुझे पहला गिरिजाकुमार माथुर स्मृति पुरस्कार मिला।

तो ऐसी बहुत-सी यादें हैं, मिश्र जी, जो आज भी मुझे उसी दौर में पहुँचा देती हैं। सचमुच यही मेरी कविता की दुनिया थी, जिसमें मैं रात-दिन डूबा रहता। बल्कि यही मेरी जिंदगी, यही मेरी अपनी दुनिया भी थी। कविता के अलावा और किसी चीज के बारे में तब मैं सोच ही नहीं पाता था। कविता मेरे लिए जिंदगी का पर्याय थी।

कलानाथ मिश्र - आपके कविता-संकलन 'छूटता हुआ घर' पर आपको पहला गिरिजाकुमार माथुर स्मृति पुरस्कार मिला। यह संकलन आपका कब छपा। क्या दिल्ली आने पर...

प्रकाश मनु - जी, भाई मिश्र जी। जिंदगी के बहुत सारे उतार-चढ़ाव के बाद मैं दिल्ली आया। खासकर हिंदुस्तान टाइम्स की बाल पत्रिका 'नंदन' में आने पर महसूस हुआ कि शायद पैरों के नीचे अब धरती है। देवेंद्र कुमार मेरे वरिष्ठ सहयोगी थे। कहानियाँ और कविताएँ बहुत अच्छी लिखते थे। मैंने उनसे बात की कि क्यों न हम लोग कविताओं का एक साझा संकलन निकालें? देवेंद्र जी को बात जँच गई। आखिर सन् 1990 में मेरी और देवेंद्र जी की कविताओं का एक साझा संकलन निकला, 'कविता और कविता के बीच'। जल्दी ही साहित्य जगत में इसकी एक अलग-सी पहचान बन गई।

बहुत से साहित्यकारों के पते खोजकर उन्हें यह पुस्तक हम लोगों ने भेजी थी। उनमें से कई साहित्यिकों की बहुत अच्छी प्रतिक्रियाएँ मुझे मिलीं। जगदीश चतुर्वेदी ने संकलन पढ़ा, तो बहुत प्रभावित हुए। वे 'इंडियन पोएट्री' संस्था के अध्यक्ष थे। जगदीश जी ने अपनी संस्था के एक कार्यक्रम में मुझे और देवेंद्र कुमार को कविता पाठ के लिए आमंत्रित किया। हिमाचल भवन में हुई वह गोष्ठी कई कारणों से मेरे लिए एक यादगार गोष्ठी बन गई। उसमें मैंने लंबी कविता 'नंगा सच' का पाठ किया, जो बरसों पहले 'जमीन' पत्रिका में छपी थी। कविता बहुत कठोर और असुविधाजनक थी। पर कई कवियों ने उसे सराहा। गोष्ठी में एक सुप्रसिद्ध कवयित्री भी थीं। अगले दिन वे 'नंदन' के दफ्तर में आईं। बहुत स्नेह और अपनत्व से मिलीं। बोलीं, "आपकी कविता सुनकर रहा नहीं गया।...लगा, मैं खुद चलकर आपको बताऊँ। वह एक अद्‌भुत कविता थी, जिसे एक बार सुनने के बाद उसके प्रभाव से मुक्त होना कठिन है। आपने उसे पढ़ा भी बहुत अच्छी तरह...!" यों कविता ने मुझे एक अलग पहचान दे दी थी।

कलानाथ मिश्र - पर आप तो छूटता हुआ घर के बारे में बता रहे थे न?

प्रकाश मनु - जी, उसी पर आता हूँ। पर देवेंद्र कुमार के साथ निकले पहले साझा संकलन कविता और कविता के बीच से ही उसके लिए रास्ता बना था। 'कविता और कविता के बीच' संकलन पर इंडो-बल्गारियन क्लब में रघुवीर सहाय सरीखे बड़े कवि की अध्यक्षता में एक कवि गोष्ठी आयोजित की गई थी। उसमें भाई दिविक रमेश जी ने संकलन की कविताओं पर बड़ा विस्तृत परचा पढ़ा था। एक खास यह कि इसी गोष्ठी के सिलसिले में रघुवीर सहाय जी से, जो मेरे अत्यंत प्रिय कवि थे, मेरी बड़ी अद्‌भुत मुलाकात हुई थी। बहरहाल, इसके कुछ अरसे बाद 'छूटता हुआ घर' नाम से मेरा कविता-संकलन निकला। मेरे लिए यह कम अचरज की बात नहीं थी कि इस कविता-संकलन पर मुझे पहला गिरिजाकुमार माथुर स्मृति पुरस्कार देने की घोषणा हुई। एक प्रसन्नता की बात यह भी थी कि इसके निर्णायक-मंडल के तीनों सदस्य बड़े ही सम्मानित और जाने-माने साहित्यकार थे, रामदरश मिश्र, जगदीश गुप्त और अजित कुमार। बाद में त्रिवेणी सभागार में श्यामाचरण दुबे जी की अध्यक्षता में हुए एक भव्य कार्यक्रम में यह पुरस्कार दिया गया। पुरस्कार डॉ. कर्ण सिंह ने दिया। उस समारोह में रामदरश जी और जगदीश चतुर्वेदी ने मेरी कविताओं पर बोलते हुए जो आत्मीयता से छलछलाते शब्द कहे, उन्हें मैं कभी भूल नहीं पाऊँगा। सच ही मुझे जीवन की राह मिल गई थी।

उस कार्यक्रम में मैंने घोषणा की। कि पुरस्कार की राशि का उपयोग मैं एक ऐसा संकलन निकालने के लिए करूँगा, जिसमें ऐसे समर्थ कवियों की कविताएँ एक साथ सामने आएँ, जिनका अभी तक कोई संकलन नहीं आया। सभी ने बड़ी प्रसन्नता से इसका स्वागत किया। बाद में इंद्रप्रस्थ प्रकाशन से 'सदी के आखिरी दौर में' कविता-संकलन आया, जिसमें ब्रजेश कृष्ण, हरिपाल त्यागी, विजयकिशोर मानव, संजीव ठाकुर, महाबीर सरवर, शैलेंद्र चौहान, श्याम सुशील के साथ-साथ मेरी भी कुछ नई कविताएँ शामिल थीं। इस कविता-संकलन पर इंडो-रशियन क्लब में एक कवि-गोष्ठी हुई, जिसमें डॉ. माहेश्वर और विष्णु खरे बहुत उत्साह के साथ संकलन में शामिल कविताओं पर बोले थे। इस संचयन का निकलना मेरे लिए एक सपने के पूरे होने जैसा था। कुछ अरसे बाद नमन प्रकाशन ने कविता पुस्तकों की एक शृंखला निकाली। उसमें रामदरश जी सरीखे वरिष्ठ कवि के साथ-साथ कुछ युवा कवियों के कविता-संकलन एक साथ सामने आए। मेरा नया संकलन भी उसमें शामिल था, 'एक और प्रार्थना', जिसमें मेरी नई और कुछ अलग ढंग की कविताएँ थीं। बहुत लोगों ने इसे सराहा।

कलानाथ मिश्र - पर मनु जी, 'एक और प्रार्थना' के बाद बरसों तक आपकी कविताओं का कोई संकलन नहीं आया। लगता है, गद्य आपको कुछ अधिक रास आने लगा था...?

प्रकाश मनु - जी, आप ऐसा कह सकते हैं, पर सच तो यह है मिश्र जी, कि मेरा कविता लिखना कभी छूटा नहीं। हाँ, कोई संकलन उनका नहीं आया।...फिर कहानियाँ और उपन्यास लिखने का सिलसिला उन दिनों बड़ी तेजी से चला। यह ऐसा दौर था, जिसमें उपन्यास ही मेरे मन-मस्तिष्क में छाए रहे। उसी में जीना, उसी में साँस लेना। एक के बाद एक 'यह जो दिल्ली' है, 'कथा सर्कस' और 'पापा के जाने के बाद' उपन्यास लिखे गए, जिन्होंने साहित्य जगत में एक हलचल-सी पैदा की। इसके साथ ही हिंदी के दिग्गज साहित्यकारों के साक्षात्कार लेने की ललक भी मन में पैदा हुई। एक तरह की लंबी अनौपचारिक बतकही की शक्ल में लिए गए ये साक्षात्कार मेरी पुस्तक 'मुलाकात' में शामिल हैं। बहुत से तो अभी तक अप्रकाशित ही हैं। इसी तरह आलोचना में लीक से हटकर काफी गंभीर काम मैंने किया। यह मेरे जीवन की एक नई ही राह थी।

फिर 'हिंदी बाल कविता का इतिहास' और 'हिंदी बाल साहित्य का इतिहास' जैसे ग्रंथों पर काम करने का सिलसिला चल पड़ा, जिसके लिए अपने को बूँद-बूँद करके निचोड़ना जरूरी था। इनमें 'हिंदी बाल कविता का इतिहास' तो सन् 2003 में मेधा बुक्स से छपकर आ गया था, पर 'हिंदी बाल साहित्य का इतिहास' कोई बाईस बरसों की लंबी तपस्या के बाद सन् 2018 में छपकर आया। यह मेरे जीवन का इतना बड़ा काम था कि मुझे लगा, अब मैं सुख से मर सकता हूँ।

कलानाथ मिश्र - इधर आपका नया कविता-संकलन 'मैंने किताबों से घर बनाया है' छपकर आया है। बरसों बाद आए इस संकलन का आना आपको कैसा लगा?

प्रकाश मनु - जी, भाई मिश्र जी, मेरे जीवन में कविता की जो जगह है, वह कोई ले नहीं सकता, और किसी लेखक के लिए उसके नए कविता-संकलन के आने का रोमांच क्या होता है, यह शायद शब्दों में मैं बता भी नहीं सकता। हालाँकि इसका श्रेय मैं अपने गुरु रामदरश जी के अलावा अपनी चिरसंगिनी सुनीता और अभिन्न मित्र ब्रजेश भाई को देना चाहूँगा। पिछले कुछ वर्षों में तमाम कार्यों की व्यस्तता के बीच मेरी मित्र और सहयात्री सुनीता का निरंतर आग्रह, "चंदर, तुम्हें अपनी कविताओं को भी सामने लाना चाहिए। उनमें कुछ अलग बात है...!" ऐसे ही ब्रजेश भाई से भी जब-जब मिलना होता, वे बराबर याद दिलाते, "कवि भाई, तुम्हारी कविताओं का संकलन भी आना चाहिए। आखिर सब कुछ के बावजूद तुम्हारी अपनी पहचान तो वही है।" और रामदरश जी तो फोन पर बातें करते-करते अचानक कुरेद देते, "मनु जी, आपकी कविताओं की एक अलग ही रंगत है, आपको कविताएँ और लिखनी चाहिए...!" इस पर मेरा जवाब, "डाक्साब, कविताएँ लिखी तो जा रही हैं, पर देखिए कब सामने आ पाती हैं...?" "तो आप पत्र-पत्रिकाओं को क्यों नहीं भेजते अपनी कविताएँ? बहुत अरसा हो गया, अब आपका नया संकलन भी आना चाहिए।" रामदरश जी खासी कशिश से कहते, तो मैं थोड़ा शर्मिंदा हो जाता।

और अंततः कविता-संकलन 'मैंने किताबों से घर बनाया है', तैयार हुआ, जिसमें पिछले दो-ढाई दशकों में लिखी गई मेरी चुनिंदा कविताएँ एक साथ आ रही हैं। आदरणीय रामदरश जी के साथ-साथ मेरे अनन्य मित्र ब्रजेश भाई और सुख-दुख की सहयात्री सुनीता का इतना आग्रह न होता, तो यह संग्रह कभी आ न पाता। शायद इसलिए कि अपनी कविताओं को लेकर एक अजब-सा गोपन भाव मेरे मन में है, जिसे ठीक-ठीक समझना और कह पाना आज भी मेरे लिए कठिन है। सच पूछिए तो मेरी कविताएँ एक अर्थ में कविता के हर्फों में लिखी गई मेरी आत्मकथा और समय-कथा भी है। वे ऐसी क्यों है? क्या इससे भिन्न भी हो सकती है कविता, मैं नहीं जानता। शायद कविता का यही रूप मुझे प्रिय है और इसी रूप में मैंने उसे भीतर तक महसूस किया है।

कलानाथ मिश्र - मनु जी, अभी और क्या करने की ललक आप अपने भीतर पाते हैं...?

प्रकाश मनु - सबसे ज्यादा तो आत्मकथा। मेरी आत्मकथा चार खंडों में आनी है। इनमें अभी एक खंड ही आया है, 'मैं मनु'। बाकी को फाइनल टच देना बाकी है। कोई दो-तीन बरस इसमें लगेंगे। फिर बाल साहित्य की कुछ बड़ी योजनाएँ हैं, जिनमें बहुत श्रम की जरूरत है। इसी तरह जिन लेखकों और साहित्यिक मित्रों के बहुत करीब रहा, उनके बारे में संस्मरण लिखने की एक गहरी तड़प-सी मन में है। जानता हूँ मिश्र जी, अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ और मेरी शक्तियाँ निरंतर चुकती जा रही हैं। पर अधिकतम जितना कर सकता हूँ, उतना किए बिना जाऊँगा, तो सुख से मर नहीं पाऊँगा। इसलिए जितना कर सकता हूँ, उतना जरूर करता हूँ, करना चाहता हूँ- और यही मेरा सुख है। लिखने से बड़ा कोई सुख जीवन में होता है, मैंने कभी जाना नहीं। इसलिए जो मिला है, उसमें प्रसन्न हूँ। कभी किसी चीज की चाह मुझे नहीं हुई।

बस, ईश्वर से एक ही चीज माँगता हूँ, कि हे मेरे राम जी, मैं अपने जीवन की आखिरी साँस तक लिखता-पढ़ता रहूँ। और जब इस जीवन से जाऊँ, तो मेरे हाथ में कलम हो या फिर किताब। और आखिरी क्षण तक लिखते-पढ़ते हुए ही मैं इस दुनिया से जाऊँ। इससे बड़ा कोई सपना मेरे जीवन का नहीं है।

प्रकाश मनु, 545, सेक्टर-29, फरीदाबाद (हरियाणा), पिन-121008
मो. : 09810602327, ईमेल - prakashmanu334@gmail.com
कलानाथ मिश्र, संपादक, साहित्य-यात्रा, पटना (बिहार)।

✧ ✧ ✧

प्रकाश मनु : आत्मीयता का स्पंदन

रामदरश मिश्र

मनु खूब पढ़ते हैं और जो पढ़ते हैं उसे गुनते हैं, उस पर प्रायः समीक्षाएँ लिखते हैं, लेकिन वे अलग तरह के समीक्षक हैं। समीक्षा के पारंपरिक ढर्रे पर चलने वालों को यह समीक्षा नहीं लगती। बात यह है कि प्रकाश मनु अनौपचारिक और सर्जनात्मक ढंग से समीक्षा लिखते हैं। लगता है, बातचीत करते हुए चल रहे हैं। इनकी सीमाएँ बहुत खुली हुई होती हैं और उनका अपना रस होता है। अनौपचारिकता की प्रक्रिया में रह-रहकर उनकी व्यक्ति व्यंजक प्रतिक्रियाएँ भी उभर आती हैं और धनात्मक या निषेधात्मक अतिरेकवादी स्वर उभर आते हैं। सब कुछ अच्छा चल रहा है, किंतु कहीं कुछ ऐसा आ गया जो उन्हें पसंद नहीं तो कह उठेंगे, "सब चौपट हो गया।" कभी अपने शीर्षक में ही किसी को प्रेमचंद के बाद का सबसे बड़ा कहानीकार कह देंगे या ऐसे ही बहुत कुछ। इसके पीछे उनकी अपनी पसंद तो होती ही है, यह कसक भी होती है कि इतने ताकतवर लेखक की उपेक्षा की गई है तो उसके बारे में बोलना है तो जरा कम जम के बोलो।

बहुत खोजने पर भी मनचाहा व्यक्ति नहीं मिलता या जो हमारे साथ वर्षों से विश्वसनीय हमराही की तरह चल रहे होते हैं, वे भी किसी बिंदु पर छिटककर अलग हो जाते हैं और हम सोचते रह जाते हैं, क्या हुआ? इतनी लंबी दोस्ती को एकाएक लकवा क्यों मार गया? अपनेपन के बड़े-बड़े दावे बीमार क्यों हो गए? गाँवों, कस्बों के जाने-पहचाने सुगम रास्तों पर तो हम साथ चलते रहे, लेकिन जब हम महानगर की अनजान और बेरहम दुनिया में आए और जब हमें एक-दूसरे के साथ की बेहद जरूरत थी, तब अलग हो गए और अपनी-अपनी सुविधा की दुनिया में खोने लगे। क्यों होता है ऐसा? और क्यों होता है ऐसा कि आप अपने घर अपने में खोए हुए बैठे हैं और आपके सामने एक अजनबी आदमी आकर खड़ा हो जाता है। आप उसे देखते हैं, मन ही मन सोचते हैं - कौन है यह निपट देहाती-सा आदमी। शक्ल-सूरत से गाँव का, वेशभूषा में गाँव का, आँखों में राग-दीप्त ऊर्जा और पूरे अस्तित्व में एक संकुचित शालीनता। वह पूछता है, "बिना बुलाए और सूचना दिए चला आया, क्षमा चाहता हूँ। क्या आपका थोड़ा समय ले सकता हूँ?"

"अरे आइए...आइए!" कहकर आप उठ खड़े होते हैं और आपके उल्लास से आगंतुक का संकोच कुछ कम होता है, वह बैठकर धीरे-धीरे अपना परिचय देता है। आपको लगता है, देहाती-सा दिखने वाला वह व्यक्ति

बहुत पढ़ा-लिखा है, उसने आपको भी बहुत पढ़ा है। स्तर-स्तर दूरियाँ टूटती हैं और परिचय की एक खुशबू उभरने लगती है दोनों ओर। पहली भेंट में ही कई घंटे बीत जाते हैं और आपको लगता है यह आदमी कुछ दूसरी तरह का है। इसके अपनेपन में सच्चाई है, सीधाई है। वह चला जाता है तो आपको लगता है, यह गया नहीं है, पहली ही भेंट में वह अपने को आप में कहीं छोड़ गया है और शायद वह आपको भी अपने साथ लिए चला गया है।

हाँ, प्रकाश मनु मेरे यहाँ ऐसे ही आए थे। जाड़े की दोपहर थी, मैं अपने बरामदे में धूप में खाट पर लेटा कुछ पढ़ रहा था। गेट पर हलकी-हलकी दस्तक-सी होती महसूस हुई। देखा तीन सज्जन खड़े थे। "आइए-आइए।" मैंने कहा।

"कृपया बैठिए।" सामने पड़ी कुर्सियों की ओर इशारा करते हुए मैंने कहा।

"क्षमा कीजिए, बिना पूर्व सूचना के हम चले आए। आपका फोन नंबर ज्ञात नहीं था, बस, पता मालूम था।" एक ने कहा।

मैंने उसकी ओर ध्यान से देखा - पैंट, आधी बाँह का कुर्ता, बाल सफेद, चेहरा एकदम किसानी। मैं उनके चेहरे को ध्यान से देखने लगा और वे संकोच के साथ कह रहे थे, "मेरे साथ में मित्र देवेंद्र कुमार जी हैं और ये हैं मित्र श्री रमेश तैलंग और मेरा नाम प्रकाश मनु है।"

"बहुत अच्छा लग रहा है आप लोगों से मिलकर।" मैंने घर में आवाज दी, "तीन गिलास पानी भेज दीजिएगा।"

पत्नी पानी लेकर आई। मैंने उनसे इन लोगों का परिचय कराया। वे सहज प्रसन्न हो आई और पूछा, "आप लोग चाय में चीनी तो लेते हैं न।"

"अरे भाभी जी, यह कष्ट क्यों कर रही हैं?"

"नहीं, मैंने पूछा है चीनी लेते हैं न। मेरे सुख को कष्ट का नाम मत दीजिए।"

"हाँ, लेते हैं।" सबने स्वीकृति दी।

"डाक्टर साहब, मेरी और देवेंद्र कुमार जी की कविताओं का एक संयुक्त संग्रह आया है, आपको देना चाहते हैं।"

"यह तो मेरे लिए खुशी की बात है।"

प्रकाश जी ने वह संग्रह दिया। फिर परिचय का जरा गाढ़ा दौर चला, फिर समकालीन साहित्य पर बातें होने लगीं। मनु जी ने मेरी जो कविताएँ पढ़ीं और पढ़ाई थीं, उनकी चर्चा छेड़ दी। जाड़े की खुशनुमा धूप में हमारी बातें बहती रही, बहती रहीं। इस प्रारंभिक परिचय में ही बहुत कुछ ऐसा था, जो भविष्य की ओर संकेत कर गया था।

कुछ दिनों बाद दीनदयाल उपाध्याय मार्ग पर स्थित कवि उपेंद्र के घर पर मनु और देवेंद्र की कविता पुस्तक पर विचारगोष्ठी आयोजित की गई। मैंने उसकी अध्यक्षता की। वास्तव में प्रकाश

मनु और देवेंद्र कुमार की कविताओं के रंग अलग-अलग तो थे ही, उनकी उपलब्धियाँ भी अलग-अलग थीं। प्रकाश मनु की कविताएँ कविता के रूप में कमजोर थीं। वहाँ उपस्थित लोगों ने इन दोनों कवियों की कविताओं को उनके सही परिप्रेक्ष्य में आकलित किया और मनु जी की कविताओं के आक्रोशी शोर पर आपत्ति की। मुझे याद है, मनु जी ने जवाब देते हुए कहा था, "यदि कोई मेरा गला दबाएगा तो मैं चिल्लाऊँगा नहीं?" मैंने कहा था, "चिल्लाइए, जरूर चिल्लाइए, लेकिन उसे कविता तो मत कहिए।"

प्रकाश मनु एक ईमानदार लेखक हैं। वे जिस तरह औरों की रचनाओं पर अपनी बेबाक राय देते हैं, उसी तरह अपनी रचनाओं पर बेबाक राय सुनकर बुरा नहीं मानते, बल्कि कुछ सीखते हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि उस गोष्ठी में अपनी कविताओं के बारे में लोगों की कटु आलोचना सुनकर बुरा नहीं माना होगा। और भीतर-भीतर महसूस किया होगा कि लोग सच कह रहे हैं और उन्होंने अपनी कमजोरी से लड़ाई रखनी जारी रखी होगी।

कुछ समय बाद गिरिजा कुमार माथुर न्यास की ओर से उनकी स्मृति में नए कवियों की कविताओं पर एक पुरस्कार देने का निश्चय किया गया। निर्णायकों में मैं भी एक था। विचार के लिए प्रकाश मनु की नई कविता पुस्तक 'छूटता हुआ घर' भी रखी हुई थी। मुझे इस संग्रह की कविताएँ देखकर सुखद आश्चर्य हुआ। ये अलग तरह की कविताएँ थी, बहुत संयत और सघन भाव वाली कविताएँ। पहली कविताओं का सारा उफान और आक्रोशी स्फीति गायब थी। मैं सोचने लगा, कोई अपनी आलोचनाओं से इतना सीख सकता है क्या, जितना कि मनु जी ने सीखा है। हम सबने इन कविताओं को पसंद किया और उसे पुरस्कृत किया।

प्रकाश मनु काम करते हैं, खूब जमकर काम करते हैं और सहज भाव से उनके काम को स्वीकृति मिलती है तो वे बहुत प्रसन्न होते हैं, लेकिन यह स्वीकृति पाठकीय प्रतिक्रिया के रूप में होनी चाहिए, इनाम इकराम के रूप में नहीं। गिरिजा कुमार माथुर सम्मान उन्हें सहज भाव से ही मिला था। उन्हें कतई पता नहीं था कि उनकी पुस्तक पर विचार हो रहा है। फिर भी जब मैंने उन्हें फोन से पुरस्कार की सूचना दी तब वे उल्लसित नहीं हुए। संकोच से बोले, "डाक्टर साहब, यह क्या हुआ? मुझ से योग्य कई लेखक पड़े हैं, पहले उन्हें मिलना चाहिए था।" मुझे उनकी उदासीनता से थोड़ा बुरा भी लगा। मैंने कहा, "यहाँ उनके अनेक लोगों के योग्य-अयोग्य होने का सवाल नहीं था। एक सीमित अवधि में प्रकाशित जो कविता पुस्तकें उपलब्ध हुईं, उनपर विचार हुआ और आपकी पुस्तक सबको पसंद आइ, तो इसमें क्या किया जाए?"

"अच्छा, एक काम हो सकता। वह यह कि इस राशि का उपयोग मैं अपने लिए नहीं करूँगा, चाहूँगा कि इस राशि से मेरे कुछ समकालीन अच्छे कवियों की कविताओं का संकलन प्रकाशित हो।"

"यह तो आपको तय करना है। इसमें किसी को क्या आपत्ति हो सकती है।"

और उन्होंने पुरस्कार प्राप्ति के अवसर पर यह घोषणा कर दी कि वे इस राशि का उपयोग कुछ समकालीन कवियों की कविताओं के संकलन के प्रकाशन के लिए करेंगे। उन्होंने किया।

उनके संपादन में इंद्रप्रस्थ प्रकाशन से 'सदी के आखिरी दौर में' नाम का एक कविता-संकलन निकला, जिसमें वे कवि थे जो मुख्यधारा की पहचान से बाहर हैं किन्तु अपनी शक्ति में उनसे कमतर नहीं हैं। मनु जी ने यह अच्छा काम किया। उन्हें प्राप्त पुरस्कार से अनेक कवि पुरस्कृत हो गए और पुरस्कार स्वयं व्याप्ति पा गया।

खैर, यह कुछ बाद की बात है। मनु जी की रचनाएँ यहाँ-वहाँ दिखाई पड़ जाती थीं और मुझे महसूस होने लगा था कि मनु स्वयं संकोची व्यक्ति भले हों, किंतु किसी झूठ और गलाजत के विरुद्ध खरी-खरी कहने में उन्हें न संकोच होता है, न भय। धीरे-धीरे मुझे ज्ञात हो गया था कि मनु ने शिक्षा जगत के क्रूर व्यवहार को बहुत सहा है। इतना सहा है कि अब कुछ भी सहने से भय नहीं लगता और किसी भी व्यक्ति या व्यवस्था से उन्हें झुककर पाने की लालसा नहीं है, इसलिए डर नहीं लगता और उनके भीतर का खरा मनुष्य किसी के भी किसी भी प्रकार के अमानवीय व्यवहार को बर्दाश्त नहीं करता। जहाँ संभव होता है, बोलता है, नहीं तो चुप रहकर स्वयं लहूलुहान होता है। जिस साहित्य-जगत के यात्री बनकर वे चल रहे हैं, उस जगत में क्या कम क्रूरताएँ और कुरूपताएँ हैं, कम स्वार्थ-समीकरण हैं, परिदृश्य को छोटा और असुंदर करने के कम षड्यंत्र हैं? वे इस जगत के बीच से गुजरते हैं, आहत होते हैं और खुलकर बोलते हैं।

धीरे-धीरे मैंने यह भी अनुभव किया कि मेरे प्रति उनका लगाव गहराता जा रहा है। मिलने पर कभी-कभी यह भी कहते रहे कि हिंदी आलोचना का जो रवैया है, उसके कारण कुरुक्षेत्र में रहते हुए मैं उन अच्छे और समर्थ कवियों को अधिक नहीं पढ़ सका, जो उस समय चर्चा में न थे। बाद में ऐसे बहुत से कवियों के जीवित संपर्क में आया, तब लगा कि मैंने कितना कुछ खोया था। इस संदर्भ में वे मुझे भी याद करते थे।

याद आ रहा है वह प्रसंग, जब उन्होंने बहुत आहत होकर 'हिंदुस्तान' में एक टिप्पणी लिखी थी। साहित्य अकादमी से 'समकालीन हिंदी कविता' संकलन प्रकाशित हुआ। संपादक थे परमानंद श्रीवास्तव। उस संकलन में स्वयं परमानंद तो थे और बहुत मजे में थे, किंतु मुझ समेत अन्य अनेक कवि नहीं थे, क्योंकि उन कवियों पर साहित्य के आई.एस.आई. का ठप्पा नहीं लगा था। ठप्पा तो स्वयं परमानंद के कवि पर भी नहीं लगा है, किंतु वे संपादक थे, तो उन्हें उसमें घुसने से कौन रोक सकता था? यह बात अलग है कि वे संपादक बनाए गए थे, आई.एस.आई. की ही मेहरबानी से। सो प्रकाश मनु विचलित हो गए और इस संग्रह की विसंगतियों पर जमकर प्रहार कर दिया। इस संग्रह में कुछ विशिष्ट कवियों को अनुपस्थित कर दिए जाने की चालाक हरकत उन्हें नागवार गुजरी और खुलकर विरोध कर दिया। उसके बाद विरोध के और स्वर उनके स्वर में मिल गए।

दरअसल यह एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा था। यह संकलन किसी बनिया की दुकान से नहीं छपा था कि जिसे चाहो लो, जिसे चाहो छोड़ो की छूट मिल जाए। यह साहित्य अकादमी जैसी एक राष्ट्रीय संस्था से प्रकाशित हुआ था। अतः एक मामूली से संपादक को इतनी मनमानी करने की छूट नहीं दी जा सकती।

मुझे एक ओर प्रकाश मनु की सघन होती सारस्वत साधना सुख दे रही थी, दूसरी ओर मेरे प्रति निरंतर व्यापक और गहन होती उनकी आत्मीयता मुझे बहुत कुछ दे रही थी। हम लोग आत्मीयता के उस बिंदु पर पहुँच गए थे, जहाँ पहुँचकर प्रायः मिलने की इच्छा होती रहती है और कई दिन तक साक्षात या दूरभाषीय संपर्क न होने पर खालीपन लगने लगता है। मैं जब भी शहर की ओर निकलता, मनु जी के दफ्तर (नंदन) में पहुँच जाता। कभी वैसे भी उनसे मिलने निकल जाता। कभी वे दफ्तर जाने से पूर्व सुबह-सुबह मेरे घर पहुँच जाते और हम जब भी मिलते, कुछ बतियाते और खूब हँसते रहते। बातें, कहकहे ही कहकहे।

हमारे उनके बीच कभी यह संकट आया ही नहीं कि आखिर बात किस विषय पर की जाए। साहित्य से लेकर घर-परिवार तक न जाने कितने विषय एक-दूसरे में से निकलते चले जाते थे। हमारे साझे के न जाने कितने स्मरणीय दिन अंकित हैं यहाँ-वहाँ। और वह दिन तो कितना मूल्यवान था जिस दिन मनु जी सुबह-सुबह फरीदाबाद से मेरे मकान पर आ धमके थे और दिन भर एक लंबा साक्षात्कार चलता रहा- चाय के साथ, नाश्ते के साथ, भोजन के साथ कमरे में, लान में, पास के छोटे से उद्यान में बैठे हुए हम लोगों के बीच भावों और विचारों की गुनगुनी नदी बह रही थी।

अद्‌भुत बात यह थी कि वहाँ साक्षात्कार की कोई औपचारिकता नहीं थी, बस अनौपचारिक रूप से वार्ता बह रही थी और मनु जी सहज ही सबको अपनी स्मृति में समेट रहे थे। जब वह लंबा साक्षात्कार छपा तो मैं चकित था कि इतनी सारी बातें मनु जी ने बिना लिखे ही अपने में समेट ली थीं और वह साक्षात्कार एक तरह से मेरी छोटी-सी, किंतु संपूर्णता का आभास देती हुई जीवन-कथा बन गया था। यह साक्षात्कार 'वैचारिकी' में छपा था-और यही क्यों, प्रकाश मनु द्वारा लिए गए अनेक लेखकों के खूब लंबे साक्षात्कार छपे थे। प्रकाश मनु ने इन लेखकों को अनेक व्यक्तिगत एवं साहित्यिक सवालों के रू-ब-रू किया था और उन्हें खूब जमकर खुलने के लिए बाध्य किया था। अतः ये साक्षात्कार हमारे साहित्य की निधि बन गए हैं जो उनकी पुस्तक 'मुलाकात' में संगृहीत हैं। सच पूछिए तो प्रकाश मनु ने साक्षात्कार विधा को बहुत जीवंतता और अनौपचारिकता प्रदान की।

प्रकाश मनु की अपनी पसंद-नापसंद है, जो उनकी मानवीय और मार्क्सवादी दृष्टि से संचालित है, लेकिन वे अपनी पसंद-नापसंद लेकर किसी रचना के पास नहीं जाते। वे किसी भी रचना के पास रचना के होकर जाते हैं, उसमें गहरे उतरते हैं, तब उसे पसंद या नापसंद करते हैं। नापसंद रचना को भी उसका अपना प्राप्य देते हैं और पसंद रचना की भी सीमाओं और अंतर्विरोधों को उजागर करने में नहीं हिचकिचाते। सच पूछिए तो वे उन लेखकों और आलोचकों में हैं जो साहित्य के परिदृश्य को बड़ा करते हैं, जहाँ कहीं जो कुछ लिखा जा रहा है, यथासंभव उससे गुजरना चाहते हैं और कहना चाहते हैं, "देखो कुछ लोगों ने मिलकर आपस में एक-दूसरे को बड़ा बनाकर शेष जगत को हाशिए पर या हाशिए से बाहर डाल रखा है, किंतु यह सच तो नहीं है। सच तो यह है कि उसकी दुनिया से बाहर काफी कुछ लिखा गया है और बहुत अच्छा

लिखा गया है। कितना अच्छा लिखा गया है, देखो मैं तुम्हें दिखाता हूँ।"

उन्होंने समकालीन कहानियों पर लेख लिखा, उत्तरशती के उपन्यासों पर पुस्तक लिखीं और उन अनेक कहानियों और उपन्यासों के महत्व को रेखांकित किया, जो अपनी बड़ी अस्मिता के बावजूद साहित्य के महंतों द्वारा उपेक्षित थे। मनु खूब पढ़ते हैं और जो पढ़ते हैं उसे गुनते हैं, उस पर प्रायः समीक्षाएँ लिखते हैं, लेकिन वे अलग तरह के समीक्षक हैं। समीक्षा के पारंपरिक ढर्रे पर चलने वालों को यह समीक्षा नहीं लगती। बात यह है कि प्रकाश मनु अनौपचारिक और सर्जनात्मक ढंग से समीक्षा लिखते हैं। लगता है, बातचीत करते हुए चल रहे हैं। इनकी सीमाएँ बहुत खुली हुई होती हैं और उनका अपना रस होता है। अनौपचारिकता की प्रक्रिया में रह-रहकर उनकी व्यक्ति व्यंजक प्रतिक्रियाएँ भी उभर आती हैं और धनात्मक या निषेधात्मक अतिरेकवादी स्वर उभर आते हैं। सब कुछ अच्छा चल रहा है, किंतु कहीं कुछ ऐसा आ गया जो उन्हें पसंद नहीं तो कह उठेंगे, "सब चौपट हो गया।" कभी अपने शीर्षक में ही किसी को प्रेमचंद के बाद का सबसे बड़ा कहानीकार कह देंगे या ऐसे ही बहुत कुछ। इसके पीछे उनकी अपनी पसंद तो होती ही है, यह कसक भी होती है कि इतने ताकतवर लेखक की उपेक्षा की गई है तो उसके बारे में बोलना है तो जरा कम जम के बोलो।

हाँ, निश्चय ही मनु जी ने यह बड़ा काम किया है कि कई लेखकों के महत्व की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया। इस संदर्भ में देवेंद्र सत्यार्थी और शैलेश मटियानी जी का नाम लिया जा सकता है। सत्यार्थी जी तो साहित्य के परिदृश्य से विलुप्त ही कर दिए गए थे। प्रकाश मनु ने उन पर लिखा, उनकी पुस्तकें संपादित कीं, उन पर पुस्तकें लिखवाईं और उनके परिवार में धँसकर उसके लिए प्रसन्नता का कारण बने। इसी प्रकार शैलेश मटियानी पर बहुत मन से काफी लिखा-लिखाया। उन्हें प्रेमचंद के बाद का सर्वाधिक सशक्त कहानीकार घोषित किया। मेरे और मेरे साहित्य पर भी बहुत लिखा-बहुत डूबकर लिखा। उनके मन में मेरे और मेरे लेखन में जहाँ कहीं कमजोरी दिखाई पड़ी, उसे भी कहने से नहीं चूके, बल्कि खुलकर कहा और मेरे प्रति उनके लगाव का ही परिणाम है कि मेरे अस्सीवें जन्मदिवस पर वाणी प्रकाशन से उनकी पुस्तक आई, 'रामदरश मिश्र एक अंतर्यात्रा।'

प्रकाश मनु खूब पढ़ते हैं और उनमें निश्चय ही प्रतिभा की बड़ी तेजस्विता है। उनके भीतर आस-पास की जिंदगी के दुखों और संघर्षों से उपजे अनुभवों का पुंज है और है एक गहरी संवेदना तथा मूल्य-दृष्टि। इसके तहत उनकी कविताएँ आईं, कहानियाँ आईं, उपन्यास आए। विधा कोई भी हो, प्रकाश मनु अपने लेखन में अलग से दिखाई पड़ते हैं। उनकी भाषा अलग है, शैली अलग है और कथ्य तो उनका अपना है ही इसलिए उनमें खांटी जिंदगी का रस प्राप्त होता है। पढ़ते जाइए, कहीं कोई उलझन नहीं, सर्वत्र एक खुलापन और उस खुलेपन के भीतर दर्द और सामाजिक विसंगतियों तथा उजास की परतें।

उन्होंने तीन उपन्यास लिखे, तीनों के अपने-अपने रंग हैं, लेकिन सबमें अपना समय समाया हुआ है। मूल्यवादी कहे जाने वाले साहित्य के क्षेत्र की अनंत विसंगतियाँ एवं

मूल्यहीनताएँ इन उपन्यासों में व्याप्त हैं। 'यह जो दिल्ली है' बहुत ही प्रभावशाली उपन्यास है। 'कथा सर्कस' अपने आकार में महाकाव्यात्मक है और साहित्य जगत की विराट भूमि पर यात्रा करता है, किंतु बिखर गया है, फैल गया है। वह तमाम लीलावादी लेखकों को सामने रखकर बैठा है। केंद्रीय कथा इतनी प्रभावशाली है कि अनावश्यक और अवांतर प्रसंगों से उसका घिरना तकलीफ देता है। मनु जी भी इसे स्वीकारते हैं और इस प्रयत्न में है कि उसकी मूल कथा के सूर्यीय प्रकाश को तमाम अनावश्यक प्रसंगों के राहु-केतुओं से मुक्त किया जाए। बाल साहित्य पर भी प्रकाश मनु का कार्य अत्यंत मूल्यवान है। उन्होंने अंधकार में खोए और बिखरे हुए बाल साहित्य को संचित किया है और उसका प्रामाणिक इतिहास लिखा है।

अच्छा है कि प्रकाश मनु मंच से लगाव नहीं रखते हैं। मंच से कुछ बोलना भी होता है तो लिखकर लाते हैं और इस तरह उनका श्रम वाणी का जादू बनकर हवा में खो नहीं जाता, बल्कि सदा के लिए कागज पर अंकित हो जाता है। अतः उनकी वाणी भी उनके लेखन के साथ ही चलती है। उन्होंने इस रूप में अनेक गोष्ठियों से शिरकत की है और उस शिरकत को अपने ग्रंथों से जोड़ दिया है। प्रकाश मनु मंच के वक्ता भले न हों, लेकिन लेख पढ़ते समय उनकी वाणी में ओज भर आता है। जहाँ आवश्यक होता है वहाँ वे साहित्यिक और सामाजिक विसंगतियों को ललकारते से लगते हैं। प्रकाश मनु को आप यों देखिए तो शांत भाव से बैठे दिखाई पड़ेंगे। फोन कीजिए तो थोड़ा ठहरकर धीमी आवाज में कहेंगे, 'हेलो।' लेकिन बात शुरू होते ही उनकी आवाज ऊपर चढ़ने लगेगी और हँसी-कहकहों में बदल जाएगी। बातचीत में भी उनकी आवाज मंद सुर में शुरू होगी, कुछ ठहरकर चलेगी, फिर काफी तेज हो जाएगी और प्रवाह में आ जाएगी।

प्रकाश मनु बहुत ही संवेदनशील हैं। किसी के भी दुःख से आर्द्र हो जाते हैं, रोने लगते हैं। अपने अग्रज लेखकों के मन में बहुत सम्मान भाव है। उन्हें याद करते हुए उनकी आँखे भीग जाती हैं। कई बार तो उनपर लेख पढ़ते हुए इतने भावुक हो जाते हैं कि गोष्ठी में ही उनकी आँखें बरसने लगाती हैं, गला भर आता है। प्रकाश मनु के साथ दिल्ली में मेरा समय तो बीता ही है। हमने एक बार साथ-साथ कानपुर की भी यात्रा की थी। एस.एन. बाल विद्यालय के प्रबंधक अरुण प्रकाश अग्निहोत्री के आमंत्रण पर हम लोग कानपुर गए थे। मनु और मैं एक ही कमरे में ठहरे थे। हमारी वह यात्रा तमाम छोटे-छोटे सुखों से स्पंदित हो आई थी।

उसी अवसर पर मुझे कानपुर विश्वविद्यालय में एक मौखिकी लेनी थी। मनु जी साथ हो लिए। शोध-छात्र ने किसी आंचलिक उपन्यास पर काम किया था। जब मैं औपचारिक रूप से बात कर चुका, तब प्रकाश मनु अनौपचारिक रूप से एक बात पूछ दी, "आपने 'जल टूटता हुआ' पढ़ा है?" उसने 'नहीं' में सिर हिलाया तो मनु जी उत्तेजित हो उठे। आपने एक आंचलिक उपन्यास पर काम किया है, तो क्या केवल उसी को पढ़ना पर्याप्त था। आंचलिक उपन्यास के पूरे परिदृश्य की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक नहीं लगा। और क्या यह परिदृश्य 'जल टूटता हुआ' के बिना पूरा होता है?"

वह महिला तो घबरा ही गई, मैं भी संकोच में पड़ गया। बोला, "अरे, छोड़िए मनु जी, इन्होने 'जल टूटता हुआ' नहीं पढ़ा तो क्या हो गया?"

"अरे नहीं डाक्टर साहब, हुआ क्यों नहीं? आपका उपन्यास है तो आपको संकोच होना स्वाभाविक है, परंतु यह एक साहित्यिक मुद्दा है, उठना ही चाहिए।"

"ठीक है आप जाइए।" मैंने महिला से कहा और अपने को संकोच से मुक्त किया।

मैंने अपनी लंबी जीवन-यात्रा में अनुभव किया है कि बहुत से लोगों की दोस्ती और दुश्मनी इकहरी होती है। यानी वे चाहते हैं कि जिसे वह पसंद करता है, उसे दोस्त भी पसंद करें, जिससे उनकी दुश्मनी है, उससे दोस्त की भी दुश्मनी हो, यह बहुत घटिया और अव्यावहारिक सोच है। मैं इसे पसंद नहीं करता। मेरे बहुत से ऐसे अच्छे मित्र और आत्मीय हैं, जो उन्हें खूब पसंद करते हैं, पर जो मुझे बिल्कुल भी नहीं चाहते या वे उन्हें बिल्कुल नहीं चाहते, जिन्हें मैं खूब चाहता हूँ। लेकिन इस बात का तनिक भी मलाल मुझमें नहीं व्यापा। सोचता रहा कि वे मेरे मित्र हुए तो क्या हुआ, दूसरों के बारे में उनकी अपनी पसंद-नापसंद है और उन्हें इस बात का पूरा अधिकार है।

मैं महसूस करता रहा हूँ कि मनु जी भी कुछ ऐसा ही सोचते-विचारते हैं। कई लोग हैं जिन्हें वे खूब चाहते हैं और वे लोग मुझे खूब नापसंद हैं, किंतु मनु जी उनके भी घने मित्र हैं और मेरे भी। जहाँ तक संभव हो सकता है, ऐसी स्थितियों में वे पुल बनाने की कोशिश करते हैं। यानी मुझसे उनकी और उनसे मेरी तारीफ करेंगे और यह भी कहेंगे कि वे आपकी अमुक रचना की प्रशंसा कर रहे थे। शिकायत करना उनके स्वभाव में नहीं है, क्योंकि शिकायत पीठ पीछे की जाती है। वे तो अपनी नापसंद, संबद्ध व्यक्ति के सामने ही व्यक्त कर देते हैं। नहीं कर पाते तो अपनी चुप्पी से ही संकेत दे देते हैं। ऐसे लोगों के विरोधी कम नहीं होते। मनु जी के भी हैं, किंतु उनकी परवाह उन्हें नहीं है। उन्हें परवाह अपने कुछ उन आत्मीय लोगों की होती है, जिन्हें वे सच्चा और संवेदनशील मानते हैं। वे उनके भीतर के उजास को सहेजकर एक छोटी-सी ही सही, प्यारी दुनिया बनाना चाहते हैं और उसमें चलते रहना चाहते हैं।

हाँ, तो शुरू में ही जो बात कहते-कहते मैं रह गया था, वह यह थी कि कभी-कभी एक दिन अचानक मिल जाने वाले लोग आपके कितने अपने हो जाते हैं और विश्वास दिलाते से लगते है कि कोई बात नहीं, आपके अपने कहे जाने वाले लोग अब आपके साथ नहीं हैं तो क्या हुआ, हम तो हैं न!

रामदरश मिश्र, वरिष्ठ साहित्यकार, आर-38, वाणी विहार, उत्तम नगर, दिल्ली-110059
मो. : 7303105299

✧ ✧ ✧

मेरे मित्र और एक आत्मीय शख्सियत

हरिपाल त्यागी

प्रकाश मनु के व्यक्तित्व और कृतित्व को लेकर अनेक तरह के विचार मेरे मन में आते हैं, जिनमें एक बड़े भाई की अधिकार भावना से भी इनकार नहीं किया जा सकता। मुझे साहित्य-सृजन में प्रेरणा देने वालों में भीमसेन त्यागी, वाचस्पति उपाध्याय, नागार्जुन और त्रिलोचन जी के अलावा प्रकाश मनु का योगदान भी कम नहीं रहा। यों तो कभी-कभार बहुत पहले से लिखता आ रहा था, लेकिन ब्रश के साथ-साथ हाथ में कलम पकड़ाने वालों में भीमसेन, प्रकाश मनु और वाचस्पति उपाध्याय ही रहे। और आखिरकार मैंने भले ही शुरू में कुछ डुगलाते हुए अपने पैरों पर खड़े होना सीखा। लेकिन ठहरिए, यहाँ मैं प्रकाश मनु के बहाने अपने बारे में मुखर होता जा रहा हूँ।...हालाँकि कहने का मतलब यहाँ प्रकाश मनु के एक विशेष गुण की ओर संकेत भर था, जिसके अंतर्गत उन्होंने कई भूले-बिसरे रचनाकारों को पुनर्जीवित किया और कुछ आलसियों को उकसाकर साहित्य में स्थापित करने का प्रयत्न भी किया।

क्या जीवन में कभी यह मुमकिन है कि किसी का दिल उसके सीने से फिसलकर किसी और की जेब में पहुँच जाए...और यह क्रिया इतनी बेआवाज, ऐसे जादुई अंदाज में हो कि किसी को इसकी भनक तक न लग पाए? अगर यह मुमकिन है तो यह डर हमेशा बना रहेगा कि न जाने वह 'कोई और' उसके दिल से कैसा व्यवहार करे। तब इसके अलावा दूसरा कोई उपाय भी तो नहीं है कि उसकी हथेली खुद-ब-खुद अपने सीने पर चली जाए, फिर भी उसे लगे कि सीने को सहलाने वाली हथेली भी उसकी नहीं, 'किसी और' की है!

दोस्तों, जीवन के कठिन-कठोर यथार्थ में बहुत कुछ जादुई भी शामिल है, जो जीवन को जीने लायक बनाने में मनुष्य की मदद करता है। इसी संदर्भ में एक खास चेहरा मेरे सामने अकसर प्रकट होता है, हालाँकि उसी से जुड़े कई और चेहरे भी हैं - जयप्रकाश भारती, चंद्रदत्त शर्मा 'इंदु', देवेंद्र कुमार, रत्नप्रकाश 'शील', क्षमा शर्मा, प्रशांत सेन वगैरह।...इनमें से कइयों से परिचय काफी पुराना है। लेकिन यहाँ जिस नए चेहरे का जिक्र मैं कर रहा हूँ वह सिर्फ प्रकाश मनु का ही है। यों बाकी और व्यक्तियों की तरह प्रकाश मनु स्वयं भी 'हिंदुस्तान टाइम्स' समूह की बाल-पत्रिका 'नंदन' के स्टाफ-सदस्य ही हैं, लेकिन यही एक वह शख्स है जो सभी औपचारिकताएँ दरकिनार करके खुले दिल, मुक्त कंठ और बेबनाव ढंग अपनाते हुए अचानक इस तरह प्रकट हो गया कि कब

क्या-क्या होता गया, कुछ भी तो समझ में नहीं आया।

यही वह जादुई यथार्थ है, जिसमें 'होशियारी', 'समझदारी' के बजाय अंतरंगता, मन-तरंगता की भूमिका का महत्त्व कहीं अधिक हो जाता है। सब कुछ इतना सहज और आत्मीय शायद पहली बार मैंने जाना कि हमारी यथार्थवादी सृजनात्मक दुनिया में भी बहुत कुछ जादुई शामिल है, जिसके बिना रचना प्राणहीन हो जाती है- मात्र एक आत्माविहीन शरीर मात्र!

ओह! जब यह दिल सीने से फिसलकर 'किसी और' की जेब के हवाले हो ही गया है तो 'यह धुँआ-सा कहाँ से उठता है?' बेचैनियाँ अनियंत्रित क्रोध में क्यों बदलती रही हैं? क्रोध अचानक करुणा में कैसे रूपांतरित हो जाता है? जबकि...जबकि इस व्यक्ति की सहृदयता ने कभी निराश तो नहीं किया। कभी मेरे दिल से नाजायज छेड़छाड़ तो नहीं की...

असल में, बात ठीक-ठीक वैसी ही नहीं होती, जैसी कि वह अकसर नजर आती है, इसलिए कोर्ट-कचहरी के न्याय और एक रचनाकार के न्याय में फर्क होना लाजिमी है। प्रकाश मनु के व्यक्तित्व और कृतित्व को लेकर अनेक तरह के विचार मेरे मन में आते हैं, जिनमें एक बड़े भाई की अधिकार भावना से भी इनकार नहीं किया जा सकता।...और बात केवल मेरे और मनु के बीच तक सीमित नहीं है, पारिवारिक सौहार्द भी हमें प्राप्त है। इसलिए भी अधिकार भाव स्वतः स्फूर्त रूप से है। इसी के चलते अनेक ऐसी बातें हैं, जो मुझे उनसे सीखने को मिलीं और वे सब मुझे याद ही नहीं, बल्कि अभ्यास में भी शामिल हैं। 'कोश' और 'कोष' का अंतर और दोनों शब्दों के सही प्रयोग, 'आदि', 'इत्यादि' के पहले 'और' का प्रयोग गलत होना जैसी अनेक छोटी-बड़ी बातें।

मुझे साहित्य-सृजन में प्रेरणा देने वालों में भीमसेन त्यागी, वाचस्पति उपाध्याय, नागार्जुन और त्रिलोचन जी के अलावा प्रकाश मनु का योगदान भी कम नहीं रहा। यों तो कभी-कभार बहुत पहले से लिखता आ रहा था, लेकिन ब्रश के साथ-साथ हाथ में कलम पकड़ाने वालों में भीमसेन, प्रकाश मनु और वाचस्पति उपाध्याय ही रहे। और आखिरकार मैंने भले ही शुरू में कुछ डुगलाते हुए अपने पैरों पर खड़े होना सीखा। लेकिन ठहरिए, यहाँ मैं प्रकाश मनु के बहाने अपने बारे में मुखर होता जा रहा हूँ।...हालाँकि कहने का मतलब यहाँ प्रकाश मनु के एक विशेष गुण की ओर संकेत भर था, जिसके अंतर्गत उन्होंने कई भूले-बिसरे रचनाकारों को पुनर्जीवित किया और कुछ आलसियों को उकसाकर साहित्य में स्थापित करने का प्रयत्न भी किया।

प्रकाश मनु का वास्तविक नाम चंद्र पकाश विग है। प्रकाश मनु उनका साहित्यिक नाम है, जो उन्होंने खुद ही चुना। वे कई विधाओं में लेखन-कार्य करते रहे हैं और बच्चों के लिए भी उन्होंने जमकर काम किया है। कब उन्होंने लेखन-कार्य शुरू किया, इसकी सही जानकारी तो मनु स्वयं ही दे सकते हैं, लेकिन उनका पहला उपन्यास 'यह जो दिल्ली है' हमारी दोस्ती के प्रारंभिक दिनों में ही प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में महानगर के विद्रूप चेहरे, उसके विकराल जबड़े में स्वेच्छा से फँसे आम आदमी के जीवन-संघर्ष और संघर्षों से उफनी छटपटाहट को समझा-परखा जा सकता है।

यह उपन्यास लेखक के निजी अनुभवों से उपजी संवेदना पर तो केंद्रित है ही, लेकिन इसके शिल्प में काल्पनिक ब्योरे भी शामिल हैं, जिससे तथ्यात्मकता में कमी और गद्य में पुनरावृत्तियाँ भी देखी जा सकती हैं। हालाँकि हिंदी के आम पाठक के लिए रोचक सामग्री की कमी वहाँ नहीं है। भावनाओं के आवेग-उद्वेग में बहकर आने वाले विवरण तटबंधों को तोड़कर जब इधर-उधर दौड़ते हैं तो लेखक उनकी गति पर अंकुश न लगाकर स्वयं भी रचनात्मक बहाव में बहने लगता है। उनकी रचना-प्रक्रिया का कुछ हद तक मैं स्वयं साक्षी रहा हूँ। मुझे लगता है कि लेखन के मामले में यह आदमी तूफान मेल है!

अपना बृहत् उपन्यास 'कथा-सर्कस' लिखने के दौरान मनु कुछ इस कदर उद्विग्न थे कि उन्हें न अपनी सुध-बुध रही, न ही घर-परिवार की। बच्चे छोटे थे और पत्नी सुनीता जी चिंतित।... बस लिखना, लिखना और लिखते ही जाना। न दिन का पता, न रात का ठिकाना! नींद पता नहीं कब साथ छोड़ गई...और कभी आई भी तो बहुत ही नाज-नखरों के साथ! वह एक मानसिक समुद्री ज्वार ही था, जिसमें भाटे का कहीं दूर तक पता न था।...

बहरहाल, उपन्यास किस तरह पूरा हुआ और ज्यादा इंतजार कराए बिना छपकर आ भी गया, लेकिन अब फिर एक नई मुसीबत। उपन्यास के कुछेक पात्रों ने, अपने बदले हुए नामों में भी, खुद को पहचान लिया और अपने-अपने चेहरे को विद्रूपित देखकर वे भड़क उठे। वे भड़ककर ही नहीं रह गए, बल्कि, कई पत्र-पत्रिकाओं, जिनमें प्रकाश मनु अकसर छपते रहते थे, के संपादकों को फोन पर फोन खड़खड़ाए जाने लगे-इस आदमी का बहिष्कार करो, इसे ब्लैक लिस्ट में डाल दो...समझता क्या है अपने को!

अब हमारे प्रकाश मनु 'तीसरी कसम उर्फ मारे गए गुलफाम' के सहज-सरल हीरामन कसम खाई कि अब कभी कोई उपन्यास नहीं लिखेंगे...और खुदा-न-खास्ता कभी लिखना भी पड़ा, तो उसमें किसी की टाँग खिंचाई से अपने को अलग ही रखेंगे।

और एक दिन ऐसा भी आया, जब लेखक ने किसी झोंक में आकर अपनी कसम तोड़ दी और इसके परिणामस्वरूप प्रकट हुआ, 'पापा के जाने के बाद' यानी लेखक का तीसरा उपन्यास! यहाँ इसी उपन्यास के बारे में चंद सतरें।

'पापा के जाने के बाद' की रचनात्मकता में चित्रकार भाऊ समर्थ के साथ किसी एक और चित्रकार के चरित्र को मिलाकर एक तीसरा चरित्र गढ़ा गया है - नाम है वसंतदेव। यह कुल चार दिनों की कहानी भी भावुकतापूर्ण कारुणिक प्रसंगों को सामने लाती है और उन प्रसंगों को सामने लाने का माध्यम वसंतदेव की बेटी नंदिनी है। चित्रकार वसंतदेव के गोत्र के (अभावों में जीने वाले) कई और चित्रकार देश-विदेश के कला-इतिहास में मौजूद हैं। उनके सरोकार और जिम्मेदारियाँ औसत आदमी की समझ से अलग हैं और इसी का उन्हें मूल्य चुकाना पड़ता है, जबकि किसी की दया का पात्र होना ऐसे लोगों के लिए सबसे बड़ी गाली है। असल में वे ही संसार के सबसे समृद्ध लोग हैं - यह मूल भावना इस उपन्यास से उभरती नहीं है और वसंतदेव केवल लोगों की करुणा का पात्र होकर रह जाता है। लगता है वसंतदेव कभी मरता भले ही न हो, लेकिन अपनी 'महाकरुणा' प्रकट करने के लिए उसे जाने-अनजाने मारा तो जाता है!

मुझे यह देखकर सुखद आश्चर्य होता है कि महत्वाकांक्षी उपन्यासों के बजाय लेखक ने अपनी कहानियों में अपनेक्षाकृत अधिक संयम का परिचय दिया है। सभी कहानियाँ पढ़ने का अवसर मुझे भले ही न मिला हो, लेकिन जितनी पढ़ पाया हूँ, वे कम तो नहीं है। लगभग एक दर्जन से न्यूनाधिक कहानी-संग्रह उनके प्रकाशित हो चुके हैं और उनमें से अधिकांश कहानियों का मैं पाठक रहा हूँ और उनसे आश्वस्त भी हुआ हूँ। हालाँकि तीनों उपन्यासों की चर्चा हिंदी-समाज में कम नहीं हुई है और 'यह जो दिल्ली है' तो स्वयं प्रकाशक की माँग पर राजकमल प्रकाशन से पेपर बैक में भी प्रकाशित हो चुकी है। अनेक साहित्यिक सभाओं में भी विशेषज्ञों द्वारा 'कथा-सर्कस' और 'यह जो दिल्ली है' की भूरि-भूरि प्रशंसा का मैं साक्षी रहा हूँ और यह मेरा व्यक्तिगत मत ही है, जैसा कि रेणु जी के उपन्यासों की तुलना में मुझे उनकी कहानियाँ और रिपोर्ताज 'धन जल-ऋण जल' अधिक पसंद है।

रेणु जी के पहले उपन्यास 'मैला आँचल' में जमींदार का चरित्र-चित्रण मनगढ़ंत और अविश्सनीय लगता है। अपवाद हो सकता है कोई एक, लेकिन अपवाद को उदाहरण बनाकर पेश नहीं किया जा सकता और वह जमींदार वर्ग के मूल चरित्र को प्रतिनिधित्व तो बिल्कुल नहीं करता दिखता। बहरहाल, मैं प्रकाश मनु से अधिक संयत, ठोस, तर्कसंगत और दृष्टि-संपन्न लेखन की अपेक्षा तो कर ही सकता हूँ।

इन तीन उपन्यासों के समान प्रकाश मनु के तीन कविता-संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं। उन्होंने बड़े ही मनोयोग और आदरभाव से अनेक व्यक्तिपरक कविताएँ भी लिखी हैं और यह ऐसा गुण है जो हमारे वर्तमान समय की आपाधापी और अंधी दौड़ में तेजी से गायब होता जा रहा है। इससे पहले बाबा नागार्जुन की व्यक्ति-केंद्रित अनेक कविताएँ देखने में आती हैं। लेकिन प्रकाश मनु ने अपने समकालीन हिंदी जगत के अनेक विशिष्ट व्यक्तियों की खोज-खबर ली है। उनमें देवेंद्र सत्यार्थी जैसे व्यक्ति भी है, जिन्हें लोग-बाग भुला चुके थे या फिर जिन्हें अपने उपहास का पात्र मान बैठे थे। अशोक चोपड़ा की 'धर्मयुग' में प्रकाशित 'नई दौड़' को यहाँ उदाहरण रूप में देखा जा सकता है। यह रचना 1964 के दौर की है, जिसमें सत्यार्थी जी पर गहरा तंज कसा गया था।

उन्हीं देवेंद्र सत्यार्थी के महत्त्व को जान-समझकर प्रकाश मनु ने 'देवेंद्र सत्यार्थी : तीन पीढ़ियों का सफर' जैसी महत्त्वपूर्ण पुस्तक प्रकाशित कराई और इसी के परिणामस्वरूप देवेंद्र सत्यार्थी एक बार फिर से चर्चा के केंद्र में आ गए। इसी प्रकार शैलेश मटियानी को हिंदी के कुछ 'चतुर' लेखकों ने दबाने-गिराने की बहुत कोशिश की, लेकिन प्रकाश मनु ने मटियानी के संघर्ष, उनकी रचनात्मक विविधता और लेखकीय गरिमा को सम्मान देते हुए जमकर लिखा और कभी अपने प्रयास में ढील नहीं आने दी।

त्रिलोचन जी से उनकी दो मुलाकातें हुईं दोनों में मैं भी शामिल रहा। पहली मुलाकात यमुना विहार में उनके घर पर हुई, जिसमें मनु जी बहुत संतुष्ट तो नहीं लगे, लेकिन दूसरी मुलाकात का किस्सा बहुत रोचक था। उस वक्त शास्त्री जी हमारे घर पर पधारे थे और दाढ़ी-मूँछें सफाचट थीं। तभी थोड़ी देर बाद मनु जी भी फरीदाबाद से आ गए और त्रिलोचन जी को पहचान न सके, क्योंकि पहली मुलाकात के त्रिलोचन से ये एकदम भिन्न लग रहे थे। मैंने परिचय दिया, "आप से

मिलिए, आप त्रिलोचन जी के छोटे भाई हैं ओर आज ही अपने गाँव से पहली बार दिल्ली आए है!" लेकिन त्रिलोचन जी के भाई में प्रकाश मनु क्यों रुचि लेने लगे?

कोई दो घंटे बाद, खाना खाते समय यह बात स्पष्ट हो सकी कि जिस व्यक्ति को मनु जी त्रिलोचन जी का भाई मानकर नजरअंदाज करते रहे थे, दरअसल वही त्रिलोचन जी थे। इस पूरे किस्से को मनु जी ने 'सापेक्ष' पत्रिका में प्रकाशित कराया भी था तथा इसमें और भी कई प्रसंग जोड़े गए थे।

शायद ही हिंदी का कोई ऐसा दिग्गज साहित्यकार हो, जो प्रकाश मनु की कलम से छूटा हो। कई बड़े साहित्यकारों पर उनकी पुस्तकें देखने में आती हैं, उनमें रामविलास शर्मा, रामदरश मिश्र, विष्णु खरे, देवेंद्र सत्यार्थी, शैलेश मटियानी आदि पर बहुत ही गंभीर और चिंतनपरक सामग्री है। डॉ. रामवलिास शर्मा और सत्यार्थी जी पर लेखक ने जमकर कार्य किया है। इन व्यक्तित्वों पर अनेक पुस्तकें प्रकाशित कराई हैं और पत्र-पत्रिकाओं में लेख तथा साक्षात्कार भी देखने में आए हैं। साक्षात्कारों पर केंद्रित 'मुलाकात' शीर्षक से एक पुस्तक अलग से भी है, जिसमें हिंदी-संसार के कई महारथियों को सवालों के घेरे में लिया गया है। 'मुलाकात' भी अपने समय की चर्चित पुस्तकों में से एक है।

यहाँ साक्षात्कारों के संबंध में एक जरूरी जानकारी पाठकों से साझा करना चाहता हूँ, मनु जी ने उन्हीं रचनाकारों के इंटरव्यू किए है, जिन्हें वे किन्ही कारणों से पसंद करते थे। कई तथाकथित महान लेखकों की सिफारिश के बावजूद उन्होंने उस तरफ मुड़कर भी नहीं देखा, जिसे वे पसंद नहीं करते थे। भले ही वह व्यक्ति स्वयं को साहित्य की तोप ही क्यों न समझता रहा हो!

बहरहाल, उपर्युक्त सभी महत्त्वपूर्ण लेखन-कार्य के अतिरिक्त हमारे मित्र डॉ. प्रकाश मनु संभवत हिंदी के पहले ऐसे लेखक हैं, जिन्होंने 'हिंदी बाल साहित्य का इतिहास' के अलावा 'हिंदी बाल कविता का इतिहास', 'हिंदी बाल साहित्य के शिखर व्यक्तित्व' तथा 'हिंदी बाल साहित्य : नई चुनौतियाँ और संभावनाएँ' जैसी खोजपूर्ण पुस्तकें तो लिखीं ही, कई पुस्तकों और पत्रिकाओं का संपादन और चयन भी किया। वे बच्चों के प्रिय कवि-कथाकार हैं और सौ से भी अधिक पुस्तकें तो उन्होंने बच्चों के लिए ही सृजित की हैं। इतना विपुल साहित्य सृजन करने वाले प्रकाश मनु स्वयं में एक संस्था तो हैं ही, साथ ही उनकी धुन और उसमें जो निरंतरता देखने में आती है, वह मेरे लिए आश्चर्यजनक ही नहीं, प्रेरणाप्रद भी है।

मेरे लिए यही कम नहीं है कि उनसे मुझे समय-समय पर आदर-सम्मान मिलता रहा है। यह एक ऐसी चीज है, जिसका मूल्य दुनिया में कोई चुका नहीं पाया है, लेकिन ऐसे अपने इस दोस्त पर मैं गर्व ही कर सकता हूँ...

प्रस्तुति : निर्दोष त्यागी, एफ 29 / 6, सादतपुर विस्तार, दिल्ली-110090
मो. : 08076699199

✧ ✧ ✧

आदमी कुछ अलग-सा

देवेन्द्र कुमार

मनु जी जल्दी ही हम जैसे हो गए। उनकी उन्मुक्त हँसी मुझे जैसे अपने निकट आने का बुलावा देती थी। वे दिल खोलकर हँसते हैं- तब भी और आज भी। 'नंदन' में आने के कुछ समय बाद की बात है, मैंने उन्हें परेशान देखा। वे जैसे अपने से बात कर रहे थे। मालूम हुआ कि उन्होंने अपनी पत्नी को बस में बैठाया था। अब उन्हें चिंता सता रही थी कि वे सकुशल गंतव्य तक पहुँच तो जाएँगी। मेरी आँखों के सामने एक अनजान छवि उभर आई कोई शहर से अपरिचित ग्रामीण महिला, जिन्हें दिल्ली के बारे में कुछ भी पता नहीं था। यह तो बाद में जाना कि उनकी पत्नी (प्रसिद्ध लेखिका डॉ. सुनीता) उच्च शिक्षा प्राप्त अत्यंत जागरूक महिला हैं। अपने आत्मीय जन के प्रति उनकी भोली चिंता का दूसरा छोर कठिन-कठोर समसामयिक सरोकारों से कितनी गहराई से जुडा है, इसे मैंने उनकी उत्तप्त कविताओं को पढ़कर जाना। मेरे और उनके बीच परिचय की धारा गहरी होकर दोस्ती में बदल रही थी।

मैं ने इन्हें सबसे पहले लोकप्रिय बाल पत्रिका 'नंदन' के संपादक श्री जयप्रकाश भारती के कक्ष में देखा था। बात वर्ष 1986 की है। मैं 'नंदन' में कार्यरत था। उस दिन भारती जी ने मुझे तलब किया। काम के सिलसिले में कई बार उनके कक्ष में जाना होता था। उनके सामने एक चश्माधारी व्यक्ति बैठा था। उसने नजर उठाकर मेरी ओर देखा और बस...यह प्रथम देखादेखी मुझे आज भी याद है। बात करके मैं अपनी सीट पर चला आया। मैं सोच रहा था कि वह व्यक्ति अपनी कहानी छपाकर लेखक बन जाने की अदम्य इच्छा रखने वाले उन लोगों में से कोई होगा, जो रोज भारती जी को घेरे रहते थे। भारती जी लोकप्रिय बाल पत्रिका 'नंदन' के प्रसिद्ध संपादक थे। लोग समझते थे कि उनकी कृपा मिल जाए तो कोई भी बाल साहित्यकार बन सकता है।

उनमें से कई जनों को भारती जी मेरे पास भेज देते थे, कथा-सूत्र डिस्कस करने के लिए। यह एक सामान्य प्रक्रिया थी। उस दिन भी भारती जी के भेजे हुए कई 'लेखक' मेरे पास आए, पर उस चश्माधारी को मैंने नहीं देखा। शायद वह 'नंदन' में छपने का इच्छुक 'लेखक' नहीं था या भारती जी का कोई घनिष्ठ मित्र था। पर उनके निकट मित्रों को मैं अच्छी तरह जानता था। नहीं, वह उनका मित्र नहीं था

तो?...हुँह, होगा कोई और मैं अपने काम में लग गया।

इसके कई दिन बाद मैंने उसे फिर भारती जी के सामने बैठे देखा। सब कुछ पहली बार की तरह घटा। अब मैं उसके बारे में और कुछ जानने के लिए उत्सुक हो उठा। और कुछ दिन बाद हमने उसे अपने बीच पाया। उनका नाम प्रकाश मनु था और वे हमारे सहकर्मी बन गए थे। 'नंदन' ज्वाइन करने से पहले दिल्ली प्रेस में काम कर चुके थे। वहाँ तो मैंने भी काम किया था। निश्चय ही कोई भी स्वाभिमानी व्यक्ति दिल्ली प्रेस में ज्यादा समय तक नहीं रह सकता था। तो दिल्ली प्रेस से पहले मनु जी कहाँ थे? उनके बारे में और जानने की इच्छा बलवती हो गई।

मनु जी जल्दी ही हम जैसे हो गए। उनकी उन्मुक्त हँसी मुझे जैसे अपने निकट आने का बुलावा देती थी। वे दिल खोलकर हँसते हैं तब भी और आज भी। 'नंदन' में आने के कुछ समय बाद की बात है, मैंने उन्हें परेशान देखा। वे जैसे अपने से बात कर रहे थे। मालूम हुआ कि उन्होंने अपनी पत्नी को बस में बैठाया था। अब उन्हें चिंता सता रही थी कि वे सकुशल गंतव्य तक पहुँच तो जाएँगी। मेरी आँखों के सामने एक अनजान छवि उभर आई कोई शहर से अपरिचित ग्रामीण महिला, जिन्हें दिल्ली के बारे में कुछ भी पता नहीं था। यह तो बाद में जाना कि उनकी पत्नी (प्रसिद्ध लेखिका डॉ. सुनीता) उच्च शिक्षा प्राप्त अत्यंत जागरूक महिला हैं। अपने आत्मीय जन के प्रति उनकी भोली चिंता का दूसरा छोर कठिन-कठोर समसामयिक सरोकारों से कितनी गहराई से जुडा है, इसे मैंने उनकी उत्तप्त कविताओं को पढ़कर जाना। मेरे और उनके बीच परिचय की धारा गहरी होकर दोस्ती में बदल रही थी।

उन्हीं दिनों एक बड़ी घटना हुई हिंदुस्तान टाइम्स में हड़ताल हो गई। मनु जी को ज्वाइन किए थोड़ा ही समय हुआ था। वे अभी प्रोविजन पर थे। उनके हाव-भाव से लगा कि वे भी हड़ताल में शामिल होना चाहते थे। अगर वे ऐसा करते तो उनकी नौकरी जा सकती थी। हम साथियों ने सोच लिया कि उन्हें रोका जाएगा। पर वे तो जिद पर अड़े थे। यह एक बड़ी मुश्किल थी। उन्हें हड़ताल से दूर रखने में हम लोगों को बहुत मशक्कत करनी पड़ी। सबके साथ आंदोलन में शामिल होने के उनके निर्मल आग्रह ने हम सबके मन में उनके कद को ऊँचा उठा दिया।

यह मैंने बाद में जाना कि अपने सच के लिए सत्याग्रह और आंदोलन करना उनके स्वभाव में था। अपने छात्र जीवन में उन्होंने अचिंत भाव से एक नहीं, अनेक बार ऐसा किया था।

मुझे ठीक ठीक याद नहीं वह कौन-सी विशेष बात थी, जिसकी डोर थामकर मैं धीरे-धीरे उनके निकट पहुँचता जा रहा था। यह निकटता 'नंदन' की व्यस्तता के बीच दफ्तर से बाहर एक अनजान पगडंडी पर चल दी थी। वे धीरे-धीरे खुल रहे थे। विज्ञान के स्नातक और पढाई में अव्वल रहने के बावजूद साहित्य-रचना की आत्म-संतोष देने वाली लेकिन कठिन राह पर चले आए थे।

घर-परिवार, विशेषकर माँ से अपार जुड़ाव के बावजूद वे परिवार से अलग रहकर कुछ ऐसा रचना चाहते थे, कुछ ऐसा, जैसा शायद अभी तक किसी ने नहीं किया था।

अब हम 'नंदन' में रहते हुए भी, उसके दायरे से बाहर निकलकर साहित्य और उससे जुड़े सामाजिक सरोकारों की रचनाधर्मिता पर चर्चा कर रहे थे। अगला चरण ऐसी रचनाएँ लिखना और उन्हें पाठकों की आँखों के सामने खोलना था। मेरे लिए यह सब नया था, लेकिन मनु जी तो बहुत पहले से यह करते आ रहे थे। मुझे धीरे-धीरे पता चल रहा था कि अपने विचारों के अनुरूप अपने जीवन को आगे ले जाने के लिए वे हर कठिनाई से जूझने और लड़कर नई राह बनाने में अपना सब कुछ झोंकने के लिए तैयार थे। वे प्रभु जोशी की कथा 'अलग-अलग तीलियाँ' में से एक ऐसी कड़क तीली थे, जो टूट भले ही जाए पर झुकेंगे कभी नहीं।

एक दिन उन्होंने 'हमारी' कविता पुस्तक तैयार करने की बात कही। 'हमारी' मतलब हम दोनों की, उन्होंने खुलासा किया। पर मैं बस यों ही कुछ लिख लेता था। 'हमारी' का मतलब क्या था? उनका मतलब यही था कि मैं कुछ नई कविताएँ लिखूँ। यहाँ तक तो ठीक था, पर मेरी कविताएँ किसी कविता-संकलन में भला कैसे शामिल हो सकती थीं? उनके प्रोत्साहन पर मैंने कुछ कविताएँ लिख डालीं। वे संकलन की प्रेस कॉपी तैयार करने में जुट गए। लेकिन कौन-सा प्रकाशक इस संकलन को प्रकाशित करेगा? प्रकाशक तो यही रेडीमेड तर्क देते हैं कि कविता-संकलन बिकते ही नहीं। मनु जी की योजना थी कि संकलन हम स्वयं प्रकाशित करें। मुझे यह असंभव लगा। प्रकाशन के लिए पैसों का प्रबंध कहाँ से और कैसे होगा, यह मुझे नहीं सूझ रहा था।

कई दिन इसी उलझन में बीत गए। मनु जी ने धन का प्रबंध कर लिया था। लेकिन कैसे, कहाँ से! उन्होंने इसके लिए पत्नी की सोने की चूड़ियों का बलिदान कर दिया था। क्या उन्होंने सोने की चूड़ियाँ पत्नी से जबरदस्ती छीनी थीं? नहीं, सुनीता जी भी मनु जी की साहित्य-यात्रा में कंधे से कंधा मिलाकर चल रही थीं। यह सब मैंने बाद में धीरे-धीरे जाना था।

'कविता और कविता के बीच' कविता-संकलन प्रकाशित हो गया। मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि खुद को मनु जी की तेज-तर्रार कविताओं के साथ खड़े पाकर मुझे बहुत अच्छा लगा था। लेकिन संकलन की बिक्री एक समस्या थी। मनु जी कह रहे थे कि रचनाकार का काम लिखना है। उसे प्रकाशक नहीं बनना चाहिए। मैं उनकी बात से पूरी तरह सहमत था, लेकिन मन कहता था, अभी एक-दो ऐसे प्रयास और कर लें, फिर इससे हाथ खींच लिया जाए। हिंदुस्तान टाइम्स के विज्ञापन विभाग में मित्र रमेश तैलंग काम करते थे। वे बाल साहित्य के अग्रणी कवि थे और हैं। मैं और मनु जी भी बाल कविताएँ लिख रहे थे। योजना बनी कि एक बालगीत संकलन प्रकाशित किया जाए, जिसमें रमेश तैलंग के साथ मनु जी और मैं भी रहूँ।

इस संकलन के चित्र और आवरण बनाने के लिए प्रसिद्ध चित्रकार हरिपाल त्यागी को मनु जी ने मना लिया। इसका संयोजन संपादन भी पहली पुस्तक की तरह मनु जी ने अपने हाथ में सँभाल लिया था। संकलन का शीर्षक रखा गया, 'हिंदी के नए बालगीत'।

इसी बीच एक दिन मनु जी रिक्शा से गिरकर चोटिल हो गए। इसके लिए उनका धुनी स्वभाव जिम्मेदार था। वे कोई भी काम डूबकर करते हैं। जब तक हाथ का काम पूरा न कर लें, उससे बाहर नहीं निकलते और एक योजना पूरी होते ही तुरंत दूसरा काम शुरू कर देते हैं। न कोई अंतराल, न कोई विश्राम। उनके विपुल रचना भंडार के पीछे उनकी एकाग्र साहित्य-साधना ही है। यह क्रम लंबे समय से निरंतर चलता आ रहा है और कभी रुकने वाला नहीं। दुर्घटना के समय वे डगमग रिक्शा में असावधान बैठे हुए प्रूफ पढ़ रहे थे। रिक्शा ज्यादा हिला, तो वे गिरकर चोट खा गए। इसके बाद वे कई दिन तक ऑफिस नहीं आ सके। कोई सूचना भी नहीं भेज सके।

इसे अनुशासनहीनता माना गया और उनके विरुद्ध विभागीय कार्यवाही की बात होने लगी। तब मैं फरीदाबाद में उनके घर चला गया और बीमारी के अवकाश का प्रार्थना-पत्र ले आया। वहीं उनकी पत्नी डॉ. सुनीता से पहली बार मिला। मुझे बरबस वह दिन याद आ गया, जब वे सुनीता जी के सुरक्षित घर पहुँचने को लेकर आकुल-व्याकुल हो रहे थे।

'नंदन' में उनसे मिलने अनेक लोग आया करते थे। वे आपस में क्या और किस संदर्भ में विमर्श करते थे, यह जानना कठिन नहीं था। बातों के केंद्र में हमेशा साहित्य, रचना-धर्मिता और सामाजिक सरोकारों के संदर्भ रहते थे। 'नंदन' की नौकरी से परे यह कोई दूसरे ही प्रकाश मनु थे, जिनकी कलम अविराम लिख रही थी। 'नंदन' में आने से पहले दिल्ली प्रेस की 'मुक्ता' पत्रिका में उन्होंने 'साहित्य-संसार' स्तंभ लिखना शुरू कर दिया था। उसमें 'काफी हाउस और प्रेमचंद', 'अज्ञेय का पाँचवाँ सप्तक', 'साहित्य, कला और आम आदमी' जैसे तीखे व्यंगात्मक लेख लिखे। इसके बाद समकालीन कविता, कहानी, महिला लेखन, हिंदी गजल और नवगीत, कला फिल्में, साहित्य में फैशनवाद और लघु पत्रिकाओं की भूमिका पर कई तीखे लेख लिखे।

उनके शब्दों में, "यह दिल्ली में मेरे साहित्यिक लेखन की शुरुआत थी।...यहीं तीनों उपन्यास, कविता, कहानियाँ, आलोचनात्मक लेख, लंबे-लंबे इंटरव्यू और भी बहुत कुछ लिखा गया। एक लेखक के रूप में पहचान दिल्ली में ही बनी।"

वे कहते हैं कि दिल्ली आने का फैसला किया था, तो उसके पीछे एक बड़ा कारण दिल्ली आकर लेखकों से मिलना और उन्हें बहुत पास से देखना भी था। कहते हैं, "दिल्ली आकर एक बार तो हिम्मत बिल्कुल टूट गई थी। तब जिन लेखकों ने हिम्मत बँधाई, उनमें घुमंतू लेखक और मेरे कथागुरु देवेंद्र सत्यार्थी भी थे। उन्होंने बहुत कुछ सिखाया। वे कहते थे, अरे मनु, जिंदगी कोई सजा थोड़े ही है। जिंदगी तो जीने के लिए है भाई, पूरी मस्ती से जीने के लिए। इसे डर-डरकर नहीं जीना चाहिए।"

मनु जी के मित्र अनेक थे, पर उनकी निर्मम और बेबाक लेखनी ने नाराज भी बहुतों को किया। अपने मित्र, 'दैनिक हिंदुस्तान' के विजयकिशोर मानव के आग्रह पर उन्होंने आलोचनात्मक लेख, टिप्पणियाँ और समीक्षाएँ लिखीं, जिनकी व्यापक चर्चा हुई। उस दौर को याद करते हुए वे लिखते हैं, "उन दिनों लिखे गए लेखों से कुछ लेखक भीषण रूप से नाराज हुए थे। जहाँ कहीं मैं जाता, यह सुनाई पड़ता कि फलाँ-फलाँ लेखक तुम्हें बहुत गालियाँ दे रहे थे। मैं हँसकर कहता, कोई बात नहीं वे गालियाँ भी मेरे लिए आशीर्वाद हैं।"

असल में मुसीबत यह थी कि लोग आलोचना को दोस्ती और दुश्मनी के खाँचों में डालकर देखते। वे कहते हैं, "दिल्ली की साहित्यिक दुनिया बहुत अधिक स्वार्थी और आत्मकेंद्रित हो चुकी है। इसलिए यहाँ 'साहित्यिक आलोचना' का सीधा-सीधा मतलब यह समझ लिया गया है कि जो आपकी झूठी प्रशंसा करे सो मित्र और जो खरी आलोचना करे सो दुश्मन।"

हालाँकि आलोचनात्मक लेखों और समीक्षाओं से अलग अपने बचपन के दिनों के लिए आज भी उनके मन में गहरी ललक है, "बचपन में मुझे याद है, माँ और नानी की सुनाई गई कहानियाँ मुझे किसी और ही दुनिया में पहुँचा देती थीं...मुझे लगता था, मैं बिना पंखों के उड़ रहा हूँ एक अंतहीन आकाश में। बचपन में एक अधकू की कहानी भी थी, जो मुझे सबसे ज्यादा अच्छी लगती थी। भला क्यों? इसलिए कि यह अधकू बड़ा विचित्र था। एक हाथ, एक पैर, एक आँख, और एक कान...सब कुछ आधा और मैं भी तो कुछ ऐसा ही था। एकदम दुबला पतला, सींकिया सा।"

अगर घर में कोई कुछ कह देता तो माँ बरजतीं। वे जो कुछ कहतीं, उसका मतलब होता - जैसे तिनके एक-दूसरे में अटके हों, वैसे ही मेरा कुक्कू तो बस किसी तरह जुडा हुआ है। हाथ लगते ही तिनके बिखर जाएँगे। इसलिए इसे जरा भी छेड़ो मत।

अधकू की माँ उसकी सबसे बड़ी ताकत थी, लेकिन चोरी-डकैती करने वाले उसके भाई उसके दुश्मन। वे उसे मारना चाहते थे, पर माँ की चेतावनी ने उसे बचा लिया। इसके बावजूद अधकू भाइयों से नाराज नहीं था। वह उन्हें सही रास्ते पर लाना चाहता है और आखिर वह इस मुश्किल काम में सफल भी हो जाता है।

मनु जी कहते हैं, "इस कहानी में कुछ बात थी कि मैं उसे आज तक नहीं भूल पाया। क्यों भला? शायद इसलिए कि मुझे लगता था, मैं ही अधकू हूँ - दूसरों से बहुत अलग। कुछ है मुझमें कि मैं भी कुछ कर सकता हूँ। सारी दुनिया से कुछ अलग कर सकता हूँ। वह क्या चीज थी जिस पर इतना भरोसा था मुझे? तब तो शायद बहुत साफ न रही होगी। पर आज जानता हूँ कि वह मेरी चुपचाप सोचते रहने की आदत थी और लिखने-पढने की धुन, जो शायद पाँच-छह बरस से ही शुरू हो गई थी। वही धुन जो आगे चलकर मुझे साहित्य की खुली दुनिया में लाई।"

ऐसे ही माँ की सुनाई कहानियों में एक और कहानी थी, एक ऐसे राजकुमार की, जिसे सात कोठरियों वाले महल में कैद कर दिया जाता है। उससे कहा जाता है कि वह छह कोठरियाँ तो देख ले, पर सातवीं न खोले; क्योंकि इससे उसका अनिष्ट हो सकता है। राजकुमार ने पहली कोठरी खोली, दूसरी कोठरी खोली, तीसरी कोठरी खोली। एक-एक करके छह कोठरियाँ देख लीं, पर सातवीं कोठरी...? राजकुमार ने सोचा, क्या सातवीं कोठरी भी खोलकर देखूँ? उसने धड़कते दिल से सातवीं कोठरी का दरवाजा खोला और उसे खोलते ही भीषण हलचल हुई, बवंडर-सा आ गया। जैसे सिर पर आसमान टूट पड़ा हो। एक से बढ़ कर एक विपत्तियाँ आईं। कभी मौत के खेल सरीखा खौलता हुआ समंदर, कभी आग की ऊँची-ऊँची, प्रचंड लपटें, कभी फुफकारते हुए बड़े-बड़े विशालकाय साँप...कभी जलती हुई आँखों के साथ गरजते शेर, चिंघाड़ते हाथी और दूसरे हिंस्र जंगली जानवर। एक के बाद एक सात समंदर, भीषण आपदाओं के।

पर राजकुमार ने एक-एक कर सातों समंदर पार किए। बीच-बीच में डरा, काँपा, लेकिन जूझा हर विपत्ति से। और अंत में उसने भयानक राक्षस से लड़कर उसे मार दिया और कैद राजकुमारी को मुक्त करा दिया और सकुशल लौट आया।

मनु जी कहते हैं, "मुझे आज भी अच्छी तरह याद है यह कहानी। सुनते हुए हर पल मेरी साँस अटकी रहती थी। लगता, आँधियों के बीच फँसा वह राजकुमार मैं ही हूँ।...सोचता हूँ, अगर राजकुमार सातवीं कोठरी का दरवाजा न खोलता तो...? बाकी छह कोठरियों के दरवाजे तो हर कोई खोलता है, पर सातवीं कोठरी का दरवाजा तो कोई-कोई ही खोलता है और वही शायद अपने समय का नायक भी होता है।"

प्रकाश मनु में अधकू और सातवीं कोठरी का दरवाजा खोलने का दुस्साहस करने वाला राजकुमार, दोनों आ मिले हैं। न जाने कितनी सातवीं कोठरियाँ खोलकर अंदर जाकर संघर्ष करना शेष है अभी।

देवेंद्र कुमार, ई-403, प्रिंस अपार्टमेंट्स, प्लॉट नं. 54, आईपी एक्सटेंशन, पटपड़गंज, दिल्ली- 110092
मो. 9910140071, ई-मेल - devendrakumar755@gmail.com

✧ ✧ ✧

सतत परिश्रम और संकल्प की सच्ची प्रतिमूर्ति

दिविक रमेश

'हिंदी बाल कविता का इतिहास' के अनुसार सन् 1970 के आगे का युग) का उनका यह आकलन कि "इस दौर की बाल कविता को गौरव युग (दूसरा चरण) की बाल कविताओं, खासकर छठे-सातवें दशक के कीर्तिशिखरों के आगे रखकर देखें, तो यह बहुत साफ हो जाएगा कि इस दौर की बाल कविता में, वैसा अनूठापन, वैसी शक्ति और ऊँचाई नहीं है, जो गौरव युग में नजर आती है।"

मेरे जैसे इस संदर्भ की समझ के लोगों के लिए एकदम ग्राह्य नहीं भी हो सकता है। निस्संदेह इस समय की कविता कहीं ज्यादा उत्कृष्ट है। यानी जो उत्कृष्ट है, वह। मुझे लगता है कि इस संदर्भ में 1970 के बाद के बाल साहित्य को जयप्रकाश भारती के द्वारा बाल साहित्य का स्वर्णयुग कहना उचित ही था। लेकिन इतने से ही इन ग्रंथों का महत्त्व और गौरव कम नहीं हो जाता। निरंकारदेव सेवक के इस दिशा में किए गए 'मील के पत्थर' जैसे कार्य से चुनौती लेना ही बहुत साहस की बात है। अतः प्रकाश मनु सौ फीसदी बधाई के पात्र तो हैं ही।

12 मई, 1950 को शिकोहाबाद, उत्तर प्रदेश में जनमे प्रकाश मनु उर्फ चंद्रप्रकाश विग बहुमुखी प्रतिभा के धनी तो हैं ही, बहुआयामी व्यक्तित्व के अनूठे साज के-से इनसान भी हैं। इनकी मातृभाषा पंजाबी है, लेकिन रचनाकार ये हिंदी के ही हैं। बड़ों और बाल साहित्य की दुनिया का यह नागरिक, इतना विपुल साहित्य और उसमें कितना ही गुणवत्ता से भरा-पूरा भी, जोड़े बैठा है कि लिखने की शुरुआत में ही किसी आतंक से कमतर नहीं प्रतीत होता। उपन्यास, कहानी, कविता, संस्मरण, संपादित पुस्तकें, साक्षात्कार, आलोचना, शोध, आत्मकथा (मेरे कुछ आत्म-संस्मरण) आदि कौन-सी विधा है, जिसमें प्रकाश मनु ने न लिखा हो, बल्कि कहूँ कि जमकर ढ़ेर सारा न लिखा हो।

यों तो लंबा-लंबा और ज्यादा से ज्यादा लिखना प्रकाश मनु का शौक या उनका स्वभाव माना जा सकता है, लेकिन इधर शायद यह उनकी विवशता का भी अंग है। इन्हें अपने कविता-संकलन 'छूटता हुआ घर' पर प्रथम गिरिजा कुमार माथुर स्मृति पुरस्कार प्राप्त हुआ। देवेंद्र सत्यार्थी, राम विलास शर्मा, हरिपाल त्यागी आदि पर केंद्रित इनका लिखा काफी चर्चित हुआ है। चर्चित तो इनका उपन्यास 'यह जो दिल्ली है' भी काफी रहा है। लेकिन संपादन (विशेष रूप से एक लंबे समय तक 'नंदन' के संपादकीय विभाग में रहकर

और अब 'बालवाटिका' से जुड़कर) और रचनात्मक लेखन की दृष्टि से इनका जो योगदान बाल साहित्य के क्षेत्र में हो चुका है, उसके कारण आज ये एक जाने-माने बाल साहित्यकार के रूप में ही अनिवार्य रूप से अधिक जाने जाते हैं।

यह अलग बात है कि प्रकाश मनु को शिकायत रही है कि बड़ों के लिए लिखे उनके उपन्यासों, कहानियों और कविताओं की उनकी अपेक्षा के अनुसार चर्चा नहीं हुई। भले ही प्रकाश मनु की यह इच्छा कितने ही लेखकों से भिन्न न हो, लेकिन इसमें तो कोई शक नहीं है कि उन्होंने जितना रचा है और जितना औरों के बारे में लिखा है, उसे देखते हुए उनकी ओर जितना ध्यान जाना चाहिए था, नहीं जा सका है। कारण खोजे जाने चाहिए। मुझे स्वयं उनके योगदान को लेकर कितनों से टकराना पड़ा है।

बाल साहित्य के उनके विपुल भंडार में उपन्यास, कहानियाँ, कविताएँ, लेख, संस्मरण, साक्षात्कार आदि तो उपलब्ध हैं ही, इधर तो 'हिंदी बाल कविता का इतिहास' के बाद उनका महत्त्वपूर्ण और खाते-पीते घर की तर्ज पर स्वस्थकायी 'हिंदी बाल साहित्य का इतिहास' भी हमारे बीच उपस्थित हो चुका है, भले ही कुछ और की माँग की अपेक्षा करते हुए। खैर, उन्हीं की आलोचना की 'गद्गद्' शैली से उधार लेकर कहूँ तो 'हरि अनंत हरि कथा अनंता' जैसी स्थिति में खुद को खड़ा महसूस कर रहा हूँ। जहाँ तक उनके व्यक्तित्व का सवाल है तो उनका गुस्सा खरा और सात्विक है और प्यार भी वैसा ही है। पूरी शिद्दत के साथ तना हुआ आत्मसम्मान भी और जमीन क्या, पाताल तक झुकने को तत्पर अविश्वसनीय विनम्रता भी।

कहाँ से याद करूँ? कैसे शुरुआत करूँ? बहुत लंबा और आत्मीय साथ है। खासकर उनके 'नंदन' से जुड़ने के बाद से।

बात दिसम्बर, 1978 की है। 14 दिसम्बर, 1978 का एक पत्र (जिसमें तिथि और सन् देवनागरी अंकों में लिखे गए थे) जो द्वारा श्री कांतिप्रकाश, 230/3, (पत्र में देवनागरी अंकों में) निकट जिला रोजगार कार्यालय, कुरुक्षेत्र (हरियाणा) से आया था, मिला। भेजने वाले का नाम प्रकाश मनु (डॉ.) लिखा था। तब मैं एक साहित्यिक पत्रिका (बाल साहित्य की नहीं) 'दिशाबोध' का संपादन कर रहा था और बाल साहित्य में नहीं था। मेरा (बड़ों के लिए कवि शमशेर बहादुर सिंह के द्वारा चयनित मेरी कविताओं का) पहला कविता संग्रह 'रास्ते के बीच' छपकर आ गया था और चर्चा में था। रचनाओं के साथ संपादक को पत्र मिलना सामान्य बात होती है। लेकिन यह पत्र थोड़ा हट कर था। स्वयं देख लीजिए। पत्र यों था -

"भाई दिविक जी,

'दिशाबोध' में प्रकाशनार्थ 'दर्द और कविता' भेज रहा हूँ। अप्रकाशित है।

कु.वि. के हिंदी विभाग से यूजीसी फैलोशिप के अंतर्गत इसी वर्ष 'छायावाद एवं परवर्ती काव्य में सौंदर्यानुभूति' विषय पर शोध किया है। कम्युनिस्ट हूँ। मार्क्सवाद पढ़ा है। मुक्तिबोध,

धूमिल, जगूड़ी, शमशेर, केदारनाथ अग्रवाल की कविताएँ विशेष तौर से निकट महसूस होती हैं।

हो सकता है, यह कविता आपको प्रकाशन के लिए ठीक न जँचे। तो भी क्या मोटे तौर से समीक्षा करते हुए दो-एक लाइनें लिख सकेंगे? दिविक भाई, इससे कुछ दिशा मिलेगी, मुझे विशेष प्रसन्न्ता होगी।

आपका 'रास्ते के बीच' पढ़ा है। क्या इस पर दो-एक पेज की अनौपचारिक समीक्षा, यानी कि मुझ जैसे साधारण पाठक को यह ऐसा-ऐसा लगा, लिख भेजूँ अभी पिछले दिनों पढ़ते हुए नोट्स लिए थे, पसंद करेंगे? 'दिशाबोध' का वार्षिक शुल्क लिखिएगा?

साभार -
आपका ही, प्रकाश मनु
14 दिसम्बर, 1978"

जाहिर है कि मुझे मिले इस पहले ही पत्र ने प्रकाश मनु के व्यक्तित्व, उनकी अध्ययनशीलता, उनके विवेक और साहित्यिक सरोकार को सामने ला दिया था। उनकी कविता मैंने स्वीकृत की थी, लेकिन प्रतिष्ठित हो जाने के बावजूद 'दिशाबोध' के जल्दी ही बंद हो जाने के कारण कविता छपने से रह गई थी।

प्रकाश मनु का इसके बाद 'रास्ते के बीच' पर लिखा भी मिला था, जो अद्‌भुत था। जाना कि संग्रह उन्हें इतना पसंद था कि उसे वे अपने साथ रखते थे और उससे उन्हें बल भी मिलता था। बहुत बाद में, कुछ ही पहले जब वह प्रसंग किसी संदर्भ में, सोशल मीडिया पर फिर ताजा हुआ तो प्रकाश मनु ने लिखा (जिसे मैं उनके व्यक्तित्व की एक और बानगी के लिए दे रहा हूँ) -

"हाँ दिविक जी, 'रास्ते के बीच' मुझे बहुत पसंद था...मुझे क्या, हम दोनों (स्वयं और पत्नी सुनीता जी) को ही।...और मैंने तो कुरुक्षेत्र के ब्रह्मसरोवर पर बैठकर कई बार उसे पढ़ा। उसके साथ एक खास तरह का जुड़ाव हो गया था।...प्रकाश मनु तो हो चुका था, पर इस नाम के साथ यात्रा का वह प्रारंभ ही था। तभी बहुत भावना में डूबकर वह पत्र भी लिखा था।...उन्हीं दिनों एक लेखक का जीवन जीने की कसम खाई थी, फिर चाहे कितनी ही परेशानियाँ राह में आएँ।... सोचा था, कोई भी काम कर लूँगा, जिससे जीवन चले, पर मुख्य काम तो बस साहित्य ही... लिखना या फिर पढ़ना! धन्यवाद, आपने बहुत कुछ याद दिला दिया दिविक जी।...मेरे जीवन का वह बहुत कठिन काल था...पर बहुत पढ़ा, बहुत लिखा! सच ही कुरुक्षेत्र में मेरा पुनर्जन्म हुआ, नाम ही नहीं बदला और भी बहुत कुछ...! मुझे खुशी है कि मेरे बहुत से प्रिय कवियों की तरह आपकी कविताएँ भी तब सहयात्री बनीं।...शुक्रगुजार हूँ दिविक जी। सस्नेह, प्रकाश मनु।"

प्रकाश मनु के उपर्युक्त कथन में कसम खाने, बहुत पढ़ा, बहुत लिखा और बहुत भावना में डूबकर लिखने वाली जो स्वीकृतियाँ आई हैं, उन्हें रेखांकित किया जाना चाहिए। सच पूछें तो ये स्वीकृतियाँ ही आज के प्रकाश मनु की भी मूर्ति का सृजन करती हैं। खासकर 'भावुकता में डूबने'

वाली प्रवृत्ति जब-तब उनके 'आकलन' के सिर पर भी चढ़ी नजर आ जाया करती है। मुझे व्यक्तिगत तौर पर, मैं गलत हो सकता हूँ, उनके महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'हिंदी बाल साहित्य का इतिहास', अन्य ग्रंथ और 'हिंदी बाल कविता का इतिहास' में भी नजर आया है। प्रशंसा और आलोचना, दोनों ही दृष्टियों से। कहीं-कहीं तो रचनाकारों के योगदान और साहित्य में उनके योगदान को लेकर इन दोनों ग्रंथों में ही रचनाकारों को प्राथमिकता आदि देने की दृष्टि से आकलनगत अंतर देखा जा सकता है। विभाजन के आधार, स्वरूप और गुणवत्ता की दृष्टि से रचनाकार संबंधी शिखरों को लेकर भी संवाद हो सकता है। मसलन तीसरे चरण या विकास युग (सन् 1980 से आगे का युग, 'हिंदी बाल कविता का इतिहास' के अनुसार सन् 1970 के आगे का युग) का उनका यह आकलन कि "इस दौर की बाल कविता को गौरव युग (दूसरा चरण) की बाल कविताओं, खासकर छठे-सातवें दशक के कीर्तिशिखरों के आगे रखकर देखें, तो यह बहुत साफ हो जाएगा कि इस दौर की बाल कविता में, वैसा अनूठापन, वैसी शक्ति और ऊँचाई नहीं है, जो गौरव युग में नजर आती है।"

मेरे जैसे इस संदर्भ की समझ के लोगों के लिए एकदम ग्राह्य नहीं भी हो सकता है। निस्संदेह इस समय की कविता कहीं ज्यादा उत्कृष्ट है। यानी जो उत्कृष्ट है, वह। मुझे लगता है कि इस संदर्भ में 1970 के बाद के बाल साहित्य को जयप्रकाश भारती के द्वारा बाल साहित्य का स्वर्णयुग कहना उचित ही था। लेकिन इतने से ही इन ग्रंथों का महत्त्व और गौरव कम नहीं हो जाता। निरंकारदेव सेवक के इस दिशा में किए गए 'मील के पत्थर' जैसे कार्य से चुनौती लेना ही बहुत साहस की बात है। अतः प्रकाश मनु सौ फीसदी बधाई के पात्र तो हैं ही।

प्रकाश मनु से कुछ ज्यादा मिलना-जुलना उनके 'नंदन' पत्रिका से जुड़ने के बाद ही शुरू हुआ। जहाँ तक उनके बाल साहित्यकार से मेरे परिचित होने का सवाल है, तो वह तो और भी बाद में संभव हुआ। जहाँ तक मुझे याद आ रहा है, उनकी बाल कविताएँ देवेंद्र कुमार और रमेश तैलंग की बाल कविताओं के साथ एक सहयोगी संकलन के रूप में छपी थीं, जिन्हें मैंने पढ़ा था। उस समय उनकी वे बाल कविताएँ मुझे सामान्य लगी थीं, जबकि रमेश तैलंग की कविताओं ने मेरा ध्यान खींचा था। रमेश तैलंग आज भी निस्संदेह बेहतर कवि हैं।

सच कहूँ तो प्रकाश मनु की जो सहज उपलब्धि गद्य विधाओं में दिखती है, वह कविता के क्षेत्र में थोड़ी कंजूसी लगती है। ऐसा नहीं है कि उनके पास उल्लेखनीय कविताओं की पूँजी नहीं है, वह तो है ही। हास्य के पुट वाली या खिलंदड़ेपन के भाव से युक्त उनकी अनेक अच्छी कविताएँ पाठकों के ध्यान में होंगी। जैसे 'एक मटर का दाना'। इस प्रसंग में मैं उनकी एक कविता 'पापा, दीदी बहुत बुरी है' का उल्लेख अवश्य करना चाहूँगा। यह एक प्यारी-सी कविता है, जिसमें बच्चे का मनोविज्ञान अपने यौवन पर महसूस किया जा सकता है। मेरे जैसे पाठक को, जो रचनाओं में बाल-मनोविज्ञान, तार्किकता (अथवा वैज्ञानिक दृष्टि), थोड़ी प्रयोगधर्मिता (अथवा पहले लिखी जा चुकी रचनाओं से हटकर), अनुभवजन्यता, सहजता, सहज भाषा आदि का पक्षधर है, ऐसी

और इससे भी बेहतर रचनाओं की तलाश रहती है। हालाँकि कविता की अंतिम पंक्ति 'पर भीतर से तेज छुरी है' तुक की खूबसूरत पूर्ति करते हुए भी सोच के धरातल पर थोड़ी अटपटी लग सकती है। 'लेकिन तीखी मिर्ची सी है' जैसी पंक्ति होती तो बाल-सुलभ सहज अभिव्यक्ति लगती। खैर, यह खूबसूरत 'पापा दीदी बहुत बुरी है' कविता यों है -

पापा, दीदी बहुत बुरी है!

बिना बात करती है कुट्टी
सीधे मुँह न करती बात,
मैं कहता हूँ खेलो मिलकर
मगर चला देती यह लात।
हरदम झल्लाया करती है,
हरदम इसकी नाक चढ़ी है!

मेरे सभी खिलौने लेकर
जिस-तिस को दिखलाया करती,
माँगूँ तो कह देती ना-ना,
मुझ पर रोब जताया करती।
सब दिन कहती पढ़ो-पढ़ो, बस
आफत मेरे गले पड़ी है!

कभी न अपनी चिज्जी देती
उलटे मेरी हँसी उड़ाती,
कह देती है सब सखियों से
बुद्धू कहकर मुझे चिढ़ाती।
बातें करती मीठी-मीठी
पर भीतर से तेज छुरी है!

प्रकाश मनु ने कितनी ही अद्‌भुत कहानियाँ लिखी हैं, जिन्हें बच्चे और बड़े सब बड़े चाव से पढ़ना चाहेंगे। यों तो उनके पास कहानियों का प्रकाशित रूप में एक बड़ा भंडार है, लेकिन पाठक चाहें तो उनकी कुछ श्रेष्ठ कहानियाँ उनकी पुस्तक 'मेरे मन की बाल कहानियाँ' में पढ़ सकते हैं। उनकी बेहतरीन कहानियाँ जैसे 'रहमत चाचा का लट्टू', 'खुशी को मिला मकई का दाना', 'लाल रिबन वाली परी' आदि इस संग्रह में सहज उपलब्ध हैं। यों पुस्तक से बाहर की एक कहानी 'नानी का बटुआ' भी मजेदार कहानी है। लाल रिबन वाली टुलटुल किस प्रकार खेल में पारंगत हो जाती

है और किस प्रकार उसे कुप्पू के द्वारा प्रोत्साहन मिलता है, मसलन उसके आत्मविश्वास को बनाए रखने के लिए प्रारंभ में जान-बूझकर हार जाने की कला के द्वारा, इसका बहुत ही प्यारा चित्रण इस कहानी में मिलता है।

इसी प्रकार 'रहमत चाचा का लट्टू' में भी किस प्रकार रहमत चाचा कुक्कू को तरकीब से लट्टू चलाने में पूरा माहिर बना देते हैं और कुक्कू रहमत चाचा को अपनी जीत का किस प्रकार पूरा श्रेय देता है, इस मार्मिक कहानी में पढ़ने लायक है। वस्तुतः प्रकाश मनु अपनी कहानियों में एक ओर तो प्रायः बड़े घरेलू और ऊपर से साधारण लगने वाले पात्र (लेकिन असाधारण बनने की ललक रखने वाले) लाते हैं और दूसरी ओर सहज लेकिन सशक्त भाषा और किस्सागोई शैली का बेहतरीन इस्तेमाल करते हैं। वे बाल मन की छोटी-छोटी हरकतों को भी बहुत बेहतरी से शब्दों का जामा पहनाते हैं। जहाँ फंतासी से काम लेते हैं, वहाँ भी वे उलझे हुए नजर नहीं आते।

मेरी निगाह में इधर आई उनकी पुस्तक 'मेरे कुछ आत्म-संस्मरण' न केवल पठनीय है, बल्कि उन्हें और उनके साहित्य को समझने में काफी कारगर सिद्ध हो सकती है। इसमें उनके

संघर्षों, उनकी टकराहटों, उनके आत्मीय पक्ष, उनके जीवन-संदर्भ आदि तो हैं ही। यह ठीक है कि प्रकाश मनु विस्तार से लिखने के आदी हैं और इसीलिए पाठक स्वयं संपादित करके या कहीं-कहीं छोड़कर पढ़ने की छूट ले लेता है, लेकिन इस कृति में प्रकाश मनु की गद्य भाषा का रचाव बहुत प्रभावशाली है। एक-दो उदाहरण देकर समझाया जा सकता है कि उनके ये आत्म-संस्मरण उनकी कृतियों तक पहुँचने की राह कितनी सरल बना सकते हैं। अपने उपन्यासों 'यह जो दिल्ली है' और 'कथा सर्कस' के बार में उन्होंने लिखा है -

"'यह जो दिल्ली है' में पत्रकारिता की कथा है तो 'कथा सर्कस' साहित्य की दुनिया में अनेक अंतर्कथाओं को मिलाकर बुनी गई एक कोलाज-कथा है। मौजूदा वक्त में जब आदमी के जीने और मरने में कोई फर्क नहीं रहा, तो वहाँ लिखने और न लिखने में फर्क ही क्या बचा है! यह गूँज 'कथा सर्कस' में शुरू से आखिर तक है। और यह कि मौजूदा वक्त में लेखक होना तो एक किस्म

से 'जोकरी का खेल' दिखाना है - एक बहुत ऐंठे हुए, धन के अभिमान से इतराते शक्तिशाली समाज के आगे!"

इसी कृति में प्रकाश मनु ने अपने बाल साहित्य के संबंध में अपनी धारणाएँ भी व्यक्त की हैं। बल्कि कहूँ अपने साहित्य का अपना ही आकलन भी प्रस्तुत किया है। वहीं इधर चल रहे कुछ विवादों के संबंध में अपनी दृष्टि से भी परिचित कराया है, "परीकथाओं के विरोध में आजकल बहुत कुछ कहा जाता है। ज्यादा तर्कशील लोग राय देते हैं कि आधुनिक समय में परीकथाएँ बच्चों के विकास में बाधक हो सकती हैं। इसी तरह यथार्थ के नाम पर फंतासी कथाओं को भी खारिज करने का आग्रह इन दिनों बहुत दिखाई पड़ता है। पर परीकथाएँ और फंतासी कथाएँ बच्चों को स्वाभाविक रूप से प्रिय हैं। उन्हें छीनना तो बच्चों और बचपन के साथ अत्याचार ही है। हाँ, आज परीकथाएँ नए शिल्प और नए अंदाज में लिखी जाएँ, इस पर हमारा जोर रहना चाहिए।" प्रकाश मनु की इस दृष्टि को उनके कुछ नाटकों और कहानियों आदि में घटते हुए भी देखा जा सकता है।

अब मैं विशेष रूप से उनके बाल उपन्यास 'एक था ठुनठुनिया' पर कुछ लिखना चाहूँगा। इस उपन्यास के साथ मेरा बौद्धिक और भावनात्मक संबंध बन चुका है। लेकिन आगे बढ़ने से पहले इस उपन्यास के बारे में स्वयं लेखक का मंतव्य जान लिया जाए, "...एक था ठुनठुनिया' मस्ती की धुन में लिखा गया बाल उपन्यास है। यों भी ठुनठुनिया हर वक्त बड़ा मस्त रहने वाला पात्र है। हालाँकि उसके घर के हालात अच्छे नहीं हैं। पिता हैं नहीं। माँ बहुत गरीब और तंगी की हालत में उसे पाल-पोस रही है। पर इन सब परेशानियों के बीच ठुनठुनिया उम्मीद का दामन और मस्ती नहीं छोड़ता। वह बड़ा खुशमिजाज, हरफनमौला और हाजिरजवाब है और इसीलिए बड़ी से बड़ी मुश्किलों के बीच रास्ता निकाल लेता है।"

'एक था ठुनठुनिया' पर प्रकाश मनु को साहित्य अकादेमी का बाला साहित्य पुरस्कार मिला था और इसे मैं हिंदी के बाल साहित्य के लिए गौरव की बात मानता हूँ। मेरे लिए यह सुखद संयोग था कि मैं उस तीन सदस्यों वाली निर्णायक समिति का एक सदस्य था, जो पुरस्कार के लिए अंतिम रूप से निर्णय लेती है। अतः और कृतियों के साथ इस कृति को भी मैंने बहुत ही सूक्ष्म दृष्टि से पढ़ा था। मुझे यह कृति अन्य कृतियों की तुलना में बेहतर लगी थी। अपने शिल्प में यह एक अनूठा उपन्यास है। निस्संदेह इसमें जो भी घटनाएँ हैं, उनके केंद्र में ठुनठुनिया नामक बालक है। लेकिन ये घटनाएँ अलग-अलग कहानी के रूप में भी पढ़ी जा सकती हैं, अर्थात् स्वायत्त हैं। इस कारण बच्चों के लिए पढ़ने में राहत देती चलती हैं। जरूरी रोचकता, जिज्ञासा, मजा सब कुछ यहाँ है, बिना किसी भारीपन के। जगह-जगह प्यारी-लुभावनी नाटकीयता से काम लिया गया है। जरूरी रहने पर समझ को साझा किया गया है, उपदेश नहीं बघारा गया है। पूरे उपन्यास में एक दोस्ती की सी खुशबू फैली हुई है। लोककथाओं का सा मजेदार छोंक लगा देखा जा सकता है। बाल मनोविज्ञान की समझ के साथ रचा गया है यह उपन्यास।

प्रकाश मनु जाने कहाँ-कहाँ से अपने पात्रों के मजेदार नाम लेकर आते हैं। ठुनठुनिया नाम को ही देख लीजिए। इस नाम को लेकर इसी उपन्यास के 'नाम का चक्कर' भाग को पढ़ने का आनंद लिया जा सकता है। उसे कुछ लोग छेड़ते हैं, "ठुनठुनिया, ओ ठुनठुनिया! जरा बता तो। तेरे नाम का मतलब क्या है?" इस नाम को वे अजीब बताते थे। ठुनठुनिया मुकाबला करता है, पर था तो बच्चा ही। सो माँ से नाम बदलने को कहता है। माँ उसे अच्छा सा नाम खोजने के लिए शहर जाने की सलाह देती है। अंततः ठुनठुनिया को अपना नाम ही उचित लगता है। वस्तुतः ठुनठुनिया एक ऐसा अद्‌भुत बालक है, जो भले ही मध्यम वर्ग से भी निचले वर्ग से आता हो, लेकिन सीधा-सच्चा है और अपनी धुन का पक्का भी। वह जिज्ञासु भी है और हर चीज को सीखने को लालायित भी। साथ ही निर्भीक भी है, विनम्र भी। वह कितनी ही बातों में, बड़ों के प्रोत्साहन और सहयोग से पारंगत भी हो जाता है, लेकिन अहंकार से दूर रहकर कृतज्ञ भी रहता है। प्रकाश मनु का कहानी के बुनने का कौशल भी देखने लायक है। फंतासी का बेहतरीन उपयोग भी इस कृति में हुआ है।

इसी कृति में प्रकाश मनु ठुनठुनिया के माध्यम से अपनी प्रगतिशील दृष्टि का भी परिचय देते हैं, जिसके तहत वे भाग्य के स्थान पर कर्म या पुरुषार्थ को महत्त्व देते नजर आते हैं। मोटेराम पंडित जब चलते-चलते आसमान की ओर देखकर, जन्मपत्री बनाने के लिए तारों की स्थिति का अध्ययन करने के चक्कर में तालाब में जा गिरे और ठुनठुनिया ने उन्हें बचाया तो उसके अच्छे किए के बदले पंडित जी ने उसकी मुफ्त में जन्मपत्री बनाने की बात कही। इस पर ठुनठुनिया का कहना था, "नहीं पंडित जी...डर इस बात का है कि जो खुद आसमान की ओर देखकर चलता है और जिसे धरती की इतनी खबर भी नहीं है कि कब उसका पैर तालाब में फिसला और तालाब में गिरकर वह हाय-हाय करने लगा, वह भला किसी दूसरे का भाग्य क्या बाँचेगा? और उससे किसी और को मिलेगा क्या? पंडित जी, मैं तो धरती की ओर देखकर चलता हूँ। मेरे लिए इतना ही काफी है। भाग्य-वाग्य जानने की मुझे कोई इच्छा नहीं है।"

सहज ही समझा जा सकता है कि प्रकाश मनु को बच्चे का कैसा रूप चाहिए। कहानी के अंत में जाकर ठुनठुनिया की दुनिया एक प्रौढ़ और सुखी जीवन में बदल जाती है। वह फैक्टरी में काम करने लगता है। वहीं उसे अलग क्वार्टर मिल गया, जिसमें उसकी माँ गोमती भी रहती है। माँ अब उसके विवाह के सपने देखती है। ठुनठुनिया अपने मालिक से कहकर उसके जीवन में आ चुके कलाकार और अन्य मित्रों को भी फैक्टरी में बुला लेता है। पुरुषार्थ और समझ के बल पर सुखद अंत वाला यह उपन्यास निस्संदेह प्रकाश मनु की एक उपलब्धि है।

कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि बाल साहित्य को प्रकाश मनु का योगदान अविस्मरणीय है और भविष्य में भी उनसे और बहुत कुछ मिलने की अपेक्षा है।

दिविक रमेश, एल-1202, ग्रैंड अजनारा हेरिटेज, सेक्टर-74, नोएडा-201301 (उ.प्र.)
मो. : 09910177099

मित्रता की लंबी पगडंडियाँ और रास्ते

ब्रजेश कृष्ण

'एक बात और जिसे मैं नहीं भूल पाता, वह है उनके जीवन की सादगी और उदारता। इस आत्मपरक स्वार्थी समय में ऐसे गुण दिनोंदिन दुर्लभ होते जा रहे हैं। प्रकाश को अपने लिए बहुत ही कम चीजों की आवश्यकता पड़ती है। कपड़े भी वे बहुत कम रखते हैं। कुरुक्षेत्र में उन्होंने घर से दिए गए ढेर सारे कपड़े हॉस्टल के सफाईकर्मी और विभाग के पियोन में बाँट दिए थे। इसके बाद से उन्होंने अपने लिए कभी कपड़ों का अंबार नहीं लगने दिया। किसी की शादी-ब्याह या अन्य समारोह में शामिल होने के लिए भी उन्हें अलग से कोई विशेष कपड़ों की जरूरत नहीं लगती। उनकी माँ अकसर पिन्नियाँ और एक बड़े डिब्बे में घी भेजती थीं, वह भी वे इन्हीं लोगों को समर्पित होता था। उनके साथ रहते हुए कैंटीन में या अन्य जगह जब तक कोई जेब से पैसे निकालता, वे दे चुके होते। जब भी मैं फरीदाबाद गया, तो उन्होंने कभी जेब में हाथ नहीं डालने दिया। अगर मैं जिद करता तो वे आहत होते। दरअसल, जेब में पड़ा हुआ पैसा उन्हें काटता है!

वर्षों पहले का वह दिन मेरी स्मृति में चित्र की तरह अंकित है। बात नवम्बर-दिसम्बर 1975 की है। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के टैगोर छात्रावास की मैस के चहल-पहल और शोरगुल भरे हॉल में एक छात्र बहुत ही सधे कदमों से धीरे-धीरे प्रविष्ट हुआ। वह शोधछात्रों का हॉस्टल था और यह समय लंच का था। उस छात्र ने बंद गले का कत्थई कोट और सिलेटी रंग की पेंट पहन रखी थी। चेहरे पर मोटे लैंस का भारी चश्मा और हल्की मूँछें थीं, जो उसे काफी गंभीर किस्म का बनाती थीं। मेरी पहली नजर तो वेशभूषा के कारण ही उस पर टिकी थी। जिन दिनों कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के शोधछात्र सूट या कोट-टाई में लैस रहते थे, वह किसी बुजुर्ग की तरह बंद गले के लंबे कोट में नमूदार हुआ था। वह हॉल में घुसा और डाइनिंग टेबिल के एक किनारे चुपचाप बैठकर खाने की थाली का इंतजार करने लगा था।

उसे देखकर मुझे अचानक विनोद कुमार शुक्ल की कविता का शीर्षक याद आया 'वह आदमी नया गरम कोट पहनकर चला गया विचार की तरह'। मैंने शीर्षक में 'चला गया' की जगह 'आ गया' किया और मन ही मन मुसकराया! कुछ कौतुक और नए विद्यार्थियों के छेड़ने की मस्ती के साथ मैं उसकी ओर खिसका और उसका परिचय जानना चाहा। उसने बताया कि उसने हिंदी विभाग में शोधछात्र के रूप में प्रवेश लिया है।

शिकोहाबाद से आया है। और नाम है, चंद्रप्रकाश विग। उसकी आवाज धीमी, मगर स्पष्ट थी। आत्मविश्वास से भरी हुई। वजनदार।

कुछ ही महीने हुए थे कि मैं सागर विश्वविद्यालय से यहाँ आया था। यहाँ मैं किसी साहित्यिक रुचि वाले साथी के संग-साथ के लिए तरस रहा था। जब चंद्रप्रकाश ने बताया कि वह समकालीन कविता पर शोध करेगा तो जाहिर है, मुझे उससे मिलना अच्छा लगा। यह प्रकाश मनु से मेरी पहली भेंट थी, हालाँकि उन दिनों तक उनका नाम चंद्रप्रकाश विग था। जल्दी ही हम रोज मिलने लगे और हमारे बीच ऐसी मैत्री स्थापित हुई कि आज पैंतालीस बरस होने को आए, न वह मैत्री मुरझाई और न ही उसका रंग मटमैला हुआ! हम अब बरसों तक नहीं मिल पाते, किंतु बगैर खाद-पानी के मैत्री का यह बिरवा अब तक लहलहा रहा है!

पहली भेंट के दो-एक दिन के भीतर ही मैं प्रकाश को अपने कमरे में ले गया। उन्हें मैंने सागर के विलक्षण साहित्यिक माहौल के किस्से सुनाए। वहाँ होने वाली गोष्ठियों, प्रतिष्ठित लेखकों के आगमन और वहाँ के कवि-लेखक मित्रों की चर्चा की तो वे जैसे रोमांच से भर गए। वे भी शिकोहाबाद के अपने कवि दोस्तों के बारे में बताते रहे, मेरे आग्रह पर उन्होंने अपनी दो-एक कविताएँ सुनाईं। वे उन दिनों वे 'रुद्र' उपनाम से कविताएँ लिखते थे। उनकी कविताओं में उस समय, अपने साहित्यिक नाम के अनुरूप, खौलता हुआ गुस्सा रहता था। फिर भी वे कविताएँ मुझे अच्छी लगीं और ये हमारे और नजदीक आने का कारण भी बनीं। यद्यपि मैंने महसूस किया कि समकालीन कविता से उनका परिचय उतना सघन नहीं है, जितनी मैं उम्मीद कर रहा था।

उसी दिन या फिर कुछ अंतराल से मैंने उन्हें सागर से साथ लाई हुई कुछ किताबें पढ़ने को दीं। इनमें मुक्तिबोध का 'चाँद का मुँह टेढ़ा है', धूमिल का 'संसद से सड़क तक', रघुवीर सहाय का 'आत्महत्या के विरुद्ध', कैलाश वाजपेयी का 'तीसरा अँधेरा' के अलावा अशोक वाजपेयी द्वारा संपादित विष्णु खरे, ज्ञानेंद्रपति, जितेंद्र कुमार आदि की 'पहचान' सीरीज की कलात्मक पुस्तिकाओं के साथ कुछ पत्रिकाओं के अंक थे। मुझे याद है कि मैंने अपने प्रिय कवि विष्णु खरे की कुछ पसंदीदा कविताओं का बहुत डूबकर वाचन भी किया था। प्रकाश के अनुसार, इस सबसे उनके आगे एक नई दुनिया खुल गई और उन्हें अपनी अभिव्यक्ति को पहचानने में मदद मिली।

मेरे लिए तो प्रकाश का कुरुक्षेत्र आना जैसे वरदान सिद्ध हुआ। मैं सागर में प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व में शोधछात्र था, और मैं वहाँ की साहित्यिक गतिविधियों में खूब सक्रिय था। परिस्थितिवश मुझे सागर विश्वविद्यालय का साहित्य-संपन्न वातावरण छोड़कर यहाँ रिसर्च असिस्टेंट की नौकरी के लिए आना पड़ा था। हालाँकि मुझे यह सुविधा दी गई थी कि मैं अपनी अधूरी पी-एच.डी. का काम भी पूरा कर सकूँ। मन में यह बात हमेशा बनी रहती थी कि जैसे ही मौका मिलेगा, मुझे कुरुक्षेत्र छोड़ना है। मैं अकसर सोचता था कि कुरुक्षेत्र की वैदिक नदी सरस्वती तो कब की सूख चुकी है, और शायद उसी के साथ यहाँ से साहित्य-कला की देवी भी पलायन कर गई हैं! प्रकाश से दोस्ती के बाद मेरा मन यहाँ थमने लगा। और फिर स्थितियाँ ऐसी बनती गईं कि मैं कुरुक्षेत्र का होकर ही रह गया!

प्रकाश के लिए कुरुक्षेत्र के वे दिन गहन आकांक्षा से भरे जीवन के सबसे उत्तेजक दिन थे। उन्होंने फिजिक्स में एम.एस-सी. करने के बाद हिंदी में एम.ए. किया था और उन्हें यहाँ पी-एच. डी. करने के लिए यूजीसी की फेलोशिप मिली थी। उन्होंने बताया था कि जब वे यहाँ इंटरव्यू देने आए थे तो यूनिवर्सिटी का कैंपस देखकर जैसे मोहाविष्ट से रह गए थे, और यहाँ रहकर रिसर्च करना उनके लिए एक बड़े सपने जैसा था। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय का विशाल कैंपस सचमुच है ही इतना खूबसूरत कि किसी का भी मन मोह ले।

अपने-अपने विभागों में रहने के अलावा हमारे पास जितना भी समय होता, हम साथ बिताते। उन्हीं दिनों यह भी सुखद संयोग रहा कि मेरे बड़े भाई और सत्तर के दशक के प्रसिद्ध कथाकार बल्लभ सिद्धार्थ दिल्ली आते हुए अकसर कुरुक्षेत्र के चक्कर लगाने लगे। फिर तो हम लोगों की जैसे मजलिस जम जाती। देर रात तक चर्चा करते और सुनते-सुनाते, बहसें करते और लड़ते!

कुरुक्षेत्र ने प्रकाश को बहुत कुछ दिया, लेकिन तकलीफ भी कम नहीं दी! वे प्रखर मेधावी तो हैं ही, शुरू से ही घनघोर और अनथक परिश्रमी भी हैं। जिस काम को करते हैं तो जुनून के साथ जुटते हैं। उन्हें उस समय न अपना होश रहता और और न ही उन्हें बाहरी किसी चीज की जरूरत रहती है। मेधा और परिश्रम का संयोग अपने रंग खिलाता ही है! वे दिन-रात अपनी रिसर्च में जुटे रहते। दिन-दिन भर लाइब्रेरी और विभाग में बैठकर किताबों में डूबे रहते। इससे जहाँ एक ओर विभाग में उनकी प्रतिष्ठा बढ़ रही थी, वहीं दूसरी ओर वे चालाकी और चापलूसी से आगे बढ़ने वाले शोध-छात्रों की ईर्ष्या और जलन के पात्र बनने लगे थे! 'तेरी कमीज, मेरी कमीज से उजली क्यों' वाला मामला था! ये लोग कोई भी मौका नहीं छोड़ना चाहते थे, और मौका उन्हें मिल भी गया।

प्रकाश के शोध निदेशक थे हिंदी विभाग के अध्यक्ष डॉ. रामेश्वरलाल खंडेलवाल 'तरुण'। उन्हीं दिनों उनका नया कविता संग्रह 'आँधी और चाँदनी' प्रकाशित होकर आया, जिसे उनके सभी शोधछात्रों ने पढ़ा और जाहिर है, खूब जमकर सराहा। मगर प्रकाश ने सभी शोधछात्रों के सामने (शायद मेरे लिए प्रेमातिरेक की किसी झोंक में आकर!) कह दिया कि "जेनुइन कवि खंडेलवाल जी नहीं, ब्रजेश भाई हैं। इसलिए अमर कवि के नाते ही देखना हो तो अगर खंडेलवाल जी मेरे आगे आकर खड़े हों तो शायद मैं उनके लिए खड़ा न होऊँ...पर ब्रजेश भाई आएँ तो मैं जरूर खड़े होकर उनका स्वागत करूँगा। ब्रजेश मुझे कहीं ज्यादा बड़े कवि लगते हैं।" वहाँ बैठे एक शोधछात्र ने, जो खंडेलवाल जी के घरेलू काम सलटाने की वजह से यहाँ तक पहुँचा था, जाकर चुगली कर दी। ऐसी बात कोई भी सत्ताधीश कैसे सहन कर सकता है!

उसी समय हिंदी विभाग में वार्षिक शोध संगोष्ठी हुई, जिसके लिए कवि भाई ने बहुत परिश्रम से एक शोधपत्र लिखा। यद्यपि खंडेलवाल जी अस्वस्थता की वजह से संगोष्ठी के सत्र में उपस्थित नहीं रह सके, किंतु जब प्रकाश ने अपना शोधपत्र संगोष्ठी में पढ़ा तो सबने उसकी बेहद तारीफ की और मुख्य वक्ता विजयेंद्र स्नातक ने तो यहाँ तक कहा कि "मेरी समझ में नहीं

आ रहा है कि मैं अब क्या बोलूँ? क्योंकि जो कुछ मैं बोलने के लिए आया था, वह सब तो मुझसे पहले इस युवक ने कह दिया है!"

इतनी तारीफ न तो सब्जी-भाजी लाने वाले उस शोधछात्र को पची और न ही विभाग के एक रीडर को, जो प्रकाश से एक अन्य कारण से चिढ़ते थे। दोनों ने जाकर विभागाध्यक्ष के कान भरे कि यह कल का लड़का (या शायद लौंडा ही कहा हो!) चंद्रप्रकाश तो बड़ा घमंडी हो गया है! इसने अपने शोधपत्र में डॉ. नगेंद्र जी के कथन का उल्लेख करते हुए उनके नाम के साथ आदरसूचक 'डॉक्टर' और 'जी' न लगाकर सिर्फ नगेंद्र लिखा है! मजे की बात यह है कि प्रकाश का यह शोधपत्र विभागाध्यक्ष पहले देख चुके थे और तब उन्हें कुछ भी आपत्तिजनक नहीं लगा था। किंतु इन दोनों की बात से उनका दिमाग फिर गया। भरे तो वे तबसे ही बैठे थे जबसे उन्होंने एक अदना कवि के साथ अपनी तुलना की बात सुनी थी!

जब प्रकाश विभागाध्यक्ष के स्वास्थ्य का हालचाल लेने उनके घर गए तो उस समय उनके साथ विभाग की दो-तीन शोध छात्राएँ भी थीं। प्रकाश ने हालचाल लेने के लिए कुछ बोला ही था कि विभागाध्यक्ष (जी!) फट पड़े, "मुझे तुमसे ऐसी उम्मीद न थी! अपने से बड़ों का सम्मान न करना बहुत ही घटिया और बेहूदी बात है! मैं इसे बिल्कुल भी बरदाश्त नहीं कर सकता!"

नगेंद्र जी वाली बात की ओट तो उनके पास थी ही! प्रकाश ने उन्हें लाख समझाना चाहा कि "जब किसी का सम्मान सर्वसिद्ध हो तो उसके नाम के आगे 'डॉक्टर' या 'श्री' और बाद में 'जी' लगाना अनावश्यक हो जाते हैं", और शोध के क्षेत्र में तो यह आम चलन है। लेकिन उन्होंने एक न सुनी। बल्कि अंत में लगभग धमकी देते हुए गुस्से से कहा, "अब मुझे भी सोचना पड़ेगा कि तुम्हारे साथ क्या व्यवहार किया जाए?" अपने साथियों के सामने इस घोर अपमान को प्रकाश ने खून के घूँट की तरह पिया और बहुत ही व्यथित और खिन्नमन हॉस्टल लौटे!

प्रकाश की संवेदनशीलता की कोई सीमा नहीं है! अपनों के लिए मैंने उन्हें शिशु की तरह फफक-फफककर रोते हुए देखा है। कायर और ढोंगियों के लिए उनके मन में इतनी वितृष्णा, गुस्सा और नफरत है कि उसका छोर ढूँढ़ना नामुमकिन है! उनके भीतर बेबाकी इतनी है कि बगैर परिणाम की चिंता किए वे बड़े-से-बड़े तुर्रमखाँ से भी भिड़ सकते हैं! विभागाध्यक्ष की तानाशाही के खिलाफ कुछ न कुछ तो होना ही था। उनका गुस्सा एक कविता के रूप में फूटा। लावा उगलती हुई एक शानदार कविता 'भीतर का आदमी'! कविता में आज की क्रूरताओं के कई गहन बिंब थे। कविता में पहला दृश्य अफसर की क्रूरता का था। कविता के 'अफसर' से खंडेलवाल का चित्र साफ उभरता था।

प्रकाश ने मुझे जब यह कविता सुनाई तो मैं झूम उठा। उठकर मैंने उन्हें गले लगाया और मेरे मुँह से निकला, "मान गया तुम्हें, कवि भाई! तुमने कविता को पा लिया है!" उस दिन के बाद से ही मैंने उन्हें 'कवि भाई' कहना शुरू कर दिया! अब हमेशा के लिए वे मेरे और पत्नी के 'प्रकाश मनु' नहीं, 'कवि भाई' हैं, और बच्चों के 'कवि चाचा'!

पर अभी तो कविता को अपनी सही जगह तक पहुँचना था! उन्हीं दिनों अखिल भारतीय भाषा परिषद का अधिवेशन कुरुक्षेत्र में हुआ, जिसके अंतिम दिन शाम को कवि सम्मेलन आयोजित था। इसमें प्रकाश को भी कविता पढ़ने का न्योता मिला था। रामेश्वरलाल खंडेलवाल 'तरुण', बहैसियत प्रख्यात कवि, बढ़िया सिल्क के कुरता और धोती में मंच पर मंद-मंद मुसकराते हुए विराजमान थे! यूनिवर्सिटी कॉलेज का वह हॉल लगभग पूरा भरा था। हजार श्रोता से कम नहीं रहे होंगे। जब मंच से कविता पढ़ने के लिए प्रकाश का नाम पुकारा गया, तब वे श्रोताओं के बीच मेरे बगल में बैठे थे और एकदम नॉर्मल थे। किंतु मैंने देखा कि मंच पर चढ़ते-चढ़ते उनका चेहरा बदल चुका था! उन्होंने भरपूर गुस्से और वितृष्णा के साथ खड़े होकर अपनी लंबी कविता 'भीतर का आदमी' पूरे जुनून के साथ सुनाई।

वैसे भी प्रकाश कविता के अद्‌भुत वाचक हैं, फिर आज तो मंद मुसकराहट के साथ वह 'अफसर' सामने ही बैठा था, जिसके लिए यह कविता लिखी गई थी। कविता पाठ के दौरान पूरा हॉल सन्नाटे के साथ एक ऐसी उत्तेजना से भर गया, जैसे सभी श्रोता साँस रोककर कविता सुन रहे हों! और कविता के खत्म होते ही तालियों की गड़गड़ाहट से हॉल बहुत देर तक गूँजता रहा। मैंने पचासों कवियों के कविता पाठ सुने हैं, लेकिन बगैर किसी अतिशयोक्ति के और बिना झिझके मैं कह सकता हूँ कि वह अद्वितीय और विलक्षण कविता पाठ था!

तालियों के रुकते ही प्रख्यात कवि जगदीश गुप्त, जो प्रथम पंक्ति में श्रोताओं के बीच बैठे थे, एकाएक मंच पर पहुँचे और माइक से बोले कि "अब मंच ने अपनी गरिमा पा ली है। अभी-अभी जिस युवक ने कविता पढ़ी, उसे सुनकर मुझे मुक्तिबोध की याद आ गई!" मेरे लिए देखने वाली बात यह थी कि इस बीच खंडेलवाल साहब की मुसकराहट लुप्त हो चुकी थी! वे कविता पाठ के दौरान और बाद में भी गुमसुम बैठे रहे, चुपचाप! उन्होंने उस समय या बाद में प्रकाश से इस कविता के बारे में कभी कोई बात नहीं की।

प्रकाश हारने वाले इनसान कभी नहीं थे! बगैर किसी की परवाह के वे अपने शोधकार्य में जुट गए और जो भी समय मिलता, उसमें हम मस्ती करते। अकसर कैंटीन के बाहर लॉन में बैठक जमती, जिसमें हिंदी विभाग के अन्य शोधछात्र हरपाल और सुनीता भी होती। कई बार प्रकाश के हाथ में जो भी किताब होती, उसमें से मनपसंद कविताएँ सुनाते, जिसे सुनने के लिए आसपास विद्यार्थियों का जमघट लग जाता और मुग्धभाव से सुनता।

शाम को कभी-कभी हम ब्रह्मसरोवर तक घूमने निकल जाते। जब तक आप इस सरोवर को स्वयं न देख लें, तब तक आप इसके अद्‌भुत सौंदर्य की कल्पना नहीं कर सकते! इतना सुंदर और बड़ा सरोवर मैंने दूसरा नहीं देखा। यह दो भागों में विभक्त था, जिसके आधे हिस्से में तब कमल खिले रहते थे और आधे में असंख्य प्रवासी पक्षी किल्लोल करते रहते थे। कई बार शुक्ला जी, विनोदशंकर और पी.डी. शर्मा जैसे अन्य मित्र भी इस पदयात्रा में शामिल होते। खूब हँसी-ठट्ठा होता! यहाँ मैं प्रकाश की हँसी को जरूर दर्ज करना चाहता हूँ। तनिक भी अतिरंजना के बिना मैं यह कहूँगा कि प्रकाश जैसी जोरदार, खुली हुई निर्मल हँसी मैंने दूसरी नहीं देखी।

हँसी जो सिर्फ और सिर्फ अंदर की सघन निष्कलुषता से उपजती है! हँसी, जो आपको भीतर तक सराबोर कर दे! हँसी, जो कोई भी कभी नहीं भूल पाए!

'एक बात और जिसे मैं नहीं भूल पाता, वह है उनके जीवन की सादगी और उदारता। इस आत्मपरक स्वार्थी समय में ऐसे गुण दिनोंदिन दुर्लभ होते जा रहे हैं। प्रकाश को अपने लिए बहुत ही कम चीजों की आवश्यकता पड़ती है। कपड़े भी वे बहुत कम रखते हैं। कुरुक्षेत्र में उन्होंने घर से दिए गए ढेर सारे कपड़े हॉस्टल के सफाईकर्मी और विभाग के पियोन में बाँट दिए थे। इसके बाद से उन्होंने अपने लिए कभी कपड़ों का अंबार नहीं लगने दिया। किसी की शादी-ब्याह या अन्य समारोह में शामिल होने के लिए भी उन्हें अलग से कोई विशेष कपड़ों की जरूरत नहीं लगती। उनकी माँ अकसर पिन्नियाँ और एक बड़े डिब्बे में घी भेजती थीं, वह भी वे इन्हीं लोगों को समर्पित होता था। उनके साथ रहते हुए कैंटीन में या अन्य जगह जब तक कोई जेब से पैसे निकालता, वे दे चुके होते। जब भी मैं फरीदाबाद गया, तो उन्होंने कभी जेब में हाथ नहीं डालने दिया। अगर मैं जिद करता तो वे आहत होते। दरअसल, जेब में पड़ा हुआ पैसा उन्हें काटता है!

जिन दिनों प्रकाश कुरुक्षेत्र में थे, उन्हीं दिनों हम दोनों को अपनी शादियाँ करनी पड़ीं, हालाँकि हम दोनों ही आर्थिक तंगी से जूझ रहे थे। मुझे शादी के लिए अपने घर मऊरानीपुर जाना था और शादी के लिए कपड़े भी सिलवाने थे। जाड़ों के दिन थे तो कुछ अन्य दोस्तों से उधार लेकर एक कोट-पेंट के कपड़े का जुगाड़ हो गया। शर्ट का कपड़ा प्रकाश ने अपनी तमाम दिक्कतों के बावजूद भेंट किया! उन दिनों कुरुक्षेत्र में कोई ढंग के दर्जी नहीं थे, इसलिए हम दोनों कपड़े दर्जी को देने अंबाला गए और देर तक मटरगश्ती कर आधी रात को लौटे। नए जूतों के पैसों का हिसाब नहीं जम पाया तो नए कपड़ों और पुराने घिसे हुए जूतों में शादी कराकर छह दिन बाद मैं अकेला वापस कुरुक्षेत्र आ गया।

वे मेरे लिए बेहद तनाव भरे दिन थे। पत्नी को कुरुक्षेत्र न ला पाने के अलावा मैं एक और झंझट में फँस गया। हॉस्टल वार्डन से किसी बात को लेकर कहा-सुनी हो गई तो उसने मुझे हॉस्टल खाली करने का फरमान सुना दिया। अब मैं जाऊँ तो कहाँ जाऊँ? ऐसे संकट में भी प्रकाश के अलावा और कौन साथ दे सकता था! उन्होंने बगैर हॉस्टल वार्डन की परवाह किए मुझे अपने कमरे में कई महीने तक अतिथि बनाकर रखा!

गरमी की छुट्टियाँ के बाद मैंने पत्नी को कुरुक्षेत्र लाने का निश्चय किया। प्रकाश के साथ शहर में कई दिनों की तलाश के बाद बैंक कॉलोनी में एक कमरा तय कर लिया। किराया तो हैसियत से ज्यादा था, लेकिन कमरा साफ-सुथरा था। पत्नी के आगमन की पूर्व तैयारी में प्रकाश का पूरा साथ रहा। हमने एक बत्ती वाला नूतन स्टोव, बालटी, मग्गा, घड़ा, चार प्लेटें, छह गिलास तथा दो चारपाइयाँ खरीदीं। चारपाई में निवाड़ लगाने का काम भी दोनों की मदद से संपन्न हुआ! बाद में जश्न के रूप में बैठकर कहीं चाय पी गई और तय किया कि गृहस्थी की बाकी चीजों की खरीदने का गौरव पत्नी को ही प्रदान किया जाए! छुट्टियों के बाद मैं पत्नी रमा को लेकर लौटा और हमारी गाड़ी चल पड़ी।

लौटकर आया तो प्रकाश ने सुनीता के साथ अपने प्रेम होने की सूचना दी। सुनीता भी हिंदी विभाग में शोधछात्र थीं और दोनों एक-दूसरे को खूब चाहने लगे थे। दोनों दिन भर अपने शोध के काम लगे रहते, फिर शाम को ब्रह्मसरोवर पर घूमते। वे दोनों चाहते थे कि जल्दी से शोध पूरी हो, नौकरी लगे फिर शादी करें। लेकिन सुनीता के घर परिस्थितियाँ बिगड़ रहीं थीं। दोनों को लगा कि अगर शादी करनी है, तो अभी करना पड़ेगी। सुनीता ने अपने परिवार के नाम एक चिट्ठी लिखी कि "अब मेरे 'राम' चंदर हैं, और मैं इनके साथ शादी करने जा रही हूँ।" चिट्ठी उसने सिगड़ी के पास यह सोचकर रखी थी कि जब माँ खाना पकाने के यहाँ आएँगी तो चिट्ठी देख लेगीं। लेकिन खाना बनने के समय से पूर्व ही इतनी देर तक सुनीता के न पहुँचने से परिवारी जन चिंता में पड़ गए और विभाग में पता करने आए। जब विभाग से यह जानकारी मिली कि चंद्रप्रकाश और सुनीता दोनों गायब हैं तो तहलका मच गया! इस बीच सुनीता को लेकर प्रकाश अपने घर शिकोहाबाद पहुँच गए।

माँ ने दोनों को आशीष दिया। शिकोहाबाद के बाद वे दोनों पास के एक कस्बे भोगाँव चले गए, जहाँ प्रकाश के बड़े भाई स्टेशन मास्टर थे। दो-एक दिनों में ही सुनीता के परिवारी जन ढूँढ़ते-ढूँढ़ते भोगाँव पहुँच गए और तय हुआ कि लौटकर दोनों का विधिवत-विवाह कर दिया जाएगा। इस सारे घटनाक्रम की मुझे कोई जानकारी नहीं थी, क्योंकि मैं कुरुक्षेत्र में नहीं था। उन दिनों मैं अपने विभाग के अन्य सहकर्मियों के साथ पुरातात्त्विक उत्खनन के लिए पास के गाँव दौलतपुर में तंबू लगाकर रह रहा था। प्रकाश अचानक दौलतपुर कैंप में पहुँचे और सारा किस्सा सुनाने के बाद बोले कि "कल शादी है, चलो।"

शादी में मेरे अलावा दो अन्य मित्र और भोगाँव से आए उनके बड़े भाई तथा सुनीता के परिवार के लोग शामिल हुए। मेरी पत्नी रमा भी नहीं थी, उसे मैं अपने कैंप की व्यस्तता की वजह से पहले ही झाँसी भेज चुका था। शादी के बाद नवबधू को रिक्शे पर बैठाकर प्रकाश मेरे घर आए, और इस तरह एक सुनसान घर में नवबधू का 'अनोखा' स्वागत हुआ!

'शादी के बाद तो प्रकाश और सुनीता पर विपत्तियों का जैसे पहाड़ टूट पड़ा! इस विवाह से विभागाध्यक्ष बुरी तरह नाराज हो गए। बावजूद इसके कि विभागाध्यक्ष 'प्रेम और सौंदर्य' के ख्यात कवि थे और उन्होंने स्वयं प्रेमविवाह किया था, वे इन दोनों के विवाह को सहन नहीं कर सके। उन्होंने प्रकाश और सुनीता को 'विभागीय अनुशासन तोड़ने के जुर्म में' स्कॉलरशिप बंद करने का नोटिस दे दिया। इस नोटिस का प्रकाश ने भरपूर उत्तर दिया। अंततः स्कॉलरशिप तो बंद नहीं हुई, मगर दोनों के रिसर्च गाइड बदलकर एक प्राध्यापकों के निर्देशन में शोध पूरी करने की अनुमति दी गई, जिनके बारे कुछ भी कहना शब्दों की फिजूलखर्ची होगी! इन तमाम काली सुरंगों से गुजरते हुए प्रकाश ने किसी तरह अपनी थीसिस पूरी करके जमा कर दी। थीसिस जमा होते ही उनकी फेलोशिप बंद हो गई। और अब सिर्फ सुनीता की स्कॉलरशिप बची थी!

इन दिनों ये लोग शहर में एक कमरा किराए पर लेकर रह रहे थे। सुनीता अपनी थीसिस पूरी करने में जुटी थी और प्रकाश नौकरी की तलाश में! ऐसी मानसिक त्रासदियों और

जीवन-संघर्ष से जूझते हुए जब कोई भी टूटकर ढह सकता है, तब भी इन दोनों ने बगैर किसी समझौते के खुद को बचाए रखा! प्रेम करना आग के दरिया से गुजरना है। मैंने इस युगल को सचमुच आग का दरिया पार करते देखा है!

एक मामले में प्रकाश बहुत भाग्यशाली हैं कि उन्हें सुनीता जैसी जीवनसंगिनी मिली। सुनीता जैसी पारदर्शी, जलबिंब-सी पावन महिला मैंने दूसरी नहीं देखी! प्रकाश के लिए उनका ऐसा अनुपम समर्पण है कि आपको किसी पौराणिक पवित्र कथा की याद दिला दे। दोनों एक सुर और एक ताल! जीवन में न कोई बनावट और न सजावट!

जैसे-तैसे दोनों की थीसिस पूरी हुई, मगर डिग्री अवार्ड होने में साल लग गया। फिर सहारनपुर, पानीपत और मलोट में टेंपरेरी लेक्चररशिप का सिलसिला चला। प्रकाश अद्‌भुत टीचर हैं। जहाँ कहीं भी वे रहे, विद्यार्थियों के बीच जल्दी ही सर्वाधिक लोकप्रिय अध्यापक बन गए। पढ़ाने का अंदाज ऐसा कि क्लास के बाहर भी सुनने के लिए अन्य विभागों के विद्यार्थियों की भीड़ जमा हो जाती थी। वे किसी भी विश्वविद्यालय में प्राध्यापक होते, तो यह उस विश्वविद्यालय का गौरव होता, मगर बाद में उन्होंने पत्रकारिता का जीवन चुना और दिल्ली पहुँच गए। जीवनयापन के लिए वे भले ही पत्रकारिता में रहे हों, मगर जिया उन्होंने साहित्य ही!

एक बात का उल्लेख किए बगैर मेरी बात पूरी नहीं होगी। प्रकाश को अपने कविता संग्रह 'छूटता हुआ घर' पर प्रथम गिरिजाकुमार माथुर स्मृति पुरस्कार मिला। उन्होंने तय किया कि इससे मिलने वाली धनराशि का उपयोग वे स्वयं के लिए नहीं करेंगे, बल्कि इस राशि से वे उन कवियों का संग्रह प्रकाशित करेंगे, जो उनके अनुसार अच्छा लिख रहे हैं, मगर कहीं प्रकाशित न हो पाने के कारण गुमनामी के अँधेरे में खो जाते हैं! उन्होंने बारह कवियों की कविताओं का चुनाव किया। इन बारह में एक मैं भी था। यह संग्रह 'सदी के आखिरी दौर में' के नाम से प्रकाशित हुआ।

इसे प्रकाश ने संपादित किया और भूमिका रामदरश मिश्र जी ने लिखी। संग्रह की उत्साहवर्द्धक और प्रशंसात्मक समीक्षाएँ छपीं। लगातार कम होती संवेदनाओं के इस समय में, जब स्थापित लेखक नवागत लेखकों की रचनाओं को पढ़ना तो दूर, उनसे बात करना भी पसंद नहीं करते, प्रकाश का नए लेखकों के लिए ऐसा भाव अपने आप में एक उदाहरण है।

असली कलाकार की अपनी कलात्मकता तभी तक बची रहती है, जब तक वह खुद को ईर्ष्या-द्वेष, लालच, प्रतियोगिता की तड़प और दूसरों के लिए किसी भी तरह की दुर्भावना से बचाए रख सकता है। कवि भाई ने इस आपाधापी से भरी और लगातार संवेदनहीन होती जाती दुनिया में बहुत ही निष्कलुष जीवन जिया है। फरीदाबाद में जब-जब मैं उनके घर गया हूँ, मुझे हर बार किसी आश्रम में पहुँच जाने का अहसास हुआ है, जहाँ अपने नितांत एकाकीपन में धूनी रमाए कोई ऋषि बगैर एक पल भी खोए निरंतर अपने काम में लगा है! वैसे भी कवि भाई के लिए लिखना साँस लेने जैसा है!

आज मैं कवि भाई के साथ कुरुक्षेत्र में बिताए दिनों की जुगाली कर रहा हूँ। पहली मुलाकात के समय विनोद कुमार शुक्ल की एक कविता के शीर्षक के बहाने जो बात मैंने सिर्फ मजाक में सोची थी, वह एक गंभीर सच्चाई बनने वाली है, यह मैंने कभी नहीं सोचा था! कवि भाई मेरे जीवन में सचमुच विचार की तरह आए, एक गहन-गंभीर और सार्थक विचार की तरह! मैंने एक बार उनसे कहा था, "कवि भाई! मैं तुम्हारे जैसा जीवन जीना चाहता हूँ।" लेकिन मुझमें न तो इतना जुनून था, न साहस!

उन दिनों की हजार दिक्कतों और त्रासद स्थितियों के बावजूद उनके साथ बिताए दिनों को मैं यहाँ के सबसे अच्छे दिनों के रूप में याद करता हूँ। कुरुक्षेत्र उन दिनों बहुत कम आबादी वाला एक छोटा-सा शहर था, जिसने अपने पंख अभी फैलाने शुरू ही किए थे और जहाँ एक खास तरह की ग्रामीण रम्यता बची हुई थी! विश्वविद्यालय के कैंपस की धूप-छाँह हर प्रहर में मोहित करती थी और चमत्कृत भी। हम दोनों ने जैसा भी जीवन जिया, उसकी नींव तो कुरुक्षेत्र में ही पड़ी थी! कवि भाई के साथ रहते हुए मुझे हर समय एक ऐसी ऊष्मा की उपस्थिति का एहसास होता था, जो सिर्फ एक परम ईमानदार व्यक्ति के भीतर सतत् सुलगती आग से आती है। एकदम बच्चों की-सी हँसी की खिलखिलाहट और उनके निष्कपट व्यवहार की अनुगूँजें अब मेरी स्मृति का स्थायी हिस्सा हैं।'

मुझे खुशी है कि कुरुक्षेत्र से जाने के बाद भी कवि भाई चुप नहीं बैठे। उनकी बेचैनी लगातार उन्हें एक के बाद एक सर्जनात्मक गतिविधियों में लगाए रही। शुरू में उन्होंने जमकर कविताएँ लिखीं। उनके कविता संकलन 'छूटता हुआ घर' को प्रथम गिरिजाकुमार माथुर स्मृति पुरस्कार मिला, तो उनसे ज्यादा मैंने खुशी महसूस की। लगा, कुरुक्षेत्र में जो जीवन उन्होंने जिया, उसी की परिणित उनका यह कविता संकलन है, जिसने अंततः साहित्य जगत में अपनी उपस्थिति दर्ज की।

फिर कवि भाई कहानी और उपन्यासों की ओर मुड़े। उनकी आत्मकथात्मक कहानियों का अंदाज कुछ अलग ही है। ऐसे ही एक के बाद एक उनके तीन उपन्यास आए, 'यह जो दिल्ली है', 'कथा सर्कस' और 'पापा के जाने के बाद', जिनकी खासी चर्चा हुई। खासकर पत्रकारिता जगत पर लिखे गए उनके उपन्यास 'यह जो दिल्ली है' को तो अब भी लोग ढूँढ़कर पढ़ना चाहते हैं। ऐसे ही 'कथा सर्कस' एक ईमानदार लेखक की तकलीफों पर लिखा गया कोई छह सौ पृष्ठों का उपन्यास है। हिंदुस्तान टाइम्स की बाल पत्रिका 'नंदन' में काम करने के साथ-साथ, इतनी कम अवधि में ये तीन उपन्यास उन्होंने लिखे, यह कम अचंभित करने वाली बात नहीं है।

इतना ही नहीं, उन्होंने अपने गुरु देवेंद्र सत्यार्थी, रामविलास शर्मा, शैलेश मटियानी, विष्णु खरे समेत कई बड़े साहित्यकारों से जो अंतरंग बातचीत की, उसे भुलाया नहीं जा सकता। इनमें विष्णु खरे से लिया गया उनका लंबा इंटरव्यू 'पहल' में छपा था और आज भी लोग उसे याद करते हैं। आलोचना और साहित्य के इतिहास लेखन में भी उनका काम कुछ अलग तरह का है। फिर बच्चों के लिए तो उन्होंने बहुत जमकर लिखा है। बच्चों के लिए लिखी गई उनकी किताबें सौ से

अधिक हैं, जिनमें बाल उपन्यास 'एक था ठुनठुनिया' भी है, जिसे साहित्य अकादेमी का पहला बाल साहित्य पुरस्कार मिला है।

इधर कवि भाई अपनी आत्मकथा लिखने में जुटे हैं, जो चार खंडों में सामने आएगी। इसका पहला खंड 'मेरी आत्मकथा रास्ते और पगडंडियाँ' छपकर आ गया है, जिसने बहुतों का ध्यान आकर्षित किया है। यह पाठकों को लीन कर देने वाली बड़ी रोचक आत्मकथा है, जिसे एक बार पढ़ना शुरू करने के बाद छोड़ पाना कठिन है।

हिंदी साहित्य में लेखकों ने अपनी आत्मकथाएँ कम ही लिखी हैं। दरअसल, आत्मकथा लिखना एक तरह के जोखिम और दुस्साहस का काम है। अगर आत्मकथा पूरी तरह ईमानदारी से न लिखी जाए तो वह आत्मप्रशंसात्मक प्रलाप बनकर रह जाती है। जबकि कवि भाई की आत्मकथा कई दृष्टियों से स्वागत योग्य है। लगभग चार सौ पृष्ठों में फैले इस भाग में उनकी बाल्यावस्था से लेकर किशोरावस्था तक का बड़ा रुचिकर ब्योरा है।

एक मध्यमवर्गीय भरा-पूरा परिवार, जो पाकिस्तान के एक गाँव में खुशहाली का जीवन व्यतीत कर रहा था, भारत के बँटवारे की भयानक त्रासदी का शिकार हुआ। लाखों लोगों की तरह यह परिवार भी अपनी जमीन और घरबार छोड़कर दर-दर की ठोकरें खाने के लिए विवश हुआ, और अमृतसर, अंबाला होता हुआ अंततः उत्तर प्रदेश के शिकोहाबाद पहुँचा। नौ भाई-बहनों के बीच आठवीं संतान के रूप में जनमे प्रकाश मनु ने बी.एस-सी. तक की पढ़ाई इसी छोटे-से शहर में पूरी की और बाद में पढ़ने के लिए आगरा और कुरुक्षेत्र चले गए। जीवनी के इस खंड में उनके परिवार के साथ-साथ इस शहर का भी इतिहास साथ-साथ चलता है।

पैंतीस अध्यायों में विभाजित यह पुस्तक एक स्वप्नदर्शी बालक के बाह्य और आंतरिक संसार का ऐसा लेखा-जोखा है जो यह बहुत स्पष्ट संकेत देता है कि प्रकाश मनु के लेखक बनने के रास्ते पर चलने की शुरूआत तो उनके बचपन से ही हो चुकी थी, यद्यपि परिवार में ऐसा कोई साहित्यिक वातावरण नहीं था। कृति को पढ़ते हुए यह सवाल बार-बार मन को कोंचता है कि आखिर वे कौन-सी रहस्यमय शक्तियाँ हैं, जो जीवनयापन की जद्दोजहद में लगे बहुत बड़े परिवार में से एक बालक को लेखक बनने की चुनती हैं।

यह प्रकाश मनु की अत्यंत गहन संवेदनशीलता और विलक्षण स्मरण-शक्ति का कमाल है कि उनके जेहन वे छोटी से छोटी घटनाएँ, अपने लघुतम ब्यौरे के साथ अब तक बची हुई हैं, जिन्होंने उनकी जिंदगी को सँवारने के लिए नींव का काम किया। कोई भी जीवन वृत्तांत किसी पाठक के लिए निरर्थक ही बना रहेगा, अगर उसमें लेखक के जीवन की घटनाओं के साथ उसके समय की धड़कन का स्वर समाविष्ट न किया गया हो। स्मृति में विगत को जाग्रत करना अपने भीतर खोए हुए समय को पुनः प्राप्त करने जैसा है। यह आत्मकथा आजादी के तुरंत बाद का एक ऐसा दस्तावेज है, जिसमें विभाजन की त्रासदी से जूझते परिवार की संघर्ष-गाथा है, परिवारी जनों की पारस्परिक आत्मीयता के अद्भुत दृश्य हैं, एक बढ़ते हुए बच्चे के आंतरिक संसार का ताप है और तत्कालीन समाज को समझने की कुंजी भी है।

पिछले कुछ वर्षों में संयुक्त परिवारों का छीजने और बिखरने का संकट बहुत तेजी से बढ़ा है। ऐसे में लेखक का अपने माता-पिता, भाई-बहनों और कुछ रिश्तेदारों का किंचित विस्तार, आदर और स्नेह से स्मरण करना इस बंजर समय में सुखद अनुभूति देता है। इन वृत्तांतों में माँ, पिता और एक भाई श्याम का स्मरण तो पाठक के भीतर एक अनूठी तरलता का संचार करता है। विशेषरूप से माँ का समुद्र की गहराई जैसा वात्सल्य बहुत कुशलता से चित्रित हुआ है। अत्यंत संवेदनशील, कुछ कर गुजरने के लिए हर समय राह तलाशते रहने वाला और अपनी हठ के लिए कुछ भी करने और सहने को तत्पर किशोर, प्रायः मस्तिष्क के बजाय भावना से संचालित होता है। और अगर बहुत छोटी उम्र में ही जीवन के आदर्श विवेकानंद जैसे महापुरुष बन चुके हों तो वह अपने लिए एक तरह के सम्मोहन का लोक रचने लगता है।

ऐसी ही किसी परिस्थिति से आविष्ट होकर किशोर प्रकाश ने घर से भाग जाने का निर्णय लिया, भागा भी, भिक्षा माँगकर पेट भरा और कई-कई मीलों तक पैदल चलता रहा। मगर अजस्र ममता से भरी माँ की निश्छल आँखों और उनके गहन दुख को याद करके वह लौट आया, और माँ के सीने से लगकर घंटों रोता रहा। संवेग, अनुभूति और संवेदनशीलता से परिपूर्ण इस घटना को इतनी कुशलता से उकेरा गया है कि वह किसी भी पाठक की आँखें नम कर देगा।

किसी व्यक्तित्व के निर्माण में मित्रों और कुछ शुरुआती अध्यापकों का योगदान बहुत महत्त्व रखता है। इस बात को रेखांकित करते हुए वे सभी मित्र और अध्यापक यहाँ उपस्थित हैं, जिन्होंने प्रकाश मनु को साधारण से विशेष बनने में गहराई से योगदान किया। परिस्थिति और भावना के चित्रण में अकथनीय ईमानदारी और सम्मोहन का अद्भुत मिश्रण यहाँ उल्लेखनीय है। यों तो लेखक ने सिर्फ उन अध्यापकों का ही स्मरण किया जिन्होंने उसे राह दिखाई, उसे प्रेम दिया और जिनके स्वयं के जीवन की सादगी और आध्यापकीय कुशलता की अमिट छाप बालक प्रकाश के जीवन पर पड़ी। लेकिन दो-एक ऐसे अध्यापकों का जिक्र भी है, जिनकी नकारात्मक सोच के आगे प्रकाश ने झुकने से इनकार कर दिया। जब किसी बात पर एक अध्यापक ने क्लास से सभी विद्यार्थियों को मुर्गा बनने की सजा सुनाई, तो प्रकाश मनु अकेले थे, जिन्होंने इससे इनकार कर दिया। और यह उस स्कूल के इतिहास में पहली बार था कि उस अड़ियल अध्यापक को भी झुकना पड़ा।

दरअसल, लेखक का मिजाज बचपन से ही एक ऐसे विद्रोही का है, जो न तो अन्याय करता है और न अन्याय सहता है। इसीलिए स्कूल के एक गलत निर्णय के खिलाफ उस शहर के स्कूल में पहली बार हड़ताल की गई, जिसकी अगुवाई प्रकाश ने की और स्कूल को निर्णय वापस लेने पर विवश किया। ये कुछ ऐसी घटनाएँ हैं, जिनकी अमिट छाप लेखक के व्यक्तित्व-निर्माण पर पड़ी। वस्तुतः इन सबके केंद्र में जीवन के साथ मूल्यवान अर्थवत्ता का जुड़ा रहना है।

बचपन के अनुभव बीत जरूर जाते हैं, मगर उनकी छुअन और सिहरन संवेदनशील व्यक्ति के मन में कभी धुँधली नहीं पड़ती। आत्मकथा के लेखन में रचनाकार की कुशलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह अपने बचपन की घटनाओं की शृंखला में संवेदना के आंतरिक प्रवाह को

पाठकों के लिए जीवंत बना पाने में कितना सक्षम है। बातें या घटनाएँ कितनी ही मामूली हों, परंतु महत्त्वपूर्ण यह है कि वे बाल्यमन को कैसे छूती हैं! जीवन की पक्षधरता में रचनाशीलता के अंकुरण की तलाश करता हुआ यह लेखक ऐसी ही तमाम घटनाओं को सँजोकर हमारे समक्ष रोचक शिल्प में परोसता है। उदाहरण के लिए कुछ अध्यायों के शीर्षकों का उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा, 'सर्दियों की धूप और तालाब', 'काठ की तख्ती, मिट्टी का बुदक्का', 'चम-चम सिक्के और मेवालाल की मिठाई', 'बचपन के खेलों का तिलिस्म', 'बिजली-एक जादुई शै', 'एक थी चींटी, एक थी फाख्ता', 'चीनी आक्रमण और घायल हिंदुस्तान का जज्बा', 'चश्मे वाला कुक्कू', 'चली-चली रे, मेरी साइकिल चली', 'जब मैं घर से भागा था' आदि-आदि।

ऐसा लगता है, जैसे लेखक पाठक का हाथ पकड़कर अध्याय-दर-अध्याय अपनी नई-नई संवादी कोठरियाँ खोलता चला जा रहा हो। यह एक बतरसी कथाकार द्वारा एक आत्मीय बातचीत जैसा है, जो एक भावुक और बेहद संवेदनशील बच्चे की बढ़ती हुई दुनिया का तिलिस्म खोलती चली जाती है और पाठक जाने-अनजाने इस बातचीत में शामिल होकर अपने बचपन की दुनिया में खोने लगता है।

यों तो हर रचना कृतिकार के जीवन से ही निकलती है, लेकिन आत्मकथा में तो वह सीधे-सीधे अपना जीवन ही लिखता है। आत्मकथा को लिखना 'खुद को जानना' है, अपने जीवन को समझने की एक दृष्टि विकसित करना है! रचनाकार का जीवन जितना प्रामाणिक, मूल्यवान और सच्चा होगा, रचना में उसकी अभिव्यक्ति उतनी ही प्रामाणिक और खरी होगी। इस दृष्टि से इस कृति का पढ़ना एक विरल सुख की तरह है।

अन्य पाठकों की तरह मुझे भी कवि भाई की आत्मकथा के अगले खंडों का इंतजार है। उनमें बेशक ऐसा बहुत कुछ होगा, जिसका खुद मैं साक्षी रहा हूँ। उम्मीद है, कवि भाई की आत्मकथा के बाकी तीनों खंड भी इतने ही पठनीय होंगे, जिनमें एक कसबाई बालक के लेखक होने की रोमांचक कथा सामने आएगी, उसके जीवन के सुख-दुख, कठिन संघर्ष और बहुत सी अनकही तकलीफें भी। कवि भाई जिस धुन से इस काम में लगे हैं, उससे लगता है कि हमें बहुत अधिक इंतजार नहीं करना पड़ेगा।

ब्रजेश कृष्ण, 1348, सेक्टर-5, कुरुक्षेत्र - 136118 (हरियाणा)
मो. : 94161-06707

✧ ✧ ✧

सतत बहता सोता

सूर्यनाथ सिंह

मनु जी मूलतः कथाकार हैं, इसलिए उनके अनुभव कथा के रूप में उतरते रहते हैं। पर उन्होंने अपने को सिर्फ कथा विधा तक सीमित नहीं रखा है। वे साहित्य के उन तमाम अनछुए या कमजोर पक्षों को समृद्ध करना चाहते हैं, जिन्हें या तो जान-बूझकर नजरअंदाज किया गया या अपेक्षित महत्त्व नहीं मिला है। वे चाहते तो कथा साहित्य तक अपने को सीमित रख सकते थे। उनके पास कथाओं की कमी नहीं है, पर जब उन्हें लगा कि साहित्यिक साक्षात्कार विधा की धारा सूखने लगी है, पत्रकारीय साक्षात्कारों के ताल-तलैया ही ज्यादा भरे-भरे दिखते हैं, तो उन्होंने लंबे साक्षात्कार लिए।

फिर उन्हें लगा कि बाल साहित्य पर अपेक्षित ध्यान नहीं दिया जाता, उसे दोयम दर्जे का माना जाता है, तो वे उसका महत्त्व स्थापित करने में जुट गए। मुख्यधारा कविता-कहानी को विश्राम दे दिया। न सिर्फ बच्चों के लिए कविता-कहानियाँ लिखने लगे, बल्कि बाल साहित्य का इतिहास लिखने की भी ठानी।

कई बार किसी के लिखे को पढ़कर हमारे भीतर उसके व्यक्तित्व को लेकर विपरीत धारणा भी बन जाती है। जैसे एक बार नामवर सिंह ने कहा था कि टालस्टाय से मिलने के बाद कोई यह नहीं कह सकता था यह व्यक्ति अपने लेखन में इतना बड़ा क्रांतिकारी हो सकता है। उसी तरह उनके लेखन को पढ़कर कोई अंदाजा नहीं लगा सकता कि उनका व्यक्तित्व इतना संत स्वभाव का हो सकता है। कुछ ऐसा ही घालमेल मेरे मन में भी था प्रकाश मनु को लेकर। उनकी कई रचनाएँ मैं पढ़ चुका था, खासकर 'यह जो दिल्ली' है। चूँकि उन दिनों मैंने दिल्ली प्रेस में नौकरी शुरू की थी, इसलिए 'यह जो दिल्ली है' पढ़कर मेरे भीतर एक अजीब तरह का भय और गुस्सा था।

मैंने दफ्तर में साथियों से इस उपन्यास पर चर्चा की, तो पता चला कि मनु जी हिंदुस्तान टाइम्स में काम करते हैं। मैंने मिलने की इच्छा जाहिर की, तो हमारे सहकर्मी जयप्रकाश पांडेय उनसे मिलवाने को उत्साहित हो उठे। मेरे भीतर मनु जी की छवि किसी दाढ़ी-बाल बढ़ाए, सिगरेट फूँकते, आँखों में सूनापन और आक्रोश का मिला-जुला भाव भरे क्रांतिकारी व्यक्ति की थी। फिर एक दिन हम गए उनसे मिलने। उन्हें देखते ही मेरे भीतर की छवि खंडित हो गई। सौम्य, स्नेहिल, सहास व्यक्तित्व। नरम आवाज में बोलने वाले। हर

बात पर हँसने वाले। तपाक से गले मिलने वाले।...मैंने पहली मुलाकात में ही उन्हें यह बात बता दी थी कि आपको पढ़कर मेरे भीतर आपकी जो छवि बनी थी, वह टूट गई। वे जोर से हँसे और हँसते रहे।

उसके बाद से जब मौका मिलता, मैं उनसे मिलने पहुँच जाता। आज की तरह मोबाइल फोन तो दूर, लैंडलाइन का भी चलन बहुत नहीं था। लोग तब चिट्ठियाँ लिखा करते थे। इसलिए पहले से समय लेकर किसी से मिलने का चलन भी बहुत नहीं था। न आज की तरह अखबारों के दफ्तरों में यह चलन शुरू हुआ था कि किसी कर्मी से मिलने कोई आए, तो सुरक्षाकर्मी पहले उससे पूछेगा कि मिलने वाले को भेजूँ या न भेजूँ, फिर भेजेगा। तब खुला दरबार होते थे अखबारों के दफ्तर। जब जो चाहे मिलने चले जाए, जब तक मर्जी बैठे, बतियाए। कोई रोक-टोक नहीं। आजकल तो आगंतुक को मिलने के लिए कर्मी की सीट तक नहीं भेजा जाता। मिलने के लिए एक अलग जगह बना दी गई है, जहाँ बहुत देर तक बैठकर गपशप करना संभव नहीं होता। कई दफ्तरों में तो सुना है कि आगंतुकों के आने और जाने का समय भी दर्ज होता है।

तब हर कर्मी के पास मिलने वालों के लिए दो-चार अतिरिक्त कुर्सियाँ रखी होती थीं। अखबारों के दफ्तरों में विद्वानों-लेखकों की आवाजाही बनी रहती थी। तब अखबारों के दफ्तर बहस-मुबाहिशों के अड्डे भी हुआ करते थे। इसलिए तब मनु जी से मिलने जाते वक्त इस बात की चिंता नहीं होती थी कि हम जाएँ और उनके काम का हर्जा हो, तो ठीक न होगा। बस, जब मन में हुलास बँधती, स्कूटर उनके दफ्तर की तरफ मोड़ देते। उन्हें भी कभी यह कहते नहीं सुना कि आज काम कुछ अधिक है, निपटा लेते हैं, फिर बात करते हैं या किसी और दिन आएँ तो बात हो पाएगी। जाते, जितनी देर संभव होता बैठते, कुछ और लोग आ जुटते, तो उनसे भी संपर्क हो जाता।

मनु जी से मिलने जाने का एक सुख यह भी था कि वहाँ लेखक उनसे मिलने आते रहते थे, उनसे मुलाकातें भी हो जाती थीं। जब भी उनसे मिलते कुछ नया और अमिट लेकर ही लौटते। इस तरह मिलते-जुलते हमारा अटूट संबंध बना। वह गाढ़ा ही होता गया। वे मुझमें अपने छोटे भाई जैसा कुछ तत्त्व पाते हैं। उसी तरह स्नेह देते, मेरे बच्चों और पत्नी को प्यार देते हैं। अब हमारे बच्चों के ताऊ जी हैं। वे बार-बार कहते हैं कि सूर्य भाई, मैं आपमें अपने को देखता हूँ।

तब मैं कविताएँ लिखता था और अटूट विश्वास था कि कविता ही साहित्य की दीर्घकालिक विधा है। गद्य की उम्र लंबी नहीं होती। मगर मनु जी से मिला तो उन्होंने समझाया कि आज गद्य का ही जमाना है, उसके बिना काम नहीं चल सकता। हालाँकि पत्रकारिता में नौकरी पाई थी, तो वहाँ गद्य ही बरतता था, पर रचनात्मक लेखन के तौर पर उससे दूरी ही बनाए चल रहा था। फिर उन्होंने कहा कि बच्चों के लिए भी कुछ लिखना चाहिए। बच्चों के लिए! यह तो मेरे लिए और विचित्र बात थी। कभी सोचा ही नहीं था कि बच्चों के लिए भी कुछ लिखना चाहिए। उन्होंने याद दिलाया कि तमाम बड़े रचनाकारों ने बच्चों के लिए लिखा है। फिर सीधे प्रस्ताव रख दिया कि 'नंदन' के लिए कहानी लिखिए।

उनका वह प्रस्ताव जम गया दिमाग में। उनका कहा टाल भी सकता था, पर टाल न सका। उसी पल से दिमाग में घुमड़ना शुरू हो गया था कि बच्चों के लिए कहानी क्या हो सकती है। दिमाग को खूब वर्जिश कराई, पर उसकी पकड़ में कोई बात न आई। तब मुझे लगा कि बच्चों के लिए लिखना आसान बात नहीं। खैर, मनु जी के आदेश का पालन करना था, इसलिए बचपन में सुनी राजा-रानी की एक कहानी को तोड़-मरोड़कर लिख दिया। पक्का यकीन था कि वह कहानी उन्हें पसंद नहीं आएगी और अंततः रद्दी की टोकरी में जाएगी या खेद सहित वापस आएगी। पर हैरानी की वह 'नंदन' में छपी भी। छपने के बाद उसे पढ़ा तो राज खुला। तब समझ में आया कि जाना तो उसे रद्दी की टोकरी में ही चाहिए था, पर चूँकि मनु जी ने मेरा हौसला बढ़ाने के लिए लिखवाया था और वह मेरी पहली कहानी थी, इसलिए उन्होंने उसे सुधारने-सँवारने में अच्छी-खासी मेहनत की थी।

इस तरह न जाने कितने नए लेखक उन्होंने बनाए होंगे, उन्हें प्रोत्साहित किया होगा। उसके बाद से तो वे मेरे पीछे ही पड़े रहते। अब तो बहुत दिन हो गए, कोई कहानी लिखनी चाहिए यह उनका तकाजा करने का तरीका होता था। हर महीने कोई न कोई कहानी माँग लेते। बड़ी मुश्किल। खैर, जैसे-तैसे जोड़-तोड़ करके कहानी बना देता, वह 'नंदन' में छप भी जाती। इस तरह बच्चों के लिए लिखने का सिलसिला बना।

फिर तीनेक साल बाद एक दिन उन्होंने पूछा कि अब तो बीस-बाईस कहानियाँ हो गई होंगी? मैं हैरान। मैंने तो गिनी नहीं थीं कि कितनी कहानियाँ अब तक लिख चुका हूँ। अपनी छपी रचनाओं को सँभालकर रखने की आदत कभी रही नहीं, पर उनकी फोटोकॉपी थी। घर आकर देखा, तो सचमुच बीस के करीब कहानियाँ थीं। हैरान हुआ कि मनु जी को इस बात का अंदाजा था कि इतनी कहानियाँ लिख चुका हूँ। उन्हें बताया कि हाँ, बीस के करीब हैं। उन्होंने कहा कि एक संकलन तैयार कर दीजिए, एक प्रकाशक माँग रहा है। मैं सारा कुछ उठाकर उन्हें दे आया। उन्होंने उन कहानियों को क्रम दिया, उन्होंने ही संग्रह का नाम दिया और प्रकाशक को दे आए। इस तरह आत्माराम एंड संस से मेरी पहली किताब छपी, 'शेर सिंह को मिली कहानी' नाम से।

'मनु जी पूर्णकालिक रचनाकार हैं। किताबें ही उनका ओढ़ना-बिछौना हैं। बस, साहित्य में रमे रहने वाले। वे हर चीज में कोई न कोई रचना तलाश लेते हैं। उनका अनुभव-संसार बहुत विशाल है। स्मृति तो गजब की है। इतनी अद्भुत कि वे किसी का इंटरव्यू करके आते हैं और बिना किसी रिकार्डर की मदद के, बिना कुछ नोट किए, घर आकर पूरी की पूरी बातचीत जस का तस उतार देते हैं। उन्हें याद रहता है कि किसने किस किताब में क्या बात लिखी है। आप विषय बता दें, तो वे उससे संबंधित दस बातें, दस किताबों का संदर्भ वे दे देंगे। इसलिए कई बार जब कोई किसी शोध आदि के लिए, खासकर बाल साहित्य पर मुझसे कोई जानकारी लेना चाहता है, तो मैं चुपके से उसे मनु जी का नंबर दे देता हूँ। हो सकता है, कुछ लोग उनसे संपर्क करते होंगे, कुछ नहीं भी करते होंगे। जो करते होंगे, निस्संदेह बहुत कुछ पाते होंगे। यह तो तय है कि वे उन्हें कुछ रचनात्मक लेखन करने को भी उकसाते होंगे।

वे धुन के पक्के हैं। एक बार जो ठान लिया, बस रात-दिन उसी में लग जाते हैं। पहले वे कविताएँ लिखते थे, कहानियाँ और उपन्यास तो लिखे ही। फिर साक्षात्कार की धुन चढ़ी, तो ढेर सारे साक्षात्कार ले डाले। उनके साक्षात्कार लेने का तरीका अखबारी नहीं होता। कई-कई बैठकें करके बातचीत का सिलसिला बनाए रखना और जब तक पूरी तरह संतुष्ट न हो जाएँ, बातचीत करते रहना। इसलिए उनके साक्षात्कार बहुत लंबे हैं और कई तो पूरी किताब के आकार के हैं। देवेंद्र सत्यार्थी और विष्णु खरे से उनकी बातचीत ऐसी ही है। देवेंद्र सत्यार्थी से प्रभावित हुए, तो उन्हें पूरी तरह खँगाल मारा। उनके व्यक्तित्व का हर पहलू सामने ले आए। उन पर लगातार लिखते रहे। विष्णु खरे से कई दिन तक लगातार बात करते रहे और फिर करीब छह सौ पृष्ठों की किताब तैयार कर दी। विष्णु खरे जैसे कुछ सख्त और तुनकमिजाज माने जाने वाले रचनाकार को जब वे इतनी देर साधकर बातचीत के लिए बिठा सके, तो निस्संदेह यह मनु जी के व्यक्तित्व का ही प्रभाव था।

दरअसल, रचनाकारों से उनका संपर्क रस्मी या महज लेखक बिरादरी का होने के नाते नहीं बनता। वे जिनके संपर्क में आते हैं, उन्हें अपना बना लेते और उनके हो जाते हैं। इस तरह मनु जी ने अपना एक विशाल लेखक परिवार बनाया है, जिसके हर सदस्य का सुख-दुख उनका अपना भी सुख-दुख होता है। किसी की उपलब्धि पर प्रसन्न होते हैं, तो उनके रोम-रोम में वह प्रसन्नता प्रस्फुटित होने लगती है। किसी के दुख से दुखी होते हैं, तो दुख उनकी आँखों से झरने लगता है। जैसे लगता है, वह उन्हीं के साथ घटित हुआ है। ऐसी करुणा कम लोगों में देखने को मिलती है।

वे लंबे समय से फरीदाबाद में रहते हैं। दिल्ली के कनॉट प्लेस में कस्तूरबा गाँधी रोड पर, हिंदुस्तान टाइम्स कार्यालय में नौकरी करते थे। तब मेट्रो और बसों की इतनी सुविधा नहीं थी। दिल्ली वालों को फरीदाबाद जाने के बारे में सोचना पड़ता था। पर मनु जी वहाँ से रोज आते-जाते थे। उनके घर से फरीदाबाद का रेलवे स्टेशन खासा दूर है। सुबह-सवेरे स्टेशन जाना और फिर ट्रेन पकड़कर दिल्ली आना। शिवाजी ब्रिज स्टेशन पर उतरकर दफ्तर पहुँचना और समय पर पहुँचना, साधारण काम नहीं था। पर वे पूरी नौकरी आते-जाते रहे। शाम को थककर देर रात तक घर पहुँचना। ऐसे में हैरानी की बात है कि वे कैसे इतना कुछ लिख-पढ़ लेते थे। तो, इसका एक तरीका उन्होंने निकाला था। रास्ते में भी आते-जाते वे पढ़ते रहते थे। बैठने को सीट मिले न मिले, वे भीड़ की रेलम-पेल, धक्का-मुक्की में भी खड़े-खड़े किताबें पढ़ते रहते थे। सुबह चार बजे जाग जाना और फिर लिखना-पढ़ना करना, फिर तैयार होकर दफ्तर पहुँचना। इस तरह उन्होंने अपनी दिनचर्या बना रखी थी।

वे पंजाब के एक कॉलेज की नौकरी छोड़कर दिल्ली आए थे और पत्रकारिता करने लगे थे। मगर दिल्ली ने उन्हें खूब रगड़ा। दिल्ली को नरम चारा मिल जाए, तो वह उसे इसी तरह चबाती है। मगर मनु जी ने भी दिल्ली को खूब छकाया। उन्होंने उसे खुद को चबाने नहीं दिया। वे उसके दाँत खट्टे करने में लगे रहे। आने-जाने, रहने और दफ्तर की तकलीफों को कभी सिर पर चढ़ने

ही नहीं दिया। दफ्तरी तनाव कम न थे, पर वे उन्हें झटककर दूर करते और किताब में सिर गोत लेते रहे। बड़ी गाड़ी, बड़ा घर, रुतबा वगैरह की आकांक्षा कभी पाली नहीं। किताबों का शौक पाले रहे, इसलिए दिल कमजोर नहीं हुआ, ईमान डोला नहीं और इस तरह दिल्ली की रगड़-घिस्स से वे ऊबे-थके नहीं। और मजबूत होते गए।

इस संघर्ष में उनका साथ दिया उनकी पत्नी सुनीता जी ने। दिल्ली की रेलम-पेल में उन्हें जब-जब कहीं चोट लगती रही, वे उस पर भावनात्मक मरहम लगाती रहीं और शाबाशी देती रहीं कि ऐसी चोट से क्या घबराना, ऐसी चोटें तो लगती रहती हैं, उठो, चलो। शायद सुनीता जी ऐसी न होतीं, तो मनु जी कहीं कमजोर जरूर पड़ गए होते, शायद दिल्ली के दाँत उन्हें चबाने में कुछ हद तक कामयाब भी हो गए होते। इसी तरह उनकी दोनों बच्चियाँ ऋचा और नन्ही ने उन्हें सँभाले रखा।

उनके पास इन तमाम संघर्षों के इतने सारे खट्टे-मीठे, कड़वे अनुभव हैं कि उनके भीतर से बार-बार फूट-फूट पड़ना चाहते हैं। मनु जी मूलतः कथाकार हैं, इसलिए उनके अनुभव कथा के रूप में उतरते रहते हैं। पर उन्होंने अपने को सिर्फ कथा विधा तक सीमित नहीं रखा है। वे साहित्य के उन तमाम अनछुए या कमजोर पक्षों को समृद्ध करना चाहते हैं, जिन्हें या तो जान-बूझकर नजरअंदाज किया गया या अपेक्षित महत्त्व नहीं मिला है। वे चाहते तो कथा साहित्य तक अपने को सीमित रख सकते थे। उनके पास कथाओं की कमी नहीं है, पर जब उन्हें लगा कि साहित्यिक साक्षात्कार विधा की धारा सूखने लगी है, पत्रकारीय साक्षात्कारों के ताल-तलैया ही ज्यादा भरे-भरे दिखते हैं, तो उन्होंने लंबे साक्षात्कार लिए।

फिर उन्हें लगा कि बाल साहित्य पर अपेक्षित ध्यान नहीं दिया जाता, उसे दोयम दर्जे का माना जाता है, तो वे उसका महत्त्व स्थापित करने में जुट गए। मुख्यधारा कविता-कहानी को विश्राम दे दिया। न सिर्फ बच्चों के लिए कविता-कहानियाँ लिखने लगे, बल्कि बाल साहित्य का इतिहास लिखने की भी ठानी। पहले बाल कविता का इतिहास लिखा, फिर बाल साहित्य का इतिहास। साहित्य का इतिहास लिखना कितना श्रमसाध्य काम है, इसका अंदाजा लगाया जा सकता है। शुद्ध क्लर्की वाला काम है। किताबों का क्रम तैयार करना, उन्हें कालखंड के हिसाब से सहेजते जाना। और जब यह काम कोई रचनात्मक व्यक्ति करने की ठाने, तो उसकी मुश्किलें कई गुना बढ़ जाती हैं।

पर मनु जी ने उस ऊबाऊपन से बचने का रास्ता निकाला और बाल साहित्य के इतिहास को एक रचनात्मक आयाम दिया। जिज्ञासु विद्यार्थी की तरह बाल साहित्य की तमाम किताबें जुटाते, पढ़ते, उन पर नोट्स लेते रहे और फिर इतिहास रच दिया। ऐसे समय में, जब इतिहास लिखने का बीड़ा दो-चार लोग मिलकर भी उठाने से डरते हैं, मनु जी ने अकेले वह काम किया। हैरानी होती है, उनकी लगन और मेहनत देखकर।

मनु जी के लेखन का एक बड़ा गुण है रमकर लिखना। वे बड़े इत्मिनान से लिखते हैं। अंत पर पहुँचने की कोई जल्दी नहीं। हर घटना को खूब विस्तार से आकार देते हैं, उसके हर पल को उकेरना चाहते हैं। उसके हर रंग-रेशे को उभारना चाहते हैं। यह गुण कम लोगों में है। ज्यादातर लोगों को फटाफट निष्कर्ष पर पहुँचने की जल्दी होती है। मगर मनु जी रचना को उसका स्वाभाविक आकार देते हैं। उसे बहने देते हैं, जहाँ तक बह सकती है। इस तरह उनकी रचनाओं की कद-काठी अपेक्षाकृत बड़ी होती है।

इतने व्यापक अनुभव और पढ़ाई-लिखाई के बावजूद उनमें जिज्ञासु भाव बना रहता है। हर समय वे एक प्रकार के कुतूहल से भरे होते हैं। ज्ञान से उनकी गर्दन झुकी या अकड़ी नहीं है, चेहरे पर दर्प नहीं पसरा है। जिज्ञासु भाव ने उन्हें कोमल और सरल बनाए रखा है। एक नन्हे बच्चे से भी वे घंटों बहुत कुछ जानने-समझने का प्रयास करते देखे जा सकते हैं। बच्चा समझता है कि अंकल तो बिल्कुल बुद्धू हैं, उन्हें कितनी सारी बातें नहीं पता, पर वास्तव में मनु जी का यह गुण है कि वे हर किसी को अपने से ऊपर उठने देते हैं। उसे बौना साबित करने का प्रयास नहीं करते। उसके छोटेपन का अहसास नहीं होने देते।

मेरे संग-साथ के अनेक अनुभव हैं। वे रास्ता चलते किसी साधारण से व्यक्ति से भी रूककर इस तरह तन्मयता से बात करने लगेंगे और फिर भूल जाएँगे कि उन्हें कहीं जाना भी है या उनके साथ चल रहे व्यक्ति को कहीं पहुँचने की जल्दी है। वे जब तक उस व्यक्ति से हिल-मिलकर पूरी जानकारी नहीं ले लेंगे, आगे नहीं बढ़ेंगे। यही वजह है कि वे आज भी अपने पड़ोस की मजदूर बस्ती के बच्चों को पढ़ाने निकल पड़ते हैं। पत्रकारिता में रिटायरमेंट के बाद किल्लत में जीवन गुजारना पड़ता है, पैसों की तंगी बनी रहती है, पर उन्होंने इसकी परवाह नहीं की। पुरस्कार में मिले पैसे गरीब बस्ती के बच्चों की पढ़ाई पर खर्च कर देते हैं।

मुझसे उनका स्नेह कुछ इस तरह का है कि कई बार जब वे कुछ लिख रहे होते हैं, तो मुझसे चर्चा करेंगे, कुछ जानने, राय लेने की गरज से भी। जबकि वे जानते होंगे कि मैं उन्हें राय देने की हैसियत नहीं रखता। इसी तरह दूसरे लोगों से भी जिज्ञासु भाव से पूछने-जानने का प्रयास करते होंगे। न जाने कितने लोगों को उन्होंने सराहा होगा, लिखने को प्रेरित किया होगा, शाबाशी दी होगी। मुझे तो बीच-बीच में फोन करके किसी मुनीम की तरह पूछ लेते हैं कि आजकल क्या लिख रहे हैं। मैं कहूँगा कि कुछ नहीं, तो वे तरह-तरह से उकसाएँगे। शायद ऐसा कोई इंजेक्शन होता, जिसे लगाने से मैं लिखने लगता, तो वे मुझे लगाते ही रहते। ऐसा बहुतों के साथ करते हैं। लिखने को उकसाना और फिर उसके लिखे को पढ़कर राय देना, आज कौन करता है?

इसी दिल्ली में बहुत सारे ऐसे रचनाकार मिल जाएँगे, जो चार कविताएँ-कहानियाँ छप जाएँ और कुछ सराहना भी मिल जाए, तो वे अकड़े फिरने लगते हैं। दूसरों को तो पढ़ना ही छोड़ देते हैं। उनका समाज सिर्फ उन्हीं लोगों तक सिमटकर रह जाता है, जो उनकी रचनाएँ पढ़ते और सराहते हैं। मगर मनु जी बिल्कुल नए रचनाकारों को भी कुछ इस तरह सराहते और प्रोत्साहित करते हैं

कि वह लिखने को दोगुनी ऊर्जा से भर उठता है। केवल मुँहदेखी या प्रशंसा कर देने भर के लिए नहीं, बल्कि उनकी रचनाओं को पूरा पढ़ने के बाद, उसके एक-एक पहलू पर बात करते हैं।

वे खुद चौबीस में से कम से कम चौदह घंटे पढ़ने-लिखने में ही लगे रहते हैं। उनके पास अपनी कई योजनाएँ हैं, फिर भी कोई रचनाकार फोन करता और उनसे अपनी रचना पढ़कर राय देने को कहता है, तो कभी कोई बहाना, कोई आनाकानी नहीं करते। एक-दो दिन का समय जरूर माँग लेते हैं। फिर पढ़ने के बाद खुद फोन करते हैं और विस्तार से उसकी रचना पर बात करते हैं। जहाँ कुछ कमियाँ हैं, उन्हें भी रेखांकित करते हैं। इस तरह मनु जी नए रचनाकारों के लिए एक संस्थान की तरह हैं। न जाने कितने रचनाकारों ने उनसे कितना कुछ सीखा होगा। मैंने तो बहुत कुछ सीखा है। जब भी कुछ लिखता हूँ, उनको न पढ़ा लूँ, तब तक छपने को नहीं भेजता।

उनमें रचनात्मकता सतत बहती रहती है। साहित्य के अलावा शायद वे कुछ और सोचते ही नहीं। समाज की सेवा उन्हें साहित्य के जरिए ही संभव जान पड़ती है। उसी से वे रस खींचते हैं, ताकत पाते हैं। नहीं तो उनके जीवन में कड़वे अनुभवों की कमी नहीं है। दुत्कार और अवहेलना भी कम नहीं मिली है, मगर उन पर उन्होंने ध्यान नहीं दिया। जो कुछ श्रेष्ठ मिला, उसी को अपना बनाया। अवहेलित करने वालों के श्रेष्ठ को ही याद करते रहे। सतत लिखने-पढ़ने और लंबी-लंबी बैठकों की वजह से उनके स्वास्थ्य पर भी असर पड़ता रहा, पर उसकी भी परवाह नहीं। कभी किसी नकारात्मक चीज को उन्होंने अपने ऊपर चिपकने नहीं दिया, फटकने नहीं दिया। इसलिए उनकी ऊर्जा बनी रही।

अब वे अपनी आत्मकथा लिख रहे हैं। पहला खंड प्रकाशित होकर आ चुका है, अगले दो खंड छपकर आने वाले हैं। पहले खंड में उनके बचपन और किशोरावस्था की बातें हैं, बाकी दो खंड जीवन के अगले दो पड़ावों पर हैं। उम्मीद है, उनके जीवन से जुड़ी बहुत सारी बातें भी हमें पढ़ने को मिलेंगी, जिनके बारे में उन्होंने कभी किसी से नहीं कहा। उनके बचपन के प्रसंग बड़े मार्मिक हैं। वे संघर्ष भरे दिन थे। परिवार बँटवारे के बाद भरा-पूरा, समृद्ध साम्राज्य छोड़कर भारत आ गया था और फिर शिकोहाबाद में फिर से अपनी जड़ें रोपी थी। उसमें बालक प्रकाश मनु (चंद्र प्रकाश विग) पला-बढ़ा और रचनात्मक आयाम गह सका था। उसके बाद का जीवन भी कई उतार-चढ़ावों से गुजरा है। वह सब अगले खंडों में आएगा, तो मनु जी के जीवन की कई अनजानी परतें खुलेंगी।

हमें गर्व है कि हम उनके सान्निध्य में हैं।

सूर्यनाथ सिंह, 181, नेवल टेक्निकल आफीसर्स सोसाइटी, प्लॉट नं. 3-ए, सेक्टर-22,
द्वारका, दिल्ली-77, मो. : 09958044433

प्रकाश मनु स्मृतियाँ जो कभी विस्मृत नहीं होंगी

डॉ. शकुंतला कालरा

डॉ. प्रकाश मनु साहित्य के क्षेत्र में कर्मयोगी पुरुष हैं। विनम्रता, सहजता, सरलता, मधुरता, निरभिमानता, जिनके व्यक्तित्व के गहने हैं। पाठकों का प्यार उनकी सबसे बड़ी पूँजी है। अमूल्य और कभी खत्म न होने वाले इस धन से ही वे अपने को दुनिया का सबसे बड़ा बादशाह मानते हैं। अपने प्रदेय के कारण भले ही वे बड़े-बड़े सम्मानों एवं पुरस्कारों से अलंकृत हुए हैं, किंतु सच्चा पुरस्कार वे पाठकों के अपार स्नेह को ही मानते हैं। पाठकों के स्नेह ने उन्हें आकंठ तृप्त कर दिया है। शालीनता भरी भाषा में वे इतना ही कहते हैं कि, "मैं तो बस साहित्य का एक तपस्वी हूँ और अपनी साधना में लीन हूँ। यही मेरा तप है। इसी में जीता हूँ, इसी के सुख में तल्लीन रहता हूँ। मेरी कोई इच्छा अपूर्ण नहीं रही है।" सच, मैंने उन्हें सदा आप्तकाम, निष्काम और मात्र सरस्वती की साधना करते पाया है। वे भले ही तुलसीदास की भाँति अपने को साधारण मानते हों, 'कवित्त-बिबेक एक नहिं मोरे। सत्य कहूँ लिखि कागद कोरे।'

प्रकाश मनु जी पर जब संस्मरण लिखने बैठी हूँ तो पलक झपकते ही सारा अतीत वर्तमान हो गया है। कई पिछली स्मृतियों की रील मस्तिष्क के फलक पर बड़ी तेजी से चलने लगी है। जो लोग मनु जी को जानते हैं, उन्हें पता है कि वे एक फकीर स्वभाव के संत रचनाकार हैं। वे सरस्वती के वरद् पुत्र हैं। प्रकाश मनु जी के साथ मेरा परिचय लगभग अट्ठाईस वर्ष पुराना है। याद आ रहा है, सन् 1996 में हिंदुस्तान टाइम्स के कार्यालय में मनु जी से मेरी पहली मुलाकात हुई थी।

उस दिन मैं पहली बार हिंदुस्तान टाइम्स के कार्यालय में 'समाज कल्याण' पत्रिका के संपादन से जुड़े वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. रत्नलाल शर्मा जी के साथ जयप्रकाश भारती जी से मिलने आई थी। डॉ. रत्नलाल शर्मा जी ने भारती जी से मेरा परिचय कराते हुए कहा, "यह डॉ. शकुंतला कालरा जी हैं, जिनकी मैंने आपसे फोन पर चर्चा की थी कि वे मैत्रेयी कॉलेज में रीडर हैं। आजकल भक्तिकाल पर शोध कर रही हैं। वेद, पुराण, रामायण आदि इनके विशेष अध्ययन के क्षेत्र हैं। एम.ए. में पढ़ाती भी रामकाव्य हैं। प्राचीन कथा विशेषांक के लिए मैंने इनसे कहानी लिखने के लिए कहा है।"

काफी देर तक जयप्रकाश भारती जी के साथ रामकथा के कुछ अश्रुत विषयों पर चर्चा की। कॉफी पीने के साथ-साथ कुछ साहित्य-चर्चा से इतर इधर-उधर की बातें भी होती रहीं। उन्होंने हमें 'नंदन' पत्रिका का नवीनतम अंक दिया। रत्नलाल शर्मा जी स्वयं एक अच्छे बाल साहित्यकार थे। 'नंदन' पत्रिका में उनकी कहानियाँ-कविताएँ अकसर छपती रहती थीं। वे भारती जी के अच्छे मित्रों में से थे। वे अकसर डॉ. राष्ट्रबंधु जी के साथ उनसे मिलने 'नंदन' कार्यालय आया करते थे। मैं आज पहली बार आई थी।

उसी समय भारती जी के पास मनु जी उस महीने की पत्रिका से जुड़ी कुछ जरूरी जानकारी लेने आए। भारती जी ने उनसे मेरा परिचय कराया, "ये प्रकाश मनु जी हैं। हमारे विभाग में काफी समय से हैं। बाल साहित्य के गंभीर अध्येयता हैं। 'नंदन' में छपने के लिए आने वाली कविताएँ ये ही देखते हैं और ये डॉ. शकुंतला कालरा जी हैं। मैत्रेयी कॉलेज में रीडर हैं।" परस्पर अभिवादन के साथ हुई यह हमारी छोटी-सी मुलाकात थी।

भारती जी ने हमें बताया कि मनु जी यहाँ 'नंदन' पत्रिका की कविताओं का चयन ही नहीं करते, वरन् स्वयं भी बहुत अच्छे कवि हैं। कविता, कहानी, नाटक आदि सभी विधाओं में लिखते हैं। एक सहज, सौम्य व्यक्तित्व जिसके चेहरे पर भी बच्चों जैसी सहज मुसकान थी। अपनी पहली ही दृष्टि में उन्होंने मुझे बड़ा प्रभावित किया।

मनु जी अपने केबिन में वापस चले गए और हम थोड़ी देर और भारती जी के कमरे में बैठे रहे। मैं भारती जी से भी पहली बार मिली थी। डॉ. रत्नलाल शर्मा जी ने मेरा परिचय भारती से भी उसी दिन कराया था। भारती जी ने मुझसे पूछा कि मैं क्या लिखती हूँ? मैंने उनसे कहा फिलहाल तो मैं केवल साहित्यिक आलेख लिखती हूँ। बाल साहित्य तो मैंने कभी नहीं लिखा। बड़ों के साहित्य की तरह बाल साहित्य की भी अपनी एक अलग और विस्तृत दुनिया है, मैं तब तक यह भी नहीं जानती थी। हिंदी साहित्य के इतिहास में बाल साहित्य की अलग से चर्चा भी कहीं नहीं हुई थी। हाँ, बचपन में पत्र-पत्रिकाओं में कविता, कहानी आदि पढ़ती अवश्य थी। मुझे तो उस समय लोककथाएँ बहुत अच्छी लगती थीं। भारत के हर प्रदेश की लोककथाएँ तकरीबन पढ़ रखी थीं। खैर, उस दिन की इतनी ही मुलाकात रही।

लेकिन बाहर आकर शर्मा जी मनु जी के केबिन की ओर मुड़ गए। वे जानते थे कि मनु जी कहाँ बैठते हैं। शर्मा जी ने उन्हें 'नंदन' पत्रिका में छपने के लिए अपनी दो कविताएँ दीं। भारती जी रचना को लेखक से लेकर अपने पास नहीं रखते थे, अंतिम चयन के लिए उसे संबद्ध व्यक्ति के पास ही भेजते थे। यों अंतिम निर्णय उन्हीं का होता था। भारती जी का अपने स्टॉफ पर पूरा विश्वास था। मनु जी हों या देवेंद्र कुमार जी हों, जिस रचना को ये स्वीकृत करते थे, वही रचना फाइनल होती थी और 'नंदन' में छपती थी। प्रकाश मनु जी की काव्य-प्रतिभा और उनकी अच्छी

कविता की पहचान के वे कायल थे। यहाँ तक कि अपनी लिखी कविताओं को भी वे मनु जी को पढ़ने के लिए देकर उनकी राय लेते थे।

मनु जी ने शर्मा जी की दोनों रचनाएँ रख लीं और हमें बैठने के लिए कहा। हम बैठ गए। मुझसे मनु जी ने पूछा कि क्या मैं भी बाल कविताएँ लिखती हूँ? मैंने कहा, "नहीं, अभी तक तो नहीं लिखीं!" इस पर उन्होंने कहा, "कोई बात नहीं, अब लिखना शुरू कर दीजिए।"

बस, उम्र से छोटे होने पर भी मुझे उनका आशीर्वाद मिल गया। कुछ समय बाद मैं सचमुच बाल कविता लिखने लगी। शुरुआत बाल कहानी से की। फिर तो अकसर उनसे मुलाकात होती। जब-जब 'नंदन' कार्यालय जाती, मनु जी से जरूर मिलती।

'नंदन' कार्यालय के अतिरिक्त प्रकाश मनु जी के घर फरीदाबाद जाना तो मेरे लिए अत्यंत सुखद एवं आह्लदाक अनुभूति थी। मनु जी के घर सुनीता जी के हाथ के गरम-गरम पराँठों का नाश्ता कैसे भूल सकती हूँ। शलभ जी तब अपने बृहत् बाल कविता संकलन 'बचपन एक समंदर' पर काम कर रहे थे। वे मनु जी से विचार-विमर्श के लिए उनके पास आया करते थे और एक-दो दिन ठहरते भी थे।

उस समय शलभ जी मनु जी के घर आए हुए थे। उन्होंने मुझे फोन किया कि आप भी यहाँ आ जाएँ। सुनीता जी से मिलिए और उनके हाथ के गरम-गरम पराँठों के नाश्ते का आनंद लीजिए। मनु जी ने शलभ जी के हाथ से फोन लेकर बड़े स्नेह से कहा, "शकुंतला जी, शलभ जी ठीक कह रहे हैं। सुनीता जी भी आप से मिलकर बहुत खुश होंगी। आप कल सुबह आ जाइए और नाश्ता हमारे साथ कीजिए।"

बाल साहित्य के मूक तपस्वी की तपःस्थली देखने की प्रबल इच्छा मुझमें शलभ जी बहुत समय पहले ही जगा चुके थे। मैंने मनु जी से सविनय कहा, "मैं आपको रात तक बताऊँगी।" असल में पारिवारिक दायित्व के कारण मैं कभी कोई कार्यक्रम अचानक नहीं बनाती थी और न आने का वायदा कर पाती थी। मेरे छोटे बेटे विभु का स्वास्थ्य ठीक नहीं था। इसलिए मैं उसकी सुविधा के अनुसार, उससे पूछकर कहीं आने-जाने का कार्यक्रम बनाती थी।

मैंने विभु को फरीदाबाद जाने की बात बताई, तो उसने मुझे इजाजत दे दी। बोला, "आप जल्दी जाना और जल्दी वापस आ जाना।"

मैंने ड्राइवर को सुबह छह बजे बुलाया। सुबह सड़कें बिल्कुल खाली थीं। दिल्ली में ट्रैफिक की वजह से अकसर जाम में फँसने का खतरा रहता है। पर मैं बड़े आराम से आठ बजे फरीदाबाद पहुँच गई। चलने से पहले मैंने फोन कर दिया था। मकान ढूँढ़ने में मुझे कोई दिक्कत नहीं हुई, क्योंकि मनु जी ने हर तरह से आस-पास का हवाला देकर समझा दिया था।

वहाँ पहुँचकर मैंने गेट के बाहर लगी घंटी बजाई। गेट सुनीता जी ने ही खोला। आँगन में ही नेह भरी आँखों और प्रेम पगे बोलों के साथ सुनीता जी ने मुझे अपनी स्नेहिल बाँहों में भर लिया और अंदर उस कमरे में ले आई, जहाँ मनु जी और शलभ जी मेरा इंतजार कर रहे थे। बाल साहित्य के मूक तपस्वी की तपःस्थली देखी, जहाँ मनु जी बैठकर 'बचपन एक समंदर' की पांडुलिपि पर शलभ जी को अपने कुछ सुझाव दे रहे थे। मनु जी स्वयं तो बाल साहित्य के संवर्धन में वर्षों से जुटे ही हैं, इस क्षेत्र में आगे आने के लिए दूसरे साहित्यकारों को भी प्रेरित करते हैं। उन्हें समय देते हैं।

इस बीच सुनीता जी हमें नाश्ते के लिए बुलाने आईं। नौ बजे सुनीता जी ने हमें दही के साथ अपने हाथों के बने आलू के गरम-गरम पराँठों का नाश्ता कराया। मेजबानी तो कोई सुनीता जी से सीखे। भोजन सिर्फ परोसना नहीं होता, बल्कि वह मन से, प्रेम से खिलाना होता है। ताकि भूख न होने पर भी सामने वाले को भूख लग जाए।

मैंने नाश्ता करके मनु जी की घरेलू लाइब्रेरी देखी। बुकशेल्फ में करीने से सजी किताबें। लाइब्रेरी क्या थी, 'सरस्वती का मंदिर' था। मनु जी तब 'हिंदी बाल साहित्य का इतिहास' लिख रहे थे। ढेरों किताबें थीं। लगभग हर लेखक की सभी किताबें थीं। वे पलंग पर बैठकर लिखते थे। ऊपर एक ऊँची, बड़ी-सी लकड़ी की चौकी रख लेते थे। उस पर कागज या पैड रखकर लिखते थे। पलंग पर विषय से जुड़ी ढेर-सी किताबें कुछ खुली, कुछ बंद पड़ी थीं। गद्य-पद्य, नाटक, कहानी, उपन्यास, समालोचना आदि विविध विधाओं से हिंदी बाल साहित्य को समृद्ध करने वाले वरिष्ठ साहित्यकार का साहित्य जिन्होंने नजदीक से देखा है, वे जानते हैं कि उन्होंने सारा जीवन सादगी से रहकर, पूरी क्षमता के साथ काम करने में गुजार दिया। यही उनकी जिंदगी है।

मनु जी ने मुझे अपनी कई किताबें दीं। लगभग हर विधा की किताबें। किताबें देखकर हृदय गद्गद हो उठा। मनु जी की अधिकांश किताबें जो मेरे पास हैं, वे सब उनके द्वारा ही दी हुई हैं। एक बहुत बड़ा बैग सुनीता जी ने किताबों के लिए दिया और उसमें मैं बड़े आदर के साथ उन्हें भरकर ले आई। वे पुस्तकें मेरे लिए धरोहर बन गईं। ऐसे ही विष्णु प्रभाकर जी भी अपने हाथों से लिखकर अपनी पुस्तकें देते थे।

मुझे वापस समय पर घर लौटना था। मैं दोपहर एक बजे तक घर पहुँच जाना चाहती थी। सुनीता जी को अपने मायके कुरुक्षेत्र जाना था। शलभ जी को भी सहारनपुर वापस जाना था। दोनों को कश्मीरी गेट अंतर्राज्यीय बस टर्मिनल से बस लेनी थी। वे दोनों भी मेरे साथ थे। तीनों फरीदाबाद से ग्यारह बजे चल पड़े। मैंने दोनों को बस अड्डे छोड़ा और डेढ़ बजे घर पहुँच गई। सुनीता जी का स्नेह पाकर परिवार जैसा आत्मिक सुख मिला। उस आत्मीयता की शीतल पावन धारा से एक अपूर्व स्फूर्ति तथा प्रेरणा लेकर मैं वापस अपने घर लौटी। मुलाकात चंद घंटों की थी, लेकिन स्मृतियाँ दीर्घजीवी, जो हमेशा के लिए हृदय-पटल पर अंकित हैं।

मनु जी वर्षों 'नंदन' से जुड़े रहे और सेवानिवृत्ति के कुछ समय बाद प्रभात प्रकाशन की पत्रिका 'साहित्य-अमृत' के संयुक्त संपादक बन गए। मेरा दो बार अंसारी रोड के कार्यालय में भी जाना हुआ। जब भी गई, मनु जी को अपने काम में डूबा पाया। 'साहित्य अमृत' के बाल साहित्य विशेषांक के लिए उन्होंने मुझसे मेरा संस्मरण माँगा, जो 'किताब बचपन की' पुस्तक में छपा था। मैंने अपना संस्मरण उन्हें दे दिया। उन्हें मेरे बचपन के संस्मरण बहुत पसंद थे। जब भी उन्हें मौका मिलता, वे मेरे इस संस्मरण की चर्चा अवश्य करते थे।

'साहित्य अमृत' का वह बाल विशेषांक अद्‌भुत था। फिर एक बार उन्होंने मुझसे यात्रा-संस्मरण देने के लिए कहा। 'पृथ्वी का स्वर्ग : मॉरिशस' यह संस्मरण भी मैं स्वयं उन्हें वहाँ देकर आई थी। तब मेरे पास मेल की सुविधा नहीं थी। जहाँ भी रचना भेजनी होती, टाइप की हुई रचना ही भेजती थी। मनु जी रचनाकारों से स्वयं माँगकर रचना लेते थे। संपादक वाली अकड़ या अभिमान उनमें बिल्कुल नहीं था। डेढ़ वर्ष की अल्प अवधि में पत्रिका में काफी निखार आया।

लगभग डेढ़ वर्ष तक उन्होंने वहाँ कार्य किया। फिर उन्होंने उस कार्य-भार से स्वयं को मुक्त कर लिया और अपने उन अधूरे कार्यों को पूरा करने में जुट गए, जो संपादन की जिम्मेदारियों के कारण नहीं कर पा रहे थे। फरीदाबाद से दिल्ली आना-जाना ही अपने आप में थकाने वाली यात्रा है। अपना काम वह अति व्यस्तता और आने-जाने की थकावट के कारण नहीं कर पा रहे थे। इस कारण उन्होंने संयुक्त संपादक की जिम्मेदारी से अपने को मुक्त कर लिया। अब वे अपने लेखन की ओर पूरे उत्साह और लगन से जुट गए। प्रौढ़ साहित्य और बाल साहित्य दोनों में ही उनकी प्रचुर कृतियाँ एक-एक करके सामने आती गईं।

चाहे मनु जी से मुलाकातें बहुत कम हुईं, किंतु जो थोड़ी सी मुलाकातें हुईं, वे यादगार मुलाकातें बन गईं। मैं उस दिन को भी कैसे भूल सकती हूँ जब मैं दूसरी बार प्रकाश मनु जी के घर फरीदाबाद गई थी। दूसरी बार मनु जी के घर फरीदाबाद जाने का सुवअसर मुझे जुलाई 2019 में मिला। यह अवसर था प्रकाश मनु जी पर केंद्रित पत्रिका 'सृजन मूल्यांकन' के विशेषांक के लोकार्पण का। इस अवसर पर उनकी सद्य प्रकाशित पाँच पुस्तकों का भी लोकार्पण हुआ। ये पुस्तकें थीं - 'मेरी आत्मकथा : रास्ते और पगडंडियाँ', 'मेरे कुछ आत्म-संस्मरण', 'प्रकाश मनु के संपूर्ण बाल उपन्यास' (दो खंड), 'मेरी संपूर्ण बाल कविताएँ' और 'हिंदी बाल साहित्य के निर्माता'। साथ ही सुनीता जी की पुस्तक 'मेरी प्रतिनिधि बाल कहानियाँ' का भी लोकार्पण हुआ। इस अवसर पर श्याम सुशील, सूर्यनाथ सिंह, सुरेश्वर त्रिपाठी, ओमप्रकाश कश्यप, अशोक बैरागी, आनंद विश्वास, अखिलेश श्रीवास्तव 'चमन', महाबीर सरवर, आरती स्मित, अनामीशरण बबल आदि मौजूद थे।

पुस्तकों का लोकार्पण बड़ी सादगी के साथ अत्यंत पारिवारिक माहौल में हुआ। साथ ही एक अत्यंत आत्मीय संगोष्ठी हुई, जिसमें उपस्थित लेखकों ने मनु जी के व्यक्तित्व के कई अछूते

पहलुओं पर अपने विचार व्यक्त किए। प्रेम और सम्मान से पगे उनके उद्‌गार सुनकर लगा कि मनु जी की स्नेहशीलता, शालीनता, सहृदयता ने उन्हें अपने सभी साहित्यिक मित्रों के हृदय में विशेष स्थान दे रखा है।

सबसे महत्वपूर्ण था मनु जी पर केंद्रित 'सृजन-मूल्यांकन' पत्रिका के विशेषांक का लोकार्पण, जिसके संपादक और प्रकाशक अनामीशरण बबल जी एवं स्वामीशरण जी और अतिथि संपादक हैं श्याम सुशील जी। उसमें मनु जी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर लिखे विद्वानों एवं साहित्यकार मित्रों के आलेख थे, जो उनके साहित्य के विशद् अध्ययन, चिंतन-मनन के आधार पर लिखे गए थे। उसमें मेरा भी आलेख था, 'सृजन, आलोचना और इतिहास की त्रिवेणी'। प्रकाश मनु का सृजन-संसार बहुत ही व्यापक है। उन्होंने प्रौढ़ साहित्य और बाल साहित्य दोनों में खूब जमकर लिखा है और हर विधा में लिखा है। आलोचक के रूप में विशेषकर बाल साहित्य के क्षेत्र में वे अग्रणी है और इतिहासकार के रूप में तो बिल्कुल अकेले। पहले उन्होंने हिंदी बाल कविता का इतिहास लिखा और सन् 2018 में समग्र बाल साहित्य का इतिहास, 'हिंदी बाल साहित्य का इतिहास' शीर्षक से प्रभात प्रकाशन से एक वृहद् ग्रंथ के रूप में सामने आया। इससे पहले प्रारंभिक काल से वर्तमान तक बाल साहित्य के इतिहास लेखन का ऐसा कार्य कोई नहीं कर पाया। आने वाले समय में जो भी बाल साहित्य के इतिहास पर काम करेगा, यह ग्रंथ निश्चय ही उसके लिए अत्यंत मददगार होगा।

पुस्तकों के लोकार्पण और एक अनौपचारिक गोष्ठी के बाद दोपहर के भोजन का कार्यक्रम था। नाश्ता तो सबको आते ही करा दिया गया था। सुनीता जी और उनकी दोनों बेटियाँ ऋचा और अपर्णा ने सबके लिए खुद ही घर पर नाश्ता और खाना बनाया था। बाहर से कुछ भी नहीं मँगवाया गया था। सुनीता जी के हाथ का खाना खाकर हमें जो संतुष्टि मिली, वह भी भूलने लायक नहीं है। सबसे बड़ी बात यह थी कि उन्होंने सबको स्वयं ही खाना परोसा भी। उनके साथ उनकी मदद कर रहे थे उनकी बेटी अपर्णा और दामाद अमन जोशी। बड़ा अच्छा लगा उनके दामाद से मिलकर, जो सुनीता जी और मनु जी को माता-पिता सरीखा सम्मान देते हैं।

जैसे ही यह कार्यक्रम समाप्त हुआ मनु जी के दामाद अमन हमें बारी-बारी से मेट्रो स्टेशन पर छोड़ आए। मेरे साथ ओमप्रकाश कश्यप जी थे। लोकार्पण पर प्राप्त हुई पुस्तकें और मनु जी द्वारा दी गई और भी उनकी पुस्तकें मेरे पास थीं, जिन्हें सुनीता जी ने बड़े व्यवस्थित ढंग से एक बैग में पैक करके दिया था। ओमप्रकाश कश्यप जी ने वह बैग खुद उठाया। हम दोनों कश्मीरी गेट मेट्रो स्टेशन तक साथ-साथ आए। वहाँ कश्यप जी ने मुझे पीतमपुरा के लिए दूसरी मेट्रो में बिठा दिया और मैं एक मीठी यादों की वह सौगात लिए घर आई, जो आज भी मेरी अमूल्य पूँजी है।

मुझे याद आ रहा है, प्रकाश मनु जी के व्यक्तित्व को उद्घाटित करने वाला एक अत्यंत उदार रूप है, उनका दूसरे साहित्यकारों के प्रदेय को अपने समान ही सामने लाना। प्रकाशकों को पांडुलिपियाँ तैयार करवा कर देना। उनकी भूमिका या फ्लैप पर उनकी पुस्तक की खूबियाँ एवं उपादेयता के विषय में लिखना। इंद्रप्रस्थ प्रकाशन से उन्होंने कवि और कहानीकारों की कई सीरीज तैयार करवाकर प्रकाशक को दीं। इस तरह 'मेरी प्रिय कहानियाँ' या 'मेरी प्रिय कविताएँ' शीर्षक से इस प्रकाशन से आई अनेक पुस्तकों ने बाल साहित्य के भंडार को समृद्ध किया।

इसी तरह दिल्ली पुस्तक सदन से 'मेरी प्रतिनिधि कहानियाँ' शीर्षक से अनेक बाल साहित्यकारों की पुस्तकें प्रकाश मनु जी के सौजन्य से ही आईं और उन्होंने बाल साहित्य की श्रीवृद्धि की। मुझसे भी मनु जी अपनी बाल कहानियों का संग्रह तैयार करने के लिए कहा, पर मैं अपने पारिवारिक दायित्वों के कारण पांडुलिपि समय पर तैयार नहीं कर पाई। जो बाल साहित्यकार अब नहीं रहे, उनकी श्रेष्ठ रचनाएँ भी मनु जी ने उनके परिजनों की मदद से खोज-खोजकर पांडुलिपियाँ तैयार करवाईं। फिर उनके विषय में स्वयं विस्तृत भूमिका लिखकर प्रकाशक को दीं। 'आनंद प्रकाश जैन की प्रतिनिधि कहानियाँ' उनकी पुत्री मंजुरानी जैन ने स्वयं टाइप कर पांडुलिपि तैयार करके मनु जी दी।

इसी तरह निरंकारदेव सेवक जी की प्रतिनिधि कविताओं को एकत्र करने में उनकी पुत्रवधू पूनम सेवक जी ने सहायता की। श्याम सुशील जी स्वयं बरेली जाकर सेवक जी की पांडुलिपियाँ लेकर आए और उसका संपादन प्रकाश मनु और श्याम सुशील जी ने संयुक्त रूप से किया। इस तरह उनकी बिखरी रचनाओं को एक स्थान पर, एक जिल्द में लाकर उन्होंने बाल साहित्य के शोधार्थियों और अध्येताओं के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

इसी सिलसिले में एक लंबा इंटरव्यू भी श्याम सुशील जी ने पूनम जी से लिया, जिसमें सेवक जी की दिनचर्या, रचना-प्रक्रिया, उनके स्वभाव, रुचियों आदि के विषय में चर्चा थी। एक तरह से यह इंटरव्यू 'सेवक जी की कहानी : पूनम जी की जुबानी' था। ऐसे सब कार्य मनु जी निष्काम भाव से बालसाहित्य के लिए करते हैं, जिन्हें आप 'स्वांतः सुखाय' कह सकते हैं। निश्चय ही आने वाली पीढ़ियों के लेखक और शोधार्थी उससे लाभान्वित होंगे। अपने बड़े साहित्यकारों के कृतित्व को बखानने और सामने लाने वाले ऐसे निष्काम व्यक्ति अगर न हों, तो हमारे युग-निर्माता और शिखर पुरुषों का अवदान कैसे सामने आएगा। ऐसा कार्य मनु जी ही कर सकते हैं।

यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा, कि जैसे तुलसीदास ने भरत के लिए लिखा, 'भरत भरत सम जानी।' इसी अनन्वयोपमा अलंकार के माध्यम से मैं भी कहना चाहूँगी कि 'मनु मनु सम जानी'। बाल साहित्य में इतना कार्य आज तक हममें से किसी ने नहीं किया। हाँ, आने वाले

समय में निश्चय ही बाल साहित्य प्रगति के पथ पर बढ़ेगा और इसका विस्तृत इतिहास भी लिखा जाएगा। कुछ लेखकों द्वारा यह कार्य हो भी रहा है, किंतु यह कथन बिल्कुल अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है कि सृजन, आलोचना की दिशा में किया गया मनु जी का कार्य विपुल है और बाल साहित्य के इतिहासकार के रूप में तो यह बिल्कुल अपूर्व है। मनु जी के समग्र कार्य का मूल्यांकन करना मुझे लगता है, सागर को मापना है।

मनु जी स्वयं तो एक संवेदनशील लेखक हैं ही; इसी संवेदना के साथ वह नवोदित रचनाकारों के साथ भी जुड़ जाते हैं। उनका यह स्नेहिल रूप भी मेरे सामने है। नए लेखकों एवं शोधार्थियों के प्रति उनका वत्सल भाव किसी को भी अपना बना लेता है और वह उनका मुरीद बन जाता है। नए रचनाकारों, साहित्य साधकों तथा जिज्ञासुओं के लिए हर पल सुलभ और हर समय सहायता के लिए तैयार रहते हैं। फोन पर भी लंबी बात करके उनका मार्ग प्रशस्त करते हैं और घर पर बुलाकर न केवल उन शोधार्थियों के शोधकार्य में सहायता करते हैं, वरन् उन्हें अपनी पुस्तकें देकर उनकी हर प्रकार से मदद करते हैं। केवल शोधार्थी ही नहीं, यदि कोई बाल साहित्यकार भी कोई शोधात्मक कार्य करना चाहता है तो उसका मार्गदर्शन करते हैं और उसे अपनी दुर्लभ पुस्तकें देकर उसकी मदद भी करते हैं।

जब मैं हिंदी बाल साहित्य की श्रेष्ठ पुस्तकों पर काम कर रही थी तो मनु जी ने न केवल चयन में मेरी सहायता की, वरन् अलभ्य पुस्तकें भी दीं। सामान्यतः लोग काम होने के बाद पुस्तकें लौटाते नहीं हैं। परंतु सहज विश्वासी मनु जी सब पर विश्वास कर लेते हैं। इतना ही नहीं, बड़े प्यार से उन्हें अन्नपूर्णा देवी सुनीता जी के हाथ का नाश्ता, भोजन खिलाकार तृप्त होते हैं। अपने ज्ञान के दंभ से दूर उन्होंने कई शोधार्थियों का मार्ग-दर्शन किया है। उनके लिए मैं कहना चाहूँगी कि वे छात्र-वत्सल हैं।

इसके अलावा मनु जी के व्यक्तित्व की दूसरी खासियत है उनका भूमिका-लेखन। मेरा एक संस्मरण रमाशंकर की पुस्तक 'हिंदी बाल साहित्यकारों के संस्मरण' में छपा था। उसे पढ़कर प्रकाश मनु जी बहुत भावुक हो उठे थे और उस संस्मरण की मार्मिकता ने उन्हें रुला दिया था। उन्होंने मुझसे आग्रह किया कि ऐसे संस्मरण मैं और भी लिखूँ। इस तरह मैं संस्मरण लिखती गई और साथ-साथ प्रकाश मनु जी को पढ़ने के लिए भी देती गई। संस्मरण उन्हें बहुत अच्छे लगे और उन्होंने कहा कि आप इनकी पुस्तक तैयार करें, उसकी भूमिका मैं लिखूँगा।

सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुई, क्योंकि प्रकाश मनु जी अपने लेखन की व्यस्तता के कारण किसी की भूमिका आसानी से नहीं लिखते। और इसकी लंबी भूमिका उन्होंने लिखी। भूमिका लिखने के लिए वह प्रकाश्य पांडुलिपि को आद्योपांत पढ़ते हैं। भूमिका लेखन अत्यंत गंभीर दायित्वपूर्ण कार्य है। मनु जी प्रौढ़ साहित्य और बाल साहित्य दोनों के प्रकांड विद्वान हैं। सब जानते हैं कि उनके द्वारा लिखी गई भूमिकाएँ रचनाकार की कृतियों का तलस्पर्शी विशद

अनुशीलन होती हैं। प्रतिपाद्य विषय का प्रामाणिक विवेचन करती हैं। कृतिकार के कृतित्व का तटस्थ उद्घाटन करती हैं। समानधर्मी कृतिकारों के परिपार्श्व में कृतिकार का वैशिष्टय निरूपण करती हैं। कहना चाहूँगी कि मूल कृति से इन भूमिकाओं का कम महत्व नहीं है। कभी-कभी तो वह कृति पर भारी पड़ जाती हैं। मनु जी की भूमिका जिस पुस्तक में होती है, उस पुस्तक का निश्चय ही मूल्य बढ़ जाता है। हिंदी बाल साहित्य का सौ वर्षों का इतिहास उनकी स्मृतिकोष में दर्ज है। यदि उनके द्वारा लिखी गई भूमिकाओं का अध्ययन किया जाए तो हिंदी बाल साहित्य के कई अंतर्वर्ती सूत्र मिल जाएँगे।

उनकी साहित्य के प्रति समर्पित साधना के फलस्वरूप ही आज आने वाली पीढ़ी हिंदी बाल साहित्य के इतिहास से परिचित हुई है। उत्तरवर्ती साहित्यकार भी इससे लाभान्वित हुए हैं। शोधार्थियों के लिए तो यह मील का पत्थर है। भगीरथ ने जैसे गंगा को धरती पर लाने में इतना प्रयास किया और उस गंगा ने सबको अपना अमृत-तुल्य जल का पान कराके तृप्त किया। वैसे ही कर्मठ, परिश्रमी मनु जी, जो मानवीय गुणों से ओतप्रोत बड़े इनसान हैं और सबको प्यार करते हैं।

मनु जी का वह अनुग्रह मैं कैसे भूल सकती हूँ, जब वे अपनी व्यस्तता और अस्वस्थता में भी समय निकालकर मेरे कार्यक्रम की शोभा बढ़ाने आए। उसे मैं अपने जीवन का विशेष दिन कहूँगी। वह था 12 मार्च, 2023। मेरे जीवन के 75 वर्ष पूरे होने पर प्रकाश मनु जी और डॉ. भैरूँलाल गर्ग जी मुझ पर 'बालवाटिका' पत्रिका का विशेषांक निकालना चाहते थे। कुछ अरसे बाद यह विशेषांक निकला। हिंदी भवन में इसका लोकार्पण हुआ। साथ ही मेरी तीन और पुस्तकों 'बालक और बाल साहित्य', 'भारतीय लोकसाहित्य : विविध परिदृश्य' और 'मेरी मॉरिशस यात्रा' का भी लोकार्पण हुआ। भीलवाड़ा से डा. गर्ग जी आए। कहीं न जा पाने वाले प्रकाश मनु जी मेरे लोकार्पण-समारोह में आने के लिए सहर्ष तैयार हो गए। उनको लाने और छोड़कर आने की जिम्मेदारी मैंने श्याम सुशील जी को दी। श्याम सुशील जी उन्हें और सुनीता जी को टैक्सी द्वारा फरीदाबाद से लेकर समय से पूर्व ही हिंदी भवन में पहुँच गए। मुझे बहुत अच्छा लगा। उनसे मिलकर मेरा हृदय गद्गद् हो गया।

इस अवसर पर आदरणीय बालस्वरूप राही जी, देवेंद्र मेवाड़ी जी, डॉ. नागेश पांडेय 'संजय' एवम् डॉ. विकास दवे भी मंचस्थ थे। 'समकालीन बाल साहित्य की दिशा : शकुंतला कालरा' शीर्षक से नागेश द्वारा संपादित एक वृहद् ग्रंथ का भी इस अवसर पर लोकार्पण हुआ। इस ग्रंथ में चार पीढ़ियों के विद्वान लेखक एक साथ जुड़े थे। इसमें भी पहला आलेख प्रकाश मनु जी का था, जिसका शीर्षक था 'हमारी प्रिय शकुंतला दीदी', जो उन्होंने बड़े ही मन से कई दिन लगाकर लिखा था। उनका यह आलेख मेरे प्रति उनके प्रेम और सम्मान से ओतप्रोत था। इस आलेख का एक अंश उन्होंने अपने उद्बोधन में पढ़ा। बाद में जिन्होंने भी इस पुस्तक को पढ़ा, उन्हें यह

आलेख सबसे ज्यादा पसंद आया। हृदय से लिखा गया यह आलेख पाठकों के हृदय को छू गया। मैं कृतकृत्य हूँ मनु जी के प्रति कि उन्होंने मुझे इतना सम्मान दिया।

श्याम सुशील जी को भी मैं इस बात के लिए धन्यवाद दिए बिना नहीं रह सकती, कि वे इस अवसर पर मनु जी को न केवल फरीदाबाद से लेने गए, बल्कि उन्हें वापस घर भी छोड़कर आए। सुनीता जी का स्नेह भी भुलाने लायक नहीं था। उनका आलिंगन पाकर मैं अपने को हमेशा गौरवान्वित अनुभव करती हूँ। वे जब भी मिलती हैं तो ऐसे बाँहों में भरकर आलिंगन में ले लेती हैं। जब-जब मिली हैं, पिछली बार से ज्यादा प्यार और सम्मान देती आई हैं। मनु जी की तरह वे भी सहजता, सरलता और सादगी की प्रतिमूर्ति हैं। उनके पास सबके लिए स्नेह और संवेदना से छलकता हृदय है, जो मिलने वालों को अपनी तरलता से भिगो देता है। दोनों पति-पत्नी कामायनी के श्रद्धा और मनु हैं। उनकी यह जोड़ी दीघार्यु हो, स्वस्थ रहे। हृदय से मैं यह मंगल कामना करती हूँ।

अभी हाल ही में मनु जी और सुनीता जी से मेरी मुलाकात 2024 के फरवरी के पुस्तक मेले में हुई। 13 फरवरी को 4-5 प्रकाशकों के स्टॉल पर मनु जी की पुस्तकों का लोकार्पण था। मैं भी इस अवसर पर आमंत्रित थी। 'नयी किताब' प्रकाशन समूह से उनकी चार पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं। इस अवसर पर लोक यायावर देवेंद्र सत्यार्थी जी की बेटी और दामाद भी आमंत्रित थे। 'साहित्य अमृत' के संपादन से जुड़े प्रेमपाल शर्मा जी भी उपस्थिति थे। अनिल जायसवाल भी थे, जो मनु जी के साथ 'नंदन' कार्यालय में काम करते रहे हैं। मैंने इस अवसर पर प्रकाश मनु जी के व्यक्तित्व और कृतित्व के अत्यंत प्रभावित करने वाले कुछ बिंदुओं पर प्रकाश डालते हुए कुछ बातें कहीं। उन्हें यहाँ उद्धृत करना चाहूँगी :-

'किसी भी रचनाकार के कृतित्व को समझने के लिए उसके व्यक्तित्व को समझना आवश्यक है। डॉ. प्रकाश मनु साहित्य के क्षेत्र में कर्मयोगी पुरुष हैं। विनम्रता, सहजता, सरलता, मधुरता, निरभिमानता, जिनके व्यक्तित्व के गहने हैं। पाठकों का प्यार उनकी सबसे बड़ी पूँजी है। अमूल्य और कभी खत्म न होने वाले इस धन से ही वे अपने को दुनिया का सबसे बड़ा बादशाह मानते हैं। अपने प्रदेय के कारण भले ही वे बड़े-बड़े सम्मानों एवं पुरस्कारों से अलंकृत हुए हैं, किंतु सच्चा पुरस्कार वे पाठकों के अपार स्नेह को ही मानते हैं। पाठकों के स्नेह ने उन्हें आकंठ तृप्त कर दिया है।

यह सच है उन्हें अपने पाठकों का भरपूर प्यार और सम्मान मिला है, किंतु फिर भी वे अपने को एक साधारण-सा लेखक मानते हैं। उन्होंने कभी अपने को असाधारण नहीं माना और न कहीं आत्ममुग्ध लेखकों की तरह अपने साहित्य की लकीर को बड़ा खींचकर दूसरों को छोटा सिद्ध करने की ओछी हरकत की। शालीनता भरी भाषा में वे इतना ही कहते हैं कि, "मैं तो बस साहित्य का एक तपस्वी हूँ और अपनी साधना में लीन हूँ। यही मेरा तप है। इसी में जीता हूँ, इसी के सुख में तल्लीन रहता हूँ। मेरी कोई इच्छा अपूर्ण नहीं रही है।" सच, मैंने उन्हें सदा आप्तकाम,

निष्काम और मात्र सरस्वती की साधना करते पाया है। वे भले ही तुलसीदास की भाँति अपने को साधारण मानते हों, 'कवित्त-बिबेक एक नहिं मोरे। सत्य कहूँ लिखि कागद कोरे।' किंतु यह तुलसीदास की निरभिमानता थी। मनु जी के देश भर में फैले पाठक, शोधार्थी और उनसे अपार प्रेम करने वाले उनके समकालीन साहित्यकार मित्र यह स्वीकार करते हैं कि वे व्यक्ति के रूप में भले ही साधारण लगते हैं, किंतु रचनाकार असाधारण हैं। प्रकाश मनु एक संवेदनशील सर्जक, सुधी आलोचक और इतिहास की अद्‌भुत त्रिवेणी हैं।

सर्जक रचनाकार, प्रबुद्ध आलोचक, कुशल संपादक, इतिहासकार डॉ. प्रकाश मनु का रचना-संसार विस्तृत है। प्रायः साहित्यकार किसी एक विधा में निष्णात होते हैं, किंतु मनु जी की लेखनी ने प्रौढ़ एवं बाल साहित्य की सभी प्रसिद्ध विधाओं में लिखा है। उनका कृतित्व भी उन्हीं की तरह ज्ञानवर्धक एवं प्रवाहमय है। कर्मठता ही उनके जीवन का आधार है और वे बिना रुके, बिना थके निरंतर अपनी राह पर आगे बढ़ते जा रहे हैं।'

इसी तरह और वक्ताओं ने भी अपनी बातें कहीं। फिर हम सब लिटिल बर्ड पब्लिकेशंस के स्टॉल पर गए। कुसुमलता जी ने प्रकाश मनु जी के साथ उनके आमंत्रित सभी मेहमानों का भी मुँह मीठा करवाया। प्रेम के प्रतीक गहरे लाल रंग के सुंदर उत्तरीय ओढ़ाकर उन्होंने सबका भाव-भीना सम्मान किया। बहुत ही भावुक बना देने वाला दृश्य था। मनु जी के प्रति प्रकाशकों के मन में इतना प्यार और सम्मान देखकर मैं गद्‌गद हो गई। एक लेखक का सच्चा पुरस्कार उसके पाठकों और प्रकाशकों के द्वारा मिलता है। यही मनु जी की पूँजी है।

वहाँ प्रकाश मनु के संस्मरणों की पुस्तकों 'बड़े साहित्यकारों के साथ' तथा 'यादें घर-आँगन की' के साथ ही कहानी-संग्रह 'उस शहर में हमारा घर', कविता-संकलन चुनी हुई कविताएँ, और बाल साहित्य की पुस्तकें 'प्रकाश मनु की श्रेष्ठ बाल कविताएँ' तथा 'बच्चों के तीन उपन्यास' लोकार्पित हुई। यहाँ भी मनु जी के कृतित्व पर मैंने चर्चा की। कैसे बाल साहित्य को वे निरंतर श्री-संपन्न कर रहे हैं। उम्र के इस पड़ाव पर आकर उनकी लेखनी ने और अधिक गति पकड़ ली है। डॉ. प्रकाश मनु का समग्र मूल्यांकन मुझे लगता है, सागर को मापना है। इनकी साहित्यिक यात्रा बड़ी लंबी है। वे आदर्श व्यक्तित्व के रूप में नजर आते हैं। त्याग और मनस्विता, औदार्य और कर्मनिष्ठता, निश्छल प्रेम और सौजन्यता, स्वयं लिखना और दूसरों को लिखने की प्रेरणा देना। उनके अंदर उच्च संकल्प-शक्ति है।

इसके बाद हम प्रभात प्रकाशन के स्टॉल पर आए, जहाँ प्रेमपाल शर्मा जी की किताब 'स्मृतियों के मोती' लोकार्पित हुई, जिसमें मुख्य अतिथि प्रकाश मनु थे। सुनीता जी और मैं हम दोनों भी मंचस्थ थे। प्रकाश मनु जी ने पुस्तक के फ्लैप पर प्रेमपाल शर्मा जी को स्नेहाशीष देते हुए उनके और उनकी पुस्तक के संस्मरणों विषय में लिखा है, "इन सभी संस्मरणों में उनके सरल प्रीतिमय व्यक्तित्व की झलक है और हृदय की ऐसी सरलता है, जो पाठक के मन में पैठ जाती है।"

मनु जी ने प्रेमपाल शर्मा से जुड़ी अपनी कुछ स्मृतियाँ साझी कीं, जो 'साहित्य अमृत' पत्रिका में संपादन के दौर की थीं। उन्होंने प्रेमपाल शर्मा जी की इस बात के लिए खूब प्रशंसा की कि वे अपना कार्य पूरी निष्ठा के साथ करते हैं। उन्होंने कहा, "भाई प्रेमपाल जी को मैं जो भी कार्य देता, मुझे पूरा विश्वास होता कि यह कार्य समय से पूर्व पूरा हो जाएगा और ऐसा ही होता था। सबसे बड़ी बात यह थी उनके काम को मुझे कभी संशोधित नहीं करना पड़ता था।"

प्रेमपाल शर्मा जी ने बताया कि मनु जी के व्यक्तित्व की एक सबसे बड़ी खूबी यह है कि वे अपने साथ काम करने वालों को बहुत प्रोत्साहित करते हैं। इससे वे सबको अपना बना लेते हैं। यही कारण है कि हमारे कार्यलय में आज भी सब उन्हें बड़े आदर से याद करते हैं। प्रेमपाल जी बताते हैं कि प्रकाश मनु जी पहले सबको चाय पिलाते, फिर खुद पीते थे। जब ऐसा बॉस हो तो स्टॉफ उन्हें हमेशा याद क्यों नहीं रखेगा?

मस्तिष्क की मंजूषा से यादों की पुस्तक के बंद पृष्ठ खुलते जा रहे हैं। बहुत-सी बातें याद आती हैं। पर एक प्रसंग का जिक्र मैं अवश्य करना चाहूँगी। अवसर था साहित्य अकादमी के बाल साहित्य पुरस्कार-वितरण समारोह का। मनु जी सच्चे-सुच्चे, सीधे-सादे इनसान हैं। सादगी उनका श्रृंगार है। जमाने की हवाएँ उन पर कभी अपना प्रभाव नहीं छोड़ सकीं। भौतिक सुख-सुविधाओं में उनकी कोई रुचि नहीं। चाहे कितना ही बड़ा कार्यक्रम हो, वे वहाँ अपनी सहज सादगी के साथ नजर आते हैं।

साहित्य अकादमी के बाल साहित्य पुरस्कार-वितरण समारोह में मनु जी मुख्य अतिथि थे। दो वर्ष पहले सन् 2022 में हुए उस कार्यक्रम में मैं भी उपस्थित थी। देश भर के विभिन्न भारतीय भाषाओं के पुरस्कृत साहित्यकारों के साथ केंद्र में वे मंचासीन थे। उस वर्ष हिंदी भाषा में बाल साहित्य का पुरस्कार क्षमा शर्मा जी को मिला था। क्रीम रंग की, जरी के काले बाडर्र की साड़ी में क्षमा जी भी हमेशा की तरह बहुत सौम्य लग रही थीं। मैं सबसे आगे की सीट पर सुनीता जी और ऋचा जी के साथ बैठी थी। जब मनु जी ने अपना वक्तव्य पढ़ना शुरू किया तो व्यक्तित्व की वही सौम्यता, सादगी उनके वक्तव्य में भी थी। उस सादगी ने श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया। पूरा सभागार तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा।

मनु जी जैसे भीतर से सादा हैं, वैसे ही बाहर से भी। एकदम सीधी-सादी वेशभूषा। मैंने इसी तरह उन्हें हमेशा हर जगह खादी के लंबे कुरते और पैंट में देखा है। सर्दी है तो सुनीता जी के हाथ का बना ढीला-ढीला स्वेटर ऊपर पहन लेंगे, जिसे वे सालों से हृदय से लगाए रखते हैं। मैंने उन्हें उस स्वेटर में वर्षों पहले भी देखा है। इस स्वेटर में शायद सुनीता जी के प्यार का अहसास उन्हें होता है। उसकी पूरी बुनावट बल्कि एक-एक तंतु में ऊन की एक सलाई से सुनीता जी ने ममता, स्नेह, प्यार बुना है। इसमें मानो किसी की हृदय की सारी कोमल भावनाएँ लिपटी हों। यही तो उनके जीवन की सबसे बड़ी पूँजी है। मनु-शतरूपा की तरह हैं दोनों। सुनीता जी ने कामायनी की

श्रद्धा की तरह ममता, विश्वास, करुणा भरा हृदय समर्पित किया है। श्रद्धा यही भेंट मनु को देती हैं -

दया-माया, ममता लो आज मधुरिमा लो अगाध विश्वास,
हमारा हृदय-रत्न निधि स्वच्छ तुम्हारे लिए खुला है आज।

मनु जी को केवल पत्नी ही प्रिय हो, ऐसा नहीं। सुनीता जी के आने से पहले और बाद में भी वे मातृ-पितृ भक्त बने रहे। उनके स्नेह के अधिकारी उनके भाई-बहन भी उसी अनुपात में रहे। उनकी आत्मकथा और उनके आत्म-संस्मरणों की किताबें मैंने पढ़ी हैं, 'रास्ते और पगडंडियाँ', 'यादें घर आँगन की' आदि। आत्मीय जनों के प्रति लिखे गए उनके संस्मरण प्यार और सम्मान से लबालब भरे हैं।

यदा-कदा हुई चंद मुलाकातों में मैंने मनु जी में जिस आत्मीयता के निकट से दर्शन किए हैं, उस अपनत्व से मैं सदा ही अभिभूत रही हूँ। मनु जी अपने स्नेह को सदा बाँटते रहते हैं। हर किसी को बाँटते हैं, पर फिर भी उसमें कोई कमी नहीं आई। वह सदा अक्षय बना रहा। उनसे बात करने पर निराशा के क्षणों में मन को संबल मिलता है। उनके विस्तृत और विशाल रचना-संसार को पढ़कर मुझे इनकी अप्रतिम प्रतिभा के प्रत्यक्ष दर्शन हुए। उनके व्यक्तित्व-कृतित्व से प्रभावित होकर मैं उनकी शोध-छात्र बन गई। शोध-छात्र किसी डिग्री प्राप्ति के लिए नहीं, वरन् 'स्वांतः सुखाय' बनी। नैसर्गिक काव्य प्रतिभा के धनी और बाल साहित्य के गहन अध्येयता के साहित्य का आस्वाद मैंने एक शोधार्थी और सहृदय पाठक बनकर किया। इससे मुझे ज्ञान और आनंद दोनों तो मिले ही, उनके साहित्य पर काम करने की इच्छा भी जाग्रत कर दी। ईश्वर ने चाहा तो इस कार्य को जरूर अंजाम दूँगी।

ऐसे साहित्य-साधक के रचनात्मक जीवन के लिए मैं हृदय से शुभकामनाएँ व्यक्त करती हूँ और ईश्वर से प्रार्थना करती हूँ कि वह उन्हें आरोग्यपूर्ण जीवन प्रदान करें। मनु जी शतायु हों और अपनी सारस्वत साधना से बाल साहित्य के भंडार को उत्तरोत्तर भरते रहें। यह केवल मेरी ही नहीं, उनसे प्यार करने वाले सभी लेखकों और पाठकों की कामना है।

डॉ. शकुंतला कालरा, (सेवानिवृत्त एसोसिएट प्रोफेसर, मैत्रेयी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय)
संपर्क : एन.डी.-57, पीतमपुरा दिल्ली-110034
मो. : 8287479455, 9958455392, लैंड लाइन - 01127318835, 01127319600

✧ ✧ ✧

मानसरोवर के हंस

(प्रकाश मनु के लिए एक कविता)

मनु तो केवल मनु थे, लेकिन
यह प्रकाश भी हैं उज्ज्वल,
मनु ने पाई थी शतरूपा
इन्हें मिली लेखनी सबल।

विज्ञानी होकर भी इनको
लेखन अधिक रास आया,
क्योंकि तथ्य से अधिक
भावनाओं का रस ज्यादा भाया।

उपन्यास, संस्मरण, कहानी
कविताओं से जुड़े रहे,
इनकी खातिर छोड़ नौकरी
जाने कितने कष्ट सहे।

संपादक बन नए लेखकों
को लेखन के मंत्र दिए,
केवल अपने लिए नहीं,
यह तो कितनों के लिए किए।

सुबह, शाम, दिन-रात सिर्फ
लिखने में ही खोए रहते,
मानसरोवर में रचना के
शुभ्र हंस जैसे बहते।

जगमग रहें निरंतर जग भर
में रचनाएँ छा जाएँ,
मनोकामना यही हमारी
अमर, अमिट यश पा जाएँ।

बालस्वरूप राही, डी-13-ए/18, माडल टाउन-2, दिल्ली-9
मो. : 09958479432

✧ ✧ ✧

प्रकाश मनु : सदाशय पारदर्शिता

गिरधर राठी

कविता के भीतर कवि ने निश्चय ही बहुत कुछ किया हुआ है। अव्वल तो उनकी अनोखी स्मरणशक्ति है, जो कि सचिदानंदन की मलयालम कविता के संग्रह के शीर्षक की याद दिलाती है : 'वह जिसे सब याद था'। यह बहुमूल्य उपकरण ऐसा है, चैन नहीं लेने देता। भूलना भी जरूरी है। लेकिन प्रकाश मनु का संवेदनशील हृदय न तो अपने विरुद्ध हुए अन्यायों का और भोगे हुए कष्टों का विस्मरण कर पाता है, न ही अपने पास दिन-रात चलते अत्याचारों, शोषण, दमन, अन्यायों का। अध्यापक अकसर याददाश्त के धनी होते हैं और शायद यही उन्हें वाचाल भी बनाता है। किस्सागोई का गुण हर अच्छे अध्यापक में होता है और अकसर यह किस्सागोई तवील, लंबी-चौड़ी होती है। बारीक से बारीक तफसील, महीन से महीन परतें खुलती-जुड़ती, उघड़ती चली जाती हैं।

'मैं और मेरी कविता : अर्ध सदी का सफर' शीर्षक से अपने एक आगामी संग्रह की भूमिका में लिखित 'कुछ सतरें मेरी भी' की ये पंक्तियाँ प्रकाश मनु के मन को, उनके स्वभाव को और 'व्यसन' को- जो कि साहित्य-मात्र का और कविता का व्यसन है- बखूबी परिभाषित कर देती हैं : "कविता का और मेरा पुराना साथ है, कभी-कभी तो लगता है, जन्म-जन्मांतरों का।" एक भावाविष्ट भारतीय के मुँह से जन्म-जन्मांतर का मुहावरा बड़ी सहजता से निकल सकता है- भले ही विज्ञान के छात्र और वैज्ञानिक दृष्टि के हामी प्रकाश मनु इसे बौद्धिक स्तर पर स्वीकार नहीं करते हों। शायद! आखिर है तो यह एक दिलासा ही, जो अकाट्य मृत्यु की आशंका से भयभीत मनुष्य को, धर्म की ओर से दिए जाने वाले 'सनातन प्रश्नों' का एक संदिग्ध मगर आस्था पोषित उत्तर है - ऐसा उत्तर जो विज्ञान, तर्क, भौतिक यथार्थ कभी नहीं दे पाता। पुनर्जन्म!

लेकिन मनुष्य रचित सृजन में पुनर्जन्म और जन्म-जन्मांतर बड़े रहस्यमय ढंग से चरितार्थ होता रहता है। आम तौर पर यह जानते हुए भी, खास तौर पर इस नुक्ते पर मेरा ध्यान तब गया, जब मैंने कृष्णा सोबती की जीवनी 'दूसरा जीवन' लिखते हुए यह पढ़ा, "किसी भी लेखक की नई जिंदगी उसके

पूरे हो जाने के बाद फिर शुरू होती है।"

अवांतर होते हुए भी इस प्रसंग पर कुछ वाक्य लिखना जरूरी लग रहा है। एक तो यह एक अजीब सा ही दुःखांत-सुखांतक है : जीते-जी होने वाला मूल्यांकन कुछ इतर कारणों से दूषित-अतिप्रभावित हुआ हो, यह संभव है। निष्काम वस्तुपरक मूल्यांकन 'पूरे' हो जाने के बाद ही, मरणोपरांत ही होता है। अंतर्ध्वनि यह भी है - "जियत बाप से दंगम दंगा, मरत हाड़ पहुँचाए गंगा।" कबीर के जमाने से ही - कुछ उसी तर्ज परकि "घर का जोगी जोगड़ा, आन गाँव का सिद्ध।" हिंदी में खासकर, लेकिन तमाम दुनिया की भाषाओं में यह होता रहा है। छोटे या बड़े, अनेक लेखक अपने जन्म में अनाम या अल्पनाम खो गए। मरणोपरांत उनमें से कुछ पुनः जी उठे और विराट् हो गए।

उदाहरणों की जरूरत शायद नहीं है। लेकिन सबसे अधिक कुतूहल कभी-कभी इस पर जरूर होता है : मनुष्य स्वयं म्रियमाण है, मर्त्य है। लेकिन उसके रचे हुए में कविता- कला-साहित्य का कितना कुछ है जो बार-बार जी उठता है - जी उठ सकता है। जन्म-जन्मांतर अगर है तो कवि का नहीं, कविता या अन्य ललित सर्जनाओं का है - कवि उनके निमित्त याद कर लिया जाता है, सो उसका 'दूसरा जीवन' शुरू हो जाता है। कविता-कला आदि मानो 'प्राकृतिक जगत' की जीवंत वस्तुओं जैसी हैं : वनस्पतियों की तरह, कीट- पतंग- पशु- पक्षी- मनुष्यों की तरह, जो ऐन मूल रूप में नहीं, बल्कि परिवर्तित, परिशोधित वंशानुवंश जनमते-मरते बीजों से, भिन्न-भिन्न अवतारों में जन्मांतरित होती रहती हैं।

इसी तरह कविता (या कोई अन्य कला) अपने मूल शरीर में रहते हुए भी, हर युग में और हर ग्रहणशील मन-मस्तिष्क में कुछ नए ही 'रूप' (अर्थ, संकेत, आशय) में जन्म लेती रहती है। कोई आश्चर्य नहीं कि अपने गर्वोन्नत क्षणों में द्रष्टा-ऋषि कहलाने वाला कवि कभी-कभी खुद को ईश्वर से होड़ करता हुआ महसूस करने लगता है!

मेरे अभिन्न मित्र प्रकाश मनु पर्याप्त विख्यात हैं। लेकिन बाल साहित्य, कहानी, उपन्यास के विस्तीर्ण जीवन वृत्तों का जैसा जो काम उन्होंने किया है और कुछ अनोखे रचनाकारों को जिस समग्रता से प्रस्तुत किया है, उस काम का ऐतिहासिक महत्त्व है : भविष्य का इतिहास उसकी गुरुता और महत्त्व को उत्तरोतर पहचानेगा, यह विश्वास शायद अकारण नहीं है। अतः यहाँ आरंभिक विषयांतर को वृहत्तर संदर्भों में ही रखा माना जाए : इस जीवन के अलावा दूसरे जीवन (जीवनों) के लिए सदाशय शुभाशंसा की तरह।

प्रकाश मनु की सदाशयता पारदर्शी है। कहें कि पारदर्शिता और सदाशयता उनके मन, वचन और कर्म-तीनों की पहचान है। आप उन्हें बोलते हुए सुनें या उनका लिखा हुआ, पढ़ते हुए गुनें, उनकी यह पहचान अनजाने ही अपनी छाप छोड़ जाती है। 'चुनी हुई कविताएँ' की उक्त भूमिका आपको उनके व्यक्तिगत जीवन के उतार-चढ़ाव के अलावा उनके कवि-रूप की, काव्यगत

अभिरुचियों के विस्तृत आकाश की भी सारभूत झलक दे देगी। प्रकाश मनु ने इनमें से कई बातें और जगहों पर भी कही हैं, लेकिन यहाँ अधिक सघनता और संपूर्णता के साथ और 'संक्षेप' में समझा जा सकता है।

यहाँ 'संक्षेप' शब्द कुछ गुदगुदी के साथ आ रहा है। प्रकाश मनु से कोई भी बात संक्षेप में कैसे हो सकती है, यह मैं नहीं जान पाया। क्योंकि जो स्वभाव उनकी कविता का है, कवि का व्यक्तिशः भी वही स्वभाव है। देवेंद्र कुमार के साथ पहला कविता संग्रह 'कविता और कविता के बीच' निकालते समय उन्होंने सच कहा है : "मेरी कविताएँ ज्यादा बोलती और उबलती हुई कविताएँ" थीं हैं। बोलते हुए प्रकाश मनु एक तीखी धार पर चलते हुए जान पड़ते हैं। श्रोता कभी-कभी उनके उस भावाविष्ट और लगभग रुँधते हुए गले से, थरथराते निकलने वाले शब्द-प्रवाह से घबरा-सा जाता है। मानो उस खिंची हुई लंबी डोर से वे कभी भी लुढ़क सकते हैं - और श्रोता को भी अपने साथ बहा या ढुलकाकर ले जा सकते हैं। प्रकाश मनु का बोलना और लिखना उनके समूचे अस्तित्व के भीतर से निकलता है, पोर-पोर से, रग-रग से। भुवनेश्वर और निराला को साक्षात् सामने बर्दाश्त करना, बताया जाता है, काफी कठिन होता था। मैंने अपने कुछ मित्रों से सुना है कि वे भावाविष्ट प्रकाश मनु को अधिक देर नहीं सह पाते थे। यहाँ तुलना या आलोचना नहीं, केवल एक खास खूबी का बयान किया जा रहा है।

कुछ-कुछ उसी तरह, जैसे मैं इस भूमिका के एक पक्ष को बिल्कुल बर्दाश्त नहीं कर पाता अपना खुद ही आकलन। उनकी अपनी कविता पर उद्धृत दो विशेषणात्मक शब्द अपने भीतर कुछ अपनी ही चिकोटी काटने वाला उत्फुल्ल उपहास भी समेटे हुए हैं। पर आगे अपने कविता-पाठ और संग्रह और उपन्यासों आदि पर उनकी अपनी टिप्पणी कुछ अनावश्यक जान पड़ती है। जो वर्णन और मूल्यांकन गोष्ठियों, किताबों आदि का वे कर रहे हैं, वह उनकी कलम से नहीं, मेरी या किसी तीसरे पाठक-श्रोता-समालोचक की कलम से लिखा जाता, तो एक धनात्मक प्रभाव छोड़ता। घनघोर आत्मविश्वास साहित्य के प्रति उनके संपूर्ण समर्पण की देन है और गहरा आत्म-संदेह हमारे साहित्यिक वातावरण की। हम सभी शायद इस तरह की द्विविधा के शिकार हैं, लेकिन सभी इतने 'पारदर्शी' नहीं दिखते।

'ऐसा ही जीवन मैंने स्वीकार किया है' प्रकाश मनु का नवीनतम संग्रह इक्कीस साल के अंतराल से अब छप रहा है। इससे पहले 'छूटता हुआ घर' तथा 'एक और प्रार्थना' नाम से उनके दो स्वतंत्र संग्रह आ चुके हैं। उनमें से 'चुनी हुई कविताओं' पर एक बार फिर से नजर डाली जाए।

शायद मेरे ही अनुरोध पर उन्होंने दो संग्रहों से 44 कविताएँ चुनी हैं और मुझे भेजी हैं। इनमें से अंतिम कविता है, 'अभी मैं नहीं मरूँगा'। 'अभी न होगा मेरा अंत' (निराला) की और 'अभी तो मैं जवान हूँ' (हफीज जालंधरी) की याद तुरंत दिलाने वाली इस कविता में प्रकाश मनु ने वे सब काम गिनाए हैं, जो अभी करना शेष हैं। उनकी सुदीर्घ आयु हो, यह कामना करते हुए हम गौर

करें कि जो अभी बहुत सारे काम करने हैं, उनमें सबसे पहले है, "अभी लिखनी हैं कविताएँ और उनमें उगाने हैं हरे-भरे खुशमिजाज पेड़, झील, दरिया और गुनगुनाता हुआ जंगल।" बहुत लंबा-चौड़ा एजेंडा है, निजी जीवन से लेकर देश-दुनिया के तमाम मसलों तक फैला हुआ। अलबत्ता यह सवाल मन में उठ सकता है कि क्या इतना बड़ा कारोबार कविता के भीतर और कविता के माध्यम से शब्द के माध्यम से करना है, या उससे बाहर निकलकर 'संसद से सड़क तक'? कविता (या शब्द) ने दुनिया में बड़े-बड़े करतब कर दिखाए हैं, मगर साथ ही, कविता (और शब्द मात्र) इतना बड़ा बोझ उठा पाएगी क्या? हम जिस दौर में हैं, उसमें भी एक तरह के 'शब्द' तो निश्चय ही, जघन्यतम उत्पात मचाने में सफल हो रहे हैं, लेकिन दूसरी ओर, दूसरे, दूसरी तरह के शब्द निर्बल, निवीर्य और निष्प्रभाव मालूम हो रहे हैं!! हमारे और प्रकाश मनु के शब्द!

कविता के भीतर कवि ने निश्चय ही बहुत कुछ किया हुआ है। अव्वल तो उनकी अनोखी स्मरणशक्ति है, जो कि सचिदानंदन की मलयालम कविता के संगह के शीर्षक की याद दिलाती है : 'वह जिसे सब याद था'। यह बहुमूल्य उपकरण ऐसा है, चैन नहीं लेने देता। भूलना भी जरूरी है। लेकिन प्रकाश मनु का संवेदनशील हृदय न तो अपने विरुद्ध हुए अन्यायों का और भोगे हुए कष्टों का विस्मरण कर पाता है, न ही अपने पास दिन-रात चलते अत्याचारों, शोषण, दमन, अन्यायों का। अध्यापक अकसर याददाश्त के धनी होते हैं और शायद यही उन्हें वाचाल भी बनाता है। किस्सागोई का गुण हर अच्छे अध्यापक में होता है और अकसर यह किस्सागोई तवील, लंबी-चौड़ी होती है। बारीक से बारीक तफसील, महीन से महीन परतें खुलती-जुड़ती, उघड़ती चली जाती हैं।

प्रकाश मनु का कवि मुख्यतः या मूलतः किस्सागो कवि है। यह ऐसा गुण है जो महाकाव्यों के युग से ही श्रोता को अपनी गिरफ्त में लेता आया है। लय कहीं विशुद्ध गद्य की है। यह लय हिंदी में बहुत प्रतिष्ठित हो चुकी है, अपनी अनेकशः, विविध, ध्वनि-संरचनाओं के साथ। रघुवीर सहाय, विष्णु खरे दो भिन्न उदाहरण हैं। लेकिन भावावेग की लय वाली भी अनेक कविताएँ हैं। गद्य-लय वाली कविता भी, यों तो, भावावेग से मुक्त नहीं है।

प्रकाश मनु की अनेक कविताएँ हममें अगले-पिछले अनेक कवियों की रचनाएँ जगा जाती हैं। जैसे 'छूटता हुआ घर' में "खून जलाकर रची थीं कविताएँ" सहज ही गालिब की याद दिला जाती है, "जो आँख ही से न टपका तो फिर लहू क्या है।" या फिर जब प्रकाश मनु दो कविताओं में पूछते या बताते हैं कि 'कौन है प्रकाश मनु'। याद आ जाते हैं दिल्ली से हताश होकर लखनऊ पहुँचे मीर तकी मीर, जहाँ वे नफीस लखनवियों के उपहास का निशाना बनते हैं, "क्या बूद-ओ-बाश पूछो हो पूरब के साकिनो! हम को गरीब जान के, हँस-हँस पुकार के...!" या वही क्यों, गालिब को भी इस हटक से दो-चार होना पड़ा होगा, "पूछते हैं वो कि गालिब कौन है, कोई

बतलाओ कि हम बतलाएँ क्या?" प्रकाश मनु लेकिन श्रोता मंडली का नक्शा भी खींच देते हैं, सिर्फ संकेत करके चुप नहीं रह जाते।

शायद आत्मसम्मान खुद्दारी का सवाल यहाँ महज साधारण नागरिक या व्यक्ति का नहीं है, और अपनी निजी व्यथाओं, तकलीफों के लिए महज आत्मदया का भी नहीं है। आत्मगस्त और आत्मकेंदित उनकी कविता शायद खुद अपना 'साधारणीकरण' करके सहभोक्ताओं के व्यापक संसार की कथा कह रही है। पिता, मित्र, सहयोगी, जननायकों के साथ अपने निजी संबंधों के उलटने, आशा-आदर्श के बिखरने का दर्द कहीं-कहीं जरूर केवल आत्मकथात्मक लगने लगता है। कविता के माध्यम से उन लोगों पर प्रहार करने की परंपरा पुरानी है, जिनसे मोहभंग हुआ हो, या जिनके काया-पलट ने गहरी चोट पहुँचाई हो। 'पुरस्कार पाने वाले कवि' पर या 'बहादुरलाल' पर शायद इसीलिए कविता-प्रहार हुआ हो।

लेकिन प्रकाश मनु की कविता-गैलरी में अनेक प्राकृतिक शहरी सैरे (लैंडस्केप) तो हैं ही, शबीहें (पोर्टेट) भी कम नहीं हैं। देवेंद सत्यार्थी, अमृता प्रीतम। और खूबसूरत बुजुर्ग अमृता जी के चेहरे में अचानक देवेंद्र सत्यार्थी का चेहरा झिलमिला उठना सचमुच कवि के चिंता-जगत की मार्मिक बानगी है। त्रिलोचन, स्वामीनाथन, हरिपाल त्यागी, मुक्तिबोध, फतेहपुर सीकरी का गाइड और कवि मानबहादुर सिंह (की नृशंस हत्या) पर उनकी कविताएँ उन व्यक्तित्वों के अनोखे पहलुओं तथा उनके प्रति प्रकाश मनु के लगाव को रेखांकित करती हैं। उसके अलावा यह भी कि ऐसे व्यक्तित्वों को विस्मरण की आँधी से बचाने का काम भी ऐसी कविता करती है।

प्रकाश मनु के मन में वसंत और बच्चों का, दृश्यों आदि का उल्लास भी बहुत है, केवल हालात पर मातम नहीं। उनकी कविता हमें 'परिचित' से नया 'परिचय' कराने में समर्थ है - कहीं-कहीं अपरिचय के विंध्याचलों को उलाँघती भी है। गाहे-ब-गाहे जो लोग, मेरी ही तरह, उनके गद्य से अधिक और उनकी कविता से कुछ कम मिलते रहे हैं, उन्हें एक साथ चुनिंदा कविताएँ पढ़ने के बाद लगेगा कि कविता का एक और सहयात्री उन्हें मिल गया है। नए संग्रह के साथ, आगे कभी संभव हुआ तो भेंट होगी।

गिरधर राठी, फ्लैट नं. 503, टावर 9, लोटस पलाश अपार्टमेंट्स, सेक्टर-110,
नोएडा-201304 (उ.प्र.), मो. : 09891011561

✧ ✧ ✧

उजास भरी जिंदगी के सपने दिखाती प्रकाश मनु की कविताएँ

सविता मिश्र

दुखों को सुनहरा करने की अपूर्व कामना, कठिन चढ़ाइयाँ चढ़ने, तमाम टीलों को पीठ पर उठाकर ले जाने का अभूतपूर्व संकल्प, बिजलियों का घेरा तोड़कर आसमान चूमने की ललक कवि मन में जिंदा है। कवि का यह दायित्वबोध परिवर्तनकामी शक्तियों व समाज की एक ऐसी नई तस्वीर दिखाने के लिए व्यग्र है, जहाँ नई-नई क्रांतियों के बल पर आसमान और धरती का नया गठबंधन कर सके और कविताओं में उगा सके हरे-हरे खुशमिजाज पेड़।

आत्मालाप की शैली में लिखी उनकी यह कविता प्रतीकों के माध्यम से कवि की चिंताओं को व्यक्त करती हुई, सदियों से जमे पठार को दरकाने का काम करती है। उनके शब्दों का ओज पाठकों की जड़ता को तोड़कर उम्मीदों का सुनहरा आकाश रच देता है।

इन कविताओं में अनंत आत्मीयताओं का खूबसूरत संसार है। अँगीठी सुलगाती, चौका लीपती ममतामयी माँ है, बेपरवाह अपनेपन से भरे हुए दोस्त हैं।

प्रकाश मनु की कविताएँ समय की विसंगतियों को उद्घाटित करने वाली कविताएँ हैं। इन कविताओं में एक ओर निराशा का अंधकार है तो दूसरी ओर उजास भरी जिंदगी के सपने हैं। इनमें जीवनगत ऊर्जा है और ईमानदार सर्जक की मूल्यवान रचनाधर्मिता है। ये कविताएँ जीवन के साथ रहने वाली कविताएँ हैं।

उनके कविता संग्रह 'एक और प्रार्थना' की पहली ही कविता 'घर' घर के भीतर की व्याप्ति को सघन अंतर्दृष्टि से देखती है। यह कविता कवि के जितनी निकट है, उतनी ही पाठकों के निकट भी है। इसमें घर की संपूर्ण प्रतिध्वनियाँ, छवियाँ मौजूद हैं। पूजा की जगह, धूपबत्ती की सुगंध, साबुन, मंजन, आँगन में सूखती मिर्चें, धनिया, आम के अचार की घरेलू गंध के साथ, कच्ची जगह में बोई मूली और गोभी, माँ और पिता के सुख-दुख के गुनगुने फाहों के साथ पकती हुई जिंदगी के अनगिनत बिंब हैं। पारिवारिक संबंधों के बीच पनपते नेह-छोह के साथ आपसी तनावों को भी कवि ने बड़ी खूबसूरती से रचा है। घर के भीतर व्याप्त शांति-अशांति को प्रतीकात्मक शैली में व्यक्त करते हुए वे कहते हैं -

एक छोटा सा राज्य...कभी शांत कभी
भीतर तक अशांतय

सुबकता, हिचकियाँ भरता हुआ!
जहाँ के अपने राजा-रानी और राजकुमारियाँ हैं
और तीर-कमान, तलवारें भी
अज्ञात शत्रुओं से लड़ने के लिए।...
कभी-कभी वे आपस में चल जाती हैं
फिर एक तेज अश्रुपात...जख्मों को बहा ले जाने के लिए!...
एक कोना है जहाँ पिता सिर झुकाकर
रोज तीर-कमान टाँगकर कंधे पर
जाते हैं रणभूमि में
लौटकर पोंछेंगे रक्त...
रखकर तीर-कमान : रोज की हारें और अपमान
फिर इसी कोने में...! (पृष्ठ 1-2)

निम्नवर्गीय जीवन की असंख्य विसंगतियाँ, समाज की त्रासद विडंबनाएँ कवि की कविताओं में पूरी छटपटाहट के साथ व्यक्त हैं। समाज के सामाजिक, आर्थिक यथार्थ की द्वंद्वात्मक स्थितियाँ प्रकाश मनु की कविताओं में देखने को मिलती हैं। निराला की 'तोड़ती पत्थर' से साम्य रखती कविता 'सीता की रसोई' कवि की संवेदनशीलता को उजागर करती है। आजादी के बाद के व्यवस्थाजन्य अंतर्विरोधों से जूझती, प्लेटफार्म पर छितराई भीड़ की हजार आँखों से बेफिक्र एक औरत खड़िया से गोल घेरा खींचकर, उसके भीतर अपनी रसोई सजाकर अपने परिवार का भरण-पोषण करती है। स्त्री-विमर्श का सशक्त उदाहरण है यह कविता, जो आत्मविश्वास से दीप्त, कर्मनिष्ठ स्त्री का सशक्त एवं जीवंत चित्र उकेरती है -

चारों ओर की भीड़ और सँकरी निगाहों
से बेपरवाह
एक काली-सी गठीली औरत
जिसका चमकता था माथा तेज आँच की लपटों में!
जुटी थी अपने काम में इस कदर विश्वास से
कि...चारों ओर का गोल लक्ष्मण घेरा
फटकने न देगा किसी दुष्ट राक्षस को उसके पास। (पृष्ठ 90-91)

संवेदनाओं की कोमलता से परे प्रकाश मनु की कविता उन तमाम तकलीफों को बयान करती है, जो वे महसूस करते हैं। जिंदगी में कई बार ऐसा समय आता है, जब ये तकलीफें कविताओं के माध्यम से बाहर आती हैं। यथार्थ के तीखे और कड़वे रूप उनकी रचनात्मकता को

समृद्ध करते रहे हैं। इन कविताओं में अजीब किस्म का खुरदरापन है, जो उनके अनुभवों और विचारों का है। अपने नौजवान भतीजे संदीप की हत्या पर लिखी कविता 'क्षमा करो पुत्र' में वे अपनी विवशता को कुछ इस तरह अभिव्यक्त करते हैं -

क्षमा करो पुत्र!
कि हम जिंदगी की रोजमर्रा की
लड़ाइयों और कड़ाहियों में
भुनते-भुनते
सीधी-सी सादा-सी
भाषा तक भूल गए...
जैसे प्यार, जैसे गुस्सा, जैसे उदासी जैसे
प्रतिकार और जैसे दुस्साहस...
पत्थर फोड़कर पानी निकालने का!
हमारी आस्थाएँ पोली हैं वत्स!
हमारे इरादे खोखले। (पृष्ठ 92-93)

'जिंदगी के जलते अलावों के करीब' फेंका गया कवि का अस्तित्व क्रुद्ध लहू की कहानी को लिखने के लिए खुद को सक्षम नहीं पाता है, पर फिर भी कोशिश करता है। ऐसी कविताओं से गुजरते हुए पाठक घनीभूत वेदना को महसूस करता है।

'एक और प्रार्थना' संग्रह के फ्लैप पर लिखा है, "ये कविताएँ हरगिज 'हारे की हरिनाम' की कविताएँ नहीं हैं। बल्कि एक बुरे वक्त में खुद को टूटने से बचाते हुए, शक्तिशाली से ज्यादा शांत और धीरजवान लड़ाई लड़ने की तैयारी की कविताएँ हैं।"

अंतर्मन की संवेदनाओं का उजास बिखेरती प्रकाश मनु की कविता 'अभी मैं नहीं मरूँगा' अद्‌भुत जिजीविषा संपन्न कविता है। मौसम की पाती में हरापन लाने की उत्कट अभिलाषा, हाथ तापते हुए दोस्तों से बतियाने की तीव्र आकांक्षा, बिजलियों का घेरा तोड़कर आसमान चूमने की लालसा, कविताओं में हरे-हरे खुशमिजाज पेड़ उगाने की कामना करता यह कवि अपनी कविताओं में चुप नहीं रहता, वरन् अपने कथ्य में निरंतर संवादरत रहता है -

अभी पाटनी हैं खाइयाँ
अभी तो हलचलों जैसी हलचल भरनी है
वक्त की छाती में
अभी हरापन लाना है मौसम की पाती में

अभी मिट्टी से पैदा करने हैं तूफान...
और समतल करने हैं रेत के बड़े-बड़े ढूह। (पृष्ठ 38)

संग्रह की कविताओं में कवि के अंतर्जगत की अनगिनत छवियाँ दीप्त हैं। जिंदगी और जिंदगी के संघर्षों और आम आदमी के सुख-दुखों से रू-ब-रू होती ये कविताएँ आस-पास की नृशंस घटनाओं और संवेदनहीनता की पराकाष्ठा से साक्षात्कार कराती हैं। कवि मानबहादुर सिंह की नृशंस हत्या पर लिखी कविता 'कवि को मारना' में 'मजमाई कौतुक' को भी महसूस करता है, जो कवि मानबहादुर सिंह की नृशंस हत्या के बाद पुलिस के आने तक गायब हो जाता है। कवि कटाक्ष करते हुए कहता है -

हे राम जी,
कैसा अद्‌भुत है यह प्रकृति का न्याय
कि वे सबके सब एक साथ अंधे
हो गए थे।
एक साथ-दो हजार धृतराष्ट्र...
जब महाभारत का यह महा अश्लील कांड हो रहा था
ऐन उनकी आँख के आगे...
सबसे पहले उन्हीं की आँखें चुग लीं गँड़ासे ने
कवि तो बाद में मरा...
टुकड़ा-टुकड़ा होकर!
पहले मरे वे दो हजार। (पृष्ठ 83)

प्रकाश मनु की कविता का आक्रोश सच्चा आक्रोश है, जो हैवानियत को बेनकाब कर देना चाहता है। इस कविता में समय और समाज के प्रति तीव्र घृणा का भाव है। उनकी यही संवेदनशीलता उन्हें सही अर्थों में कवि बनाती है।

यह संग्रह प्रकाश मनु ने गर्दिश के साथी अपने दोस्तों को समर्पित किया है। उनकी जिंदगी में दोस्तों की अहम् भूमिका है। भागम-भाग की जिंदगी से गुजरते हुए, ऊब और थकान के बीच फूलों के रंगों से फाग खेलते हुए, हाथ तापते हुए दोस्तों से दुनिया-जहान की बातें करके दुखों को सुनहरा करने की कामना मन में सहेजे कवि अपनी कविताओं के बहाने बार-बार मैत्री का नाद करता है। यह मैत्री भाव ही तो है जो जीवन को समृद्ध करता है। मैत्री की अनंत अर्थ-छवियों को खोलती उनकी कविताएँ दोस्त चित्रकार हरिपाल के लिए कृतज्ञता ज्ञापित करती है। वे कहते हैं-

जब मैं था उद्विग्न
तुम साथ थे
जब-जब मैं हुआ उद्विग्न
तुम साथ चले आए ऐन घर तलक
देर-देर तक थपथपाते कंधा...
कंधे पर हरी पुलकित डाल मुलायम! (पृष्ठ 86)

न केवल मैत्री वरन् चित्रकार हरिपाल के चित्रों के वैशिष्ट्य को काव्यात्मक लहजे में व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा है कि इन चित्रों की लकीरें पूरी जिंदगी के सीखे हुए दाँव, लड़ाइयों और मोर्चे को बड़ी बेबाकी से व्यक्त करती हैं। विषम परिस्थितियों के चक्रव्यूह में फँसे, छटपटाते प्रकाश मनु के जेहन में जब अपने इस दोस्त की स्मृतियाँ पुकारती हैं तो उन्हें महसूस होता है कि हरे-हरे पत्तों की थरथराहट उनके दिल में उत्तर आई है और वे खुश हो उठते हैं-

और मैं खुश हूँ
कम से कम एक है महानगर में
जिसके आगे किसी भी कमजोर क्षण में
कपड़े उतारकर
दिखा सकता हूँ घाव
और मुझे शर्म नहीं आएगी। (पृष्ठ 151)

इन कविताओं से गुजरते हुए कभी 'सादा आसमानों की लाजवाब हँसी हँसते हुए जनपद के कवि त्रिलोचन से मुलाकात होती है तो कभी 'शहर के सबसे बूढ़े देवेंद्र सत्यार्थी से रू-ब-रू होने का मौका मिलता है। ये यात्राएँ जिंदगी में रोशनी की नदियाँ बहाती हैं। देवेंद्र सत्यार्थी के लिए लिखी एक कविता 'शहर का सबसे बूढ़ा' में कवि उनके व्यक्तित्व को इस तरह उकेरता है -

दाढ़ी में हँसी
कि हँसी में तैरती है दाढ़ी
उस खुली दाढ़ी में
खुलता जाता है एक समंदर...।" (पृष्ठ 78)

प्रकाश मनु शब्द-शिल्पी हैं। पल में उनका संवेदनशील मन शब्दोत्सव रच देता है। इसी प्रक्रिया में वे भी कभी त्रिलोचन की खुली हुई सादा आसमानों की सी लाजवाब हँसी से रू-ब-रू कराते हैं तो कभी अमृता प्रीतम के वार्धक्य से छनते सौंदर्य को कुछ इस तरह प्रस्तुत करते हैं कि उनका समूचा व्यक्तित्व हमारे समक्ष उभर आता है -

बहत्तर साल की बूढ़ी औरत
थी बैठी मेरे सामने
मेरे सामने था बुढ़ापे का छनता हुआ सौंदर्य
कितना कसा अब भी!
महीन-महीन कलियाँ बेले की
गुलमोहर के फूलों की आँच-में पका हर शब्द!" (पृष्ठ 80)

प्रगतिशीलता की आड़ में कवि फूल, पेड़, दरिया और चाँद-तारों की झिलमिली पर काली कूची फेरने का हिमायती नहीं है। उसकी संवेदना आम आदमी से जुड़ती है। अपने लिए कोई खास दर्द तलाशने की कोई ललक कवि के मन में नहीं है।

संग्रह की कई कविताएँ समकालीन भयावह, संवेदनशून्य परिदृश्य की फोटो कॉपी हैं, जिन्हें पढ़कर साँस लेना दूभर हो उठता है। 'चीजें अब उतनी आसान नहीं रहीं', 'गोरख पांडे के लिए एक कविता', 'कहता है', 'वे जो संस्कृति सचिव के पाजामे में घुस जाना चाहते हैं' आदि ऐसी ही कविताएँ हैं। इन कविताओं में पाठकों का साक्षात्कार उत्तर-आधुनिक समाज से होता है। अपसंस्कृतिकरण की भिन्न-भिन्न छवियाँ इन कविताओं में खुलती हैं और हम हताशा, क्षोभ और अश्लीलता के अँधेरे कुँए में उतरते चले जाते हैं।

प्रकाश मनु की कविताओं में समय की अनुगूँजें व्याप्त हैं। ऐसा परिदृश्य भी है जो नितांत सच है और हमारी संवेदना को भीतर तक झकझोर कर रख देता है। सघन बिंबों और प्रतीकों के सहारे कवि अपनी इन कविताओं में पूरी शिद्दत के साथ समकालीन विसंगतियों से टकराता है, जूझता है, 'चित्रकार ने कहा तिरस्कार से' ऐसी ही कविता है, जिसमें एक चित्रकार है, जिसके चित्रें में बहुत सारी झोंपड़ियाँ हैं। इस कविता के बहाने कवि जिंदगी के दुखों के बीच से झाँकते सुखों की तलाश करता है -

इनमें हर झोंपड़ी में कम से कम
एक तो जरूर है जवान औरत
पकाती हुई खाना
सिंगार करती देखती हुई दरपन में सपना
सुख-दुख महँगाई के जाल में उलझी रूप की डाल
इसमें जोड़ती पैसा-पैसा गृहस्थी का सुख...
हर झोंपड़ी में है बहुत कुछ।
...मुझे दिखाई दिया सचमुच झोंपड़ियों के भीतर जो कुछ था

कुछ नहीं, बहुत कुछ -
हँसता हुआ दुख के काले-काले होंठों पर
लाल बाँसुरी की तरह! (पृष्ठ 151)

संग्रह में ऐसी कई कविताएँ हैं, जिन्हें पढ़कर एक अजीब-सी बेचैनी शिराओं में दौड़ने लगती है, माथे की सारी नसें तड़कने सी लगती हैं, दुनिया बेहद कुरूप और नृशंस लगती है। तभी अचानक प्रकाश मनु 'चलो ऐसा करते हैं' कविता के बहाने 'कुछ नये अचंभों भरे क्षितिज पर चलने का' आह्वान करने लगते हैं, जहाँ अपनी-अपनी पीठ से उम्र की गठरियाँ उतारकर, हवा में पूरी साँस खींचते हुए, तरोताजा होकर दौड़ने की पुकार लगाते हैं। वे जानते हैं कि विद्रूप, सड़ी-गली हवाओं में साँसें लेना मुश्किल ही नहीं, बहुत मुश्किल है। पर हर मोर्चे पर तनी तलवारों, उदग्र अपमानों और बेबस स्थितियों से उबारने की हर संभव कोशिश करती प्रकाश मनु की कविता को अपनी ताकत पर पूरा भरोसा है। उनकी कविता पूरी तरह से सजग है, तभी वह उद्‌बोधन करती है -

चलो, ऐसा करते हैं कि
धीमे-धीमे ताप में धीमी करते बातें
टहलते हैं
और टहलते-टहलते कहीं दूर निकल जाते हैं
समय की सारी सरहदें पीछे छोड़ जाते हैं
पीछे छोड़ जाते हैं दुनिया के सारे नियम और कायदे
और बौने लोगों की बौनी दुनिया के नुकसान और फायदे
किसी और दुनिया में चलते हैं जहाँ भाषा इतनी थकाने वाली न हो
लोग इतना अधिक बोलते और घूरते और
इधर-उधर सूँघते और किकियाते न हों
न हो इतने चिड़चिड़ेपन का बोझ आत्मा पर -
चलो कहीं चलते हैं। (पृष्ठ 28)

जिजीविषा का उद्दाम वेग 'अभी मैं नहीं मरूँगा' कविता में स्पष्ट परिलक्षित होता है। अपनी सामर्थ्य पर अटूट विश्वास है कवि को और उनका संकल्पशील मन उद्‌घोष करता है -

अभी रचनी है दुनिया
बिल्कुल नई चमचमाती दुनिया! (पृष्ठ 23)

दुखों को सुनहरा करने की अपूर्व कामना, कठिन चढ़ाइयाँ चढ़ने, तमाम टीलों को पीठ पर उठाकर ले जाने का अभूतपूर्व संकल्प, बिजलियों का घेरा तोड़कर आसमान चूमने की ललक कवि मन में जिंदा है। कवि का यह दायित्वबोध परिवर्तनकामी शक्तियों व समाज की एक ऐसी नई तस्वीर दिखाने के लिए व्यग्र है, जहाँ नई-नई क्रांतियों के बल पर आसमान और धरती का नया गठबंधन कर सके और कविताओं में उगा सके हरे-हरे खुशमिजाज पेड़।

आत्मालाप की शैली में लिखी उनकी यह कविता प्रतीकों के माध्यम से कवि की चिंताओं को व्यक्त करती हुई, सदियों से जमे पठार को दरकाने का काम करती है। उनके शब्दों का ओज पाठकों की जड़ता को तोड़कर उम्मीदों का सुनहरा आकाश रच देता है।

इन कविताओं में अनंत आत्मीयताओं का खूबसूरत संसार है। अँगीठी सुलगाती, चौका लीपती ममतामयी माँ है, बेपरवाह अपनेपन से भरे हुए दोस्त हैं। यहाँ नीम की निबोलियों-सा महकता बचपन है। बेफिक्र बचपन की मासूम आकांक्षाओं को कवि ने कुछ इस तरह उकेरा है :-

बचपन दरअसल एक हरा समंदर है
एक सुनहरी आग
और एक दुनिया...
जिसमें न दरवाजे हैं
न दीवारें
सिर्फ उड़ान है, उड़ान सात हाहाकारते समंदरों पर
एक बेफिक्र बेछोर उड़ान...! (पृष्ठ 23)

'खोए हुए बचपन के लिए एक कविता' में कवि ने बचपन की मासूम और बचपन बीत जाने के बाद की मायूस मनःस्थितियों के जो चित्र खींचे हैं, वे पाठकों को बिल्कुल अपने से लगते हैं। अंतर्मन की संवेदनाओं का उजास इन कविताओं में रह-रहकर फूटता है।

संवेदना के साथ रोशनी में नहाई प्रकाश मनु की कुछ कविताएँ अपूर्व हैं। 'फूलों की घाटी में एक बच्चा' ऐसी ही कविता है, जो कवि ने एक सांस्कृतिक कार्यक्रम में नाचते हुए बच्चों को देखकर लिखी है। इसमें रंगों में खिलखिलाती दुनिया है। इठलाती हवाएँ और झूमते दरख्त हैं, शोर मचाता हुआ आता बसंत है -

बच्चे के होंठों से
किरणीली मुसकानें फूटती हैं
फूटते हैं नई सदी के गाने
उसके गीतों में अजब सी तुतलाहट है

और कभी न जाने वाले वसंत की नरमी, वसंत की दस्तक
अजब सा आनंद है उसके गीतों में
जिसमें सारी की सारी दुनिया
एक नए ढंग से खुलती है। (पृष्ठ 26)

कवि की कविता में एक ओर समकालीन विसंगतियों की तल्खियाँ हैं, वहीं दूसरी ओर अद्‌भुत जिजीविषा भी है। 'चिड़िया का घर' कविता अनंत संभावनाओं का द्वार खोलने वाली कविता है, जिसमें चिड़िया का ढेर सा उछाह और एक बड़ी जिजीविषा के साथ उसकी कला देखने को मिलती है, जिसके बल पर वह महामारी, अकाल और घुटन भरे वक्त में भी अपना घर बना लेती है। यह कविता हमारे लिए एक बड़ा संबल रचती है और जिंदगी की तमाम बेरंग उदासियों से बाहर खींच ले जाती है।

कवि अपने रचनात्मक उन्मेष के बल पर सकारात्मक सोच द्वारा उस वक्त भी इनसानी रिश्तों का पुल बना डालता है, जिस वक्त एक-दूसरे के खिलाफ षड्यंत्र रचते हुए, एक-दूसरे पर विष उगलते हुए क्रोध से लाल भभूका लोग एक-दूसरे के पास से गुजर जाते थे। परिणाम यह होता है कि अचानक सारा भूगोल और इतिहास बदल जाता है और इनसानी रिश्तों की आवाजाही शुरु हो जाती है।

दुनिया को सुंदर बनाने की भरपूर कोशिश करती ये कविताएँ, हमारे लिए पुल बनाती हैं और हमें हँसना सिखाती हैं। उजास भरी जिंदगी के सपने दिखाती हुई प्रकाश मनु की कविताओं में गूँजता मैत्री का अनहद पाठकों को संबल प्रदान करता है और अलौकिक शांति के आलोक में ले चलता है, जहाँ दुनिया वाकई खूबसूरत हो जाती है।

इन कविताओं में संवेदनाओं को भरपूर बचाने की कोशिश है। नई उम्मीदें और नये संकल्प हैं। विचार और संवेदना की बुनावट है। कुल मिलाकर इनमें अपने समय की लय, मुखर संवेदन है और जिंदगी की थकान, निराशा, तनावों और ऊब के बीच से अपनेपन को तलाशने का उद्वेग है।

सविता मिश्र, एसोशिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, रानी भाग्यवती देवी स्नातकोत्तर महिला विद्यालय, बिजनौर (उ.प्र.), मो. : 09719659317

✧ ✧ ✧

तुम बेहिसाब कहाँ भागे जा रहे हो प्रकाश मनु?

प्रियदर्शन

कवि की दुनिया बहुत छोटी-छोटी मामूली-सी समझी जाने वाली चीजों से बनती है। उनके बीच नष्ट हो रहे जीवन और स्पंदन को पुनर्जीवित करने की जैसे एक कामना उनके भीतर है। यह सच है कि दुनिया की ज्यादातर कविताओं को साधारणता आकृष्ट करती है। इसलिए कह सकते हैं कि यह कोई नई बात नहीं है। लेकिन हमारे समय का एक कवि अगर इस बात को नए सिरे से कह रहा है तो उसको ध्यान से सुनने-पढ़ने की एक स्वाभाविक इच्छा होती है। इस साधारण दुनिया में पिता की स्मृति है (हालाँकि पिता की स्मृति पर हिंदी में कविताएँ भरी पड़ी हैं और उनमें बहुत सारी एक जैसी हैं), रिक्शेवाले, ढोलवाले, खिलौनेवाले के आगे सिर झुकाने की इच्छा है, और बार-बार ऐसा घर बसाने की कामना है, जिसमें ताकतवर लोगों के लिए जगह न हो।

दरअसल प्रकाश मनु की कविताओं में घर बार-बार आता है। कभी वह किताबों से भरा दिखता है, कभी प्रतिरोध करता नजर आता है, कभी किसी उद्घोष में लगा मिलता है।

हिंदी के वरिष्ठ लेखक प्रकाश मनु के लिए कविता 'छूटता हुआ घर' है। 'छूटता हुआ घर' दरअसल उनके पहले कविता संग्रह का नाम है, जिस पर उन्हें गिरिजा कुमार माथुर स्मृति पुरस्कार भी मिला। लेकिन यह शायद उनकी साहित्यिक यात्रा को समझने का एक प्रतीक भी हो सकता है। कविता के घर से निकले प्रकाश मनु ने साहित्य की कई विधाओं में अलग-अलग घर बसाए। हिंदी में लगभग विलुप्त होते जा रहे बाल साहित्य की साँसें जिन लेखकों ने थाम रखी हैं, उनमें प्रकाश मनु भी हैं। इसके अलावा आलोचना, साक्षात्कार, कथा-लेखन और न जाने कितनी विधाओं में उन्होंने लगातार काम किया। उनका विपुल अध्ययन, उनकी सुदीर्घ स्मृति और उनका बहुत धीरज के साथ किया गया लेखन उन्हें समकालीन हिंदी साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण लेखक बनाते हैं।

उनकी कविताओं पर कुछ लिखने से पहले इस पृष्ठभूमि को याद करने का मकसद इस सवाल की ओर भी ध्यान खींचना है कि जो लोग बहुत सारी विधाओं में काम कर रहे होते हैं, वे लौट-लौटकर कविता तक क्यों आते हैं? क्या कोई चीज है जो कहीं और नहीं समाती और सिर्फ कविताओं में कही जा सकती है? निस्संदेह ऐसी चीज है जिसके

लिए छूटे हुए घर की ओर कवि को लौटना पड़ता है।

प्रकाश मनु की कविताएँ पढ़ते हुए पहला ख्याल तो यही आता है कि वे कविता में विराट आख्यानों को खारिज करते हुए सूक्ष्म स्पंदनों की पहचान करते हैं। बल्कि उनकी एक कविता 'एक कवि की दुनिया' को उनके घोषणा-पत्र की तरह पढ़ा जा सकता है। उनके मुताबिक यह एक छोटी-सी दुनिया है, जिसमें धनपशुओं का आगमन निषिद्ध है, यहाँ किसी तख्तनशीं का राज नहीं चलता और यहाँ ताकतवाले आकर थरथराते हैं। इस कविता का अंत वे इन शब्दों से करते हैं, 'कला और साहित्य की दुनिया के ताकतवर बाहुबलियों और परम आचार्यो मेरी वह सीधी-सरल और फूलों से महकती दुनिया कमजोर है मगर इतनी कमजोर भी नहीं कि तुम्हारे जैसे महाबलियों के घमंडी गुस्से, फूत्कार और षड्यंत्र से तड़क जाए कल तुमने अपने पैरों से रौंदा था जो घोंसला नन्हीं चिड़िया का सुनो, जरा सुनो कि आज फिर उसकी गुंजार सुनाई देती है सुनाई देती रहेगी कल-परसों युगांतर बाद भी!'

इन कविता पंक्तियों को उद्धृत करने का एक उद्देश्य यह भी बताना है कि प्रकाश मनु ध्वंस पर रचना की जीत का जो साहित्य का बुनियादी भरोसा है, उसके प्रखर प्रवक्ता हैं। दूसरी बात यह कि कविता उनके लिए सहज साँस लेने वाली बात है, किसी विचारधारा के आतंक या आकर्षण में लिखी जाने वाली चीज नहीं। जब बारिश होती है तो उसके साथ वे अपना मैल भी बहा सकते हैं और दुनिया की पारदर्शिता को पहचान सकते हैं।

यह सहसा ध्यान आता है कि कविता में निपट वर्तमान के उजास को पकड़ते हुए, छोटी और मासूम चीजों के संसार में वह खोई हुई आत्मीयता और पारदर्शिता ढूँढ़ते हुए जो अन्यथा जीवन में नहीं बची है, प्रकाश मनु अपनी कविता रचते हैं। उनकी कविता के बसाए हुए परिसर में कोई नन्ही-सी बच्ची फूलों और तितलियों से खेलती हुई एक रंगीन गुब्बारा पकड़कर सो सकती है और गुब्बारा हवा में उड़ता रह सकता है और धूप हँसती रह सकती है।

दरअसल यह कविता के भीतर कवि का अपना प्रतिरोध है। युद्धोन्मत्त महत्त्वाकांक्षाओं से लैस, सब कुछ रौंदते चल रहे घोड़ों के आगे वे यह घोषणा करने में नहीं हिचकते कि उनकी कविता का जो घर है, वह किसी लड़ाई में शामिल नहीं है। वे जानते हैं कि शामिल न होना भी प्रतिरोध है। लेकिन यह खामोशी से शामिल न होने की प्रक्रिया नहीं है, यह बिल्कुल चीखकर, बर्बर हमलों की व्यर्थता बताने का उपक्रम है, अंत में यह कहते हुए कि 'और यह घर किसी इतिहास में शामिल नहीं किया, इसने कोई रक्तपात नहीं बहाया, रक्त और सदियों की तेज उथल-पुथल और भूकंपों की मार में एक ही जगह ठहरा सा अपनी चाल चलता जाता है।'

क्या अब भी कवि के रूप में प्रकाश मनु की पक्षधरता पर कोई संदेह करने की वजह रह जाती है? संग्रह की कविताएँ बार-बार याद दिलाती हैं कि कवि की दुनिया बहुत छोटी-छोटी

मामूली-सी समझी जाने वाली चीजों से बनती है। उनके बीच नष्ट हो रहे जीवन और स्पंदन को पुनर्जीवित करने की जैसे एक कामना उनके भीतर है। यह सच है कि दुनिया की ज्यादातर कविताओं को साधारणता आकृष्ट करती है। इसलिए कह सकते हैं कि यह कोई नई बात नहीं है। लेकिन हमारे समय का एक कवि अगर इस बात को नए सिरे से कह रहा है तो उसको ध्यान से सुनने-पढ़ने की एक स्वाभाविक इच्छा होती है। इस साधारण दुनिया में पिता की स्मृति है (हालाँकि पिता की स्मृति पर हिंदी में कविताएँ भरी पड़ी हैं और उनमें बहुत सारी एक जैसी हैं), रिक्शेवाले, ढोलवाले, खिलौनेवाले के आगे सिर झुकाने की इच्छा है, और बार-बार ऐसा घर बसाने की कामना है, जिसमें ताकतवर लोगों के लिए जगह न हो।

दरअसल प्रकाश मनु की कविताओं में घर बार-बार आता है। कभी वह किताबों से भरा दिखता है, कभी प्रतिरोध करता नजर आता है, कभी किसी उद्घोष में लगा मिलता है। ऐसा लगता है जैसे कवि के लिए घर उसकी वह दुनिया है, जहाँ वह खुद को सबसे सुकून में महसूस करता है, जहाँ बैठकर वह खुद को सबसे सहजता और सच्चाई से व्यक्त करता है।

यह सच है कि प्रकाश मनु कविता का अपना कोई मुहावरा नहीं बनाते। शायद वे इसकी परवाह भी नहीं करते। कविता उनके यहाँ बीच-बीच में आती है और 'अभी बिल्कुल अभी' वाली अभिव्यक्ति पा लेती है। समकालीन संसार का जो काव्य-अनुभव है, इसके जो काव्य विषय हैं, वे यहाँ दुहराए से भी मालूम होते हैं तो सुकर प्रतीत होते हैं। बेशक, कुछ कविताओं में वर्णनात्मकता चली आती है जो प्रकाश मनु के पूरे रचना-कर्म का विशिष्ट गुण है। वे किसी भी बात को संलग्नता से, उसके बहुत सारे रेशे-धागे खोलते हुए, लिखते हैं। यह उनके गद्य का भी वैशिष्ट्य है और उनकी कविता का भी।

प्रकाश मनु की कई कविताएँ अपने समकालीनों पर हैं। दिवंगत कुबेर दत्त की स्मृति में बहुत संवेदनशील ढंग से शुरू हुई कविता हालाँकि फिर समकालीन कवियों के जिक्र से जुड़ जाती है और उसका मूल आस्वाद कुछ क्षतिग्रस्त होता है, लेकिन फिर भी यह बात महसूस की जा सकती है कि एक मित्र के बारे में वे कितनी मार्मिकता से सोच पाते हैं। इसी तरह गुरुशरण सिंह को याद करते हुए वे सुरजीत पातर को ले आते हैं और रामदरश मिश्र के सम्मान में लिखी कविता में आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी और नंददुलारे वाजपेयी की स्मृति को शामिल करते हैं।

साफ है कि कविता या स्मृतियाँ उनके लिए कोई कटी-छँटी चीज नहीं है, एक समग्रता में जी जाने वाली बात है, इसका कुछ मोल कविता को भले चुकाना पड़े। बल्कि कई बार ऐसा लगता है कि इस समग्रता ने कविता को कुछ और उद्भासित, कुछ और गरिमादीप्त कर दिया है। चित्रकार हरिपाल त्यागी की बात करते हुए उन्हें नागार्जुन, त्रिलोचन का ख्याल आता है और डॉ. रामविलास शर्मा पर कविता लिखते हुए वे सुभद्राकुमारी चौहान तक चले जाते हैं। रमेश रंजक,

विष्णु खरे सब इस कविता संग्रह में मौजूद हैं। इन कविताओं को पढ़ते हुए यह भी समझ में आता है कि प्रकाश मनु ने सिर्फ लिखने के लिए इन पर नहीं लिखा है, किसी तात्कालिक भावुकता में नहीं, बल्कि दीर्घकालिक संवेदना के बीच लिखा है। अपने समकालीन ये सहयात्री इन्हें मथते हैं।

'जिस घर के जिक्र से बात शुरू हुई थी, यह पूरा संग्रह जैसे उसे बसाने की कोशिश है - अपने मित्रों से, उनकी स्मृति से, आस-पास पसरी चीजों से, चिड़ियों से, बच्चों से, नरम धूप से, हिंसा के खिलाफा ली जाने वाली प्रतिज्ञाओं से और उन सबसे जिनमें एक सहज मानवीय संसार संभव होता है। संग्रह में माँ और बेटी को लेकर भी कविताएँ हैं। एक लंबी कविता पुश्किन पर है, जिसमें फिर से टॉलस्टॉय और दोस्तोएवस्की चले ही आते हैं (जो प्रकाश मनु का स्वभाव देखते हुए सहज-संभाव्य है)।

लेकिन जहाँ मैं इस बात को छोड़ना चाहता हूँ, वहाँ खुद को अपनी कविता में प्रश्नांकित करते प्रकाश मनु हैं। वे बिल्कुल मर्मभेदी लहजे में लिखते हैं :-

'कौन हो तुम,
क्या हो तुम, कहाँ तुम्हें जाना है प्रकाश मनु?
कहाँ दौड़े जा रहे हो तुम बेहिसाब?
जिधर दिल कहता है कि सच वहाँ है दमकता
दौड़ते हैं तुम्हारे पैर तुम्हारी आँखें तुम्हारा जिस्म
तुम्हारी एक-एक साँस तक
और तुम पागल जुनून में धुनते जा रहे हो रास्ते की धूल
ऐसे तो बरबाद हो जाओगे तुम प्रकाश मनु और मिलेगी नहीं तुम्हारी राख और हड्डियाँ तक...।'

किसी दमकते सत्य की तलाश में पागलों की तरह दौड़ते हुए ही हासिल होती हैं कुछ कविताएँ, जिन्हें हम अपनी लथपथ आत्माओं में महसूस करते हैं। निश्चय ही प्रकाश मनु के संग्रह में कुछ कविताएँ ऐसी हैं।

प्रियदर्शन, ई-4, जनसत्ता सोसाइटी, सेक्टर 9, वसुंधरा, गाजियाबाद-201012
मो. : 9811901398, ई-मेल : priyadarshan.parag@gmail.com

✧ ✧ ✧

बाल-सखा प्रकाश मनु का रचना-वैविध्य

आरती स्मित

दिल्ली के कोलाहल से दूर, दिल्ली की राजनीति से दूर, बच्चों के संसार को रंगमय बनाने में संलग्न प्रकाश मनु ने जीवन की तमाम उलझनों-सुलझनों के बीच 'नंदन' पत्रिका से लगभग पच्चीस वर्षों का साथ निभाकर, अपने आरंभिक बाल पाठकों को युवा और अब तो प्रौढ़ होते भी देखा होगा। मगर न उनके बाल साथी कम हुए, न उनके अंदर का बच्चा बड़ा हुआ। हाँ, उनकी उम्र जरूर बढ़ी, जिसका उन पर कोई असर नहीं। हो भी कैसे? जिनके पास हजारों की संख्या में नन्हे-मुन्ने साथी हर समय हों, भला उन्हें बुढ़ापा छू भी कैसे सकता है! एक ही परिवार में पीढ़ी-दर-पीढ़ी उनके पाठक तैयार होते जाते हैं। बचपन में मैं 'नंदन' के माध्यम से उन तक पहुँची, अब मेरे बच्चे उनके कहानी और कविता-संग्रह से और अब तो उपन्यास से भी जुड़कर, उनके मुरीद बनते जा रहे हैं। हैं न मजेदार!

पके बाल, गोल-मटोल चेहरा, चेहरे पर मासूमियत और अलमस्ती, थिरकती हँसी और चपर-चपर बोलती-डोलती, खिलखिलाती आँखें। सीधा-सादा लिबास, कोई बनाव-शृंगार नहीं। बोलें तो शहद की वर्षा, फूलों की सुगंध लिए बसंती हवा-सी। पहले कभी मिली नहीं, मगर लगता है, कितनी बार मुलाकात हो चुकी है हमारी। और परिचय जानने का उनका अंदाज, "क्या नाम है बेटा?...अरे तुम! हाँ-हाँ, समझ गया, बहुत अच्छी समीक्षा लिखी थी तुमने! मैंने पढ़ी, आनंद आ गया।"

पहली मुलाकात में इतना वात्सल्य-निसर्ग से फूटता हुआ, कोई कैसे न भीगे इसमें! यही तो स्वाभाविकता है उनकी। जी हाँ, सही समझे, मैं बच्चों के सखा और बाल साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर प्रकाश मनु की ही बात कर रही हूँ, जिनसे पहली बार मिलने पर मुझे अपनी कविता 'अंतर्मन में पलता है इक बच्चा' सार्थक लगने लगी, बल्कि उसे जीवंत देख रही थी, मनु जी में।

किसी ने सच ही कहा है, "पुस्तकें मित्र होती हैं- सच्ची मित्र। हर उम्र, हर प्रांत, हर धर्म-संप्रदाय के लोगों की सहचरी। वे हमें बाल सखी की तरह खींचकर-घसीटकर भी सही राह पर चलने को विवश करती है। कानों में आकर कहती है, 'मैं हूँ न तुम्हारे साथ,

तुम्हारी हमजोली!' और पुस्तक को पाकर मन सचमुच आह्लादित हो उठता है।" यह संगिनी यदि बालपन से हाथ थाम लेती है तो सचमुच व्यक्तित्व-गठन के लिए अतिरिक्त सावधानी की आवश्यकता नहीं पड़ती। खासकर वैसी पुस्तकें जो अपनी लगें, निजी अनुभवों और भावनाओं का संसार। मैंने देखा है रंग-बिरंगी पुस्तकों के प्रति शिशु का आकर्षण। यहीं से शुरू हो जाती है दोस्ती, यहीं से शुरू होता है गुणी व्यक्तित्व का गठन और बाल साहित्य इसमें महती भूमिका निभाता है।

निस्संदेह वे साहित्यकार जो बाल मन को अपना घर बना पाने में सक्षम होते हैं, और स्वयं उस बचपन को स्वाभाविक रूप में जीते हैं, भुलाए नहीं भूलते। वरिष्ठ कथाकार प्रकाश मनु से मिलकर ऐसी ही अनुभूति हुई। निश्चय ही, बच्चों के लिए लिखी जाने वाली रचना, चाहे वह किसी भी विधा में हो, स्वयं को उस अवस्था में पहुँचाए बिना, उस अनुभूति से गुजरे बिना नहीं लिखी जा सकती, और सार्थक बाल साहित्य वही रच सकता है, जिसने उसे जीवंत रखा हो-वही भोलापन, वही मासूमियत, वही निर्दोषता! तभी शब्द अपने अबोधपन के साथ कागज पर उतर पाते हैं और तितली बनकर पंख फड़फड़ाते हैं तो कभी जुगनू बनकर तारों का भ्रम पैदा करते हैं।

दिल्ली के कोलाहल से दूर, दिल्ली की राजनीति से दूर, बच्चों के संसार को रंगमय बनाने में संलग्न प्रकाश मनु ने जीवन की तमाम उलझनों-सुलझनों के बीच 'नंदन' पत्रिका से लगभग पच्चीस वर्षों का साथ निभाकर, अपने आरंभिक बाल पाठकों को युवा और अब तो प्रौढ़ होते भी देखा होगा। मगर न उनके बाल साथी कम हुए, न उनके अंदर का बच्चा बड़ा हुआ। हाँ, उनकी उम्र जरूर बढ़ी, जिसका उन पर कोई असर नहीं। हो भी कैसे? जिनके पास हजारों की संख्या में नन्हे-मुन्ने साथी हर समय हों, भला उन्हें बुढ़ापा छू भी कैसे सकता है! एक ही परिवार में पीढ़ी-दर-पीढ़ी उनके पाठक तैयार होते जाते हैं। बचपन में मैं 'नंदन' के माध्यम से उन तक पहुँची, अब मेरे बच्चे उनके कहानी और कविता-संग्रह से और अब तो उपन्यास से भी जुड़कर, उनके मुरीद बनते जा रहे हैं। हैं न मजेदार!

मनु जी का रचना-संसार अति व्यापक है- उनके व्यक्तित्व की ही तरह। कई बड़े साहित्यकारों ने बाल साहित्य रचा, किंतु न उनका मन बच्चा हो सका, न लेखन में वह बचपन उतर सका। चेहरे पर गांभीर्य लिए बड़ी ही गरिमामयी मुद्रा में साहित्यिक गोष्ठियों में इन्हें डोलते देखा है, मगर कोई बच्चा उमगकर उनके पास जाता नहीं दिखता। फिर क्या बात है इनमें कि बच्चे उम्र के फासले को भूलकर उन्हें दादा जी के मित्र नहीं, अपना मित्र समझते हैं। ऐसा मित्र, जो उनके मनोभाव को बिना कहे जान लेता है। एक और खासियत है- उनकी बातें चाशनी में लपेटी तो होती हैं, मगर सकारात्मक ऊर्जा लिए। उन्हें कल्पना का लोक बसाना तो आता ही है, साथ में यथार्थ की कांक्रीट भी बिछाते चलते हैं। बच्चों और किशोरों की कल्पना और उनकी तर्क-शक्ति के विस्तार के लिए वे खुला आसमान मुहैया कराते हैं। किशोर उपन्यास 'खजाने वाली चिड़िया'

इसका प्रमाण है।

प्रकाश मनु व्यक्तित्व संरचना में माहिर हैं। चार मित्र हैं, तो चारों के बाह्य व्यक्तित्व को इस तरह बुना कि वे उनके अंतर्व्यक्तित्व द्वारा आत्मसात किए-से प्रतीत होते हैं। मोटा भुल्लन अपने को मोटा कहने पर खुदर-खुदर हँसी हँसता है। पिंटू बिल्कुल दुबला-पतला, दोस्तों ने जिसे 'लंबा सींक' नाम दिया है। संजू तेज दिमाग वाला और खासा होशियार, तो नील नरम दिल वाला, जरा सी बात पर रो देता। मनु जी बच्चों की बात उनकी ही शैली में करते हैं। जैसे कि- "फिर एक दुबला-पतला पिंटू था। ऐसा सींकिया कि जैसा सिर्फ पिंटू ही हो सकता था। एकदम लंबा, पतला, सींक जैसा शरीर।" अब लेखक के यह कहते ही कि, 'जैसा सिर्फ पिंटू ही हो सकता था', बच्चों के दिमाग में तर्कसहित एक खाका खिंच जाता है। बच्चे पढ़ते हुए सहमति में सिर हिलाते हैं, क्योंकि जवाब हाजिर है, 'एकदम लंबा, पतला, सींक जैसा शरीर'। अब बच्चों की कल्पना को पंख फैलाने के लिए तर्कयुक्त यथार्थ धरातल मिल जाता है और वे इन चारों बच्चों के साथ हो लेते हैं।

इस उपन्यास में रोमांच है, साहसिक कारनामे हैं, बुद्धि और विवेक का सामंजस्य है, भय है, मगर भय दूर भगाने के उपाय भी हैं। लोभ है, किंतु लोभ स्वार्थपरक नहीं, यहाँ भी परहित की भावना निहित है। बच्चों को खजाने वाली चिड़िया, जिसकी कहानी उन्होंने सुनी है, वह इसलिए चाहिए ताकि उनके माता-पिता की तंगी दूर हो सके, आस-पड़ोस की बदहाली दूर हो सके, गरीब बच्चे स्कूल जा सकें। मनु जी ने कहीं भी नैतिकता नहीं बघारी और न ही जबरदस्ती शाश्वत मानव-मूल्यों को थोपा है। कहानी अपनी गति से चलती हुई, काफी रोचक घटना-क्रम से गुजरती हुई, एक के बाद एक कल्पना और किस्से में सुनी बातों को सच करती हुई आगे बढ़ती है, और हर एक पड़ाव पर नई कहानी को नए अंदाज में जन्म देती है। मजे की बात कि ये सारे घटना-क्रम बिल्कुल अलग होते हुए भी एक-दूसरे से इस तरह जुड़ते जाते हैं, मानो एक ही जंजीर की कड़ी हों।

खजाने वाली चिड़िया इस उपन्यास का केंद्र-बिंदु है। सभी घटनाएँ, कथाएँ, स्थिति-परिस्थितियाँ इसी की धुरी पर घूमती प्रतीत होती हैं। कहानी में सुने राजा और उसके महल का सच, जंगल का सच, अहंकार और विनम्रता की तुला में विनम्रता का सच, आलस्य और परिश्रम में परिश्रम की विजय का सच, प्रेम और घृणा में प्रेम की जीत का सच, कला की दुनिया का सच, और अंततः धन के ढेर पर बैठे सेठ के काले कारनामों का सच और उसकी बुराई पर साहस के साथ अच्छाई की जीत का सच-कितने ही सच के दरवाजे खोल दिए हैं प्रकाश मनु ने। अंततः यह भी जतला दिया कि खजाने वाली चिड़िया सिर्फ आत्मतुष्टि की चीज है। श्रम करके जीविकोपार्जन और दूसरों की यथासंभव मदद से जो आनंद प्राप्त होता है, उससे बढ़कर कोई खजाना नहीं। और बुरे का अंत बुरा ही होता है। बाईस अध्यायों में विभाजित यह उपन्यास प्रत्येक अध्याय या खंड में एक नई कहानी की यात्रा पर, नए रोमांचक अनुभव को जन्म देता हुआ बिल्कुल नई दुनिया में ले जाता है, जहाँ कहानी घटना की मदद से एक नया रहस्य खोलती है।

इस प्रकार, बाईस खंडों का यह उपन्यास बाईस नई और रोमांचक कथा-यात्रा का पड़ाव पार कर निष्कर्ष तक लाता है कि वास्तव में खजाने वाली चिड़िया है क्या? बतौर पाठक, इस उपन्यास ने मुझे आनंद दिया और सीख भी। निश्चय ही किशोरों के लिए यह बेहतर साथी सिद्ध होगा।

प्रकाश मनु के अन्य बाल उपन्यासों में, 'एक था ठुनठुनिया', 'गोलू भागा घर से' चर्चित रहे। बड़ों के लिए लिखे गए उपन्यासों में, 'कथा सर्कस' ने भी धूम मचाई। 'यह जो दिल्ली है' और 'पापा के जाने के बाद' ने भी वयस्क पाठकों के दिल में अपनी पैठ बना ली। यहाँ प्रसिद्ध व्यंग्यकार डॉ. हरीश नवल की उस टिप्पणी का हवाला देना उचित जान पड़ता है, जो एक संवाद के दौरान उन्होंने संप्रेषित किए थे।

"प्रकाश मनु एक बहुआयामी व्यक्तित्व के स्वामी हैं। उन्हें मैं विगत पैंतीस वर्षों से जानता हूँ। वे एक श्रेष्ठ पत्रकार तो रहे ही हैं, साथ ही उनका साहित्यिक रूप भी प्रभावी है। बाल साहित्य के मर्मज्ञ मनु ने उत्कृष्ट कहानियाँ और कविताएँ भी लिखी हैं। उनका लिखा उपन्यास 'कथा सर्कस' बहुत चर्चित हुआ था। 'यह जो दिल्ली है' और 'पापा के जाने के बाद' उनके अन्य उपन्यास हैं। मुझे 'पापा के जाने के बाद' बहुत भाया था। इस उपन्यास में मनु ने जिस प्रकार एक चित्रकार के संघर्षों को प्रस्तुत किया, वैसा बहुत कम रचनाओं में आ पाया। वसंतदेव कलाकार है। उसके तनाव को मानो लेखक ने खुद जिया है। वसंतदेव के देहावसान के बाद भी वह था। और संघर्ष व्याप्त है, जो पाठक को मथता है। अंतर्विरोधों की ताकत को प्रकाश मनु ने बखूबी दर्शाया है।... दरअसल महानगर और महानगरीय वेदना प्रकाश जी का मुख्य चिंतन का विषय रहा है। उनकी रचनाओं में वह अकसर मुखरित होता है। मुझे इस उपन्यास में इस वेदना की अनुभूति बार-बार हुई। "जो हर क्षण जलेगा, वही सच्चा रचनाकार होगा" - प्रकाश मनु का यह कथन सच्चा और प्रेरक लगता है। वे मेरे मित्र और सहयात्री रहे हैं। उनके लेखन और उनके मानव को सलाम!"

'प्रकाश मनु के बाल साहित्य की समृद्धि उनकी संख्या से नहीं, गुणवत्ता से मापी जानी चाहिए। ऐसा नहीं है कि उन्होंने कम लिखा या उम्र के दबाव में लिखना कम कर दिया है। वे लिख रहे हैं, जमकर लिख रहे हैं, उसी स्फूर्ति और लगन के साथ कि बाल साहित्य को कुछ नया देंगे। बहरहाल, नन्हे साथियों के लिए उनके पिटारे में कई कहानी संग्रह हैं, 'भुलक्कड़ पापा', 'मैं जीत गया पापा', 'तेनालीराम की चतुराई के किस्से', 'लो चला पेड़ आकाश में', 'इक्यावन बाल कहानियाँ', 'चिन-चिन चूँ'। इसी तरह 'हाथी का जूता', 'इक्यावन बाल कविताएँ', 'बच्चों की एक सौ एक कविताएँ', 'बच्चों की अनोखी हास्य कविताएँ उनकी बाल कविताओं के संग्रह हैं। 'हिंदी बाल कविता का इतिहास' उन्होंने लिखा है और अब तो उनका वृहत् इतिहास-ग्रंथ हिंदी बाल साहित्य का इतिहास भी आ चुका है। इनके साथ ही बड़ों के लिए उनके कविता संग्रह 'छूटता घर' और 'एक और प्रार्थना' की अधिकांश कविताएँ भीतरी बेचैनी और वैचारिकी के साथ लिखी और जाँची-परखी गई हैं। इसी प्रकार 'प्रकाश मनु की लोकप्रिय कहानियाँ' कथा-संग्रह में

कुल तेरह कहानियाँ हैं, जो अपनी-अपनी विशिष्टता के कारण पाठकों के दिल में घर किए हुए हैं। फिलहाल, बच्चों की दुनिया में लौट चलते हैं।

'बच्चों की एक सौ एक कविताएँ' कविता-संग्रह के अंदर बच्चों का पूरा संसार सिमटा है। जहाँ तक उनकी दृष्टि जा सकती हैं, जहाँ तक कल्पनाएँ उड़ान भर सकती हैं और जहाँ तक बुद्धि कुलाँचे भर सकती है, वे सभी विषय यहाँ मौजूद हैं- सीधे-सादे सरल परिधान में खिलंदड़ प्रवृत्ति के साथ। 'नील परी', 'चाँद सलोना', 'नन्हे तारों का संसार' जैसी कविताएँ नन्हे-मुन्नों को कल्पना लोक में सैर कराती हैं तो 'मम्मी', 'पापा तंग करता है भैया', 'दीदी बहुत बुरी है', और दादा, दादी, नानी को लेकर लिखी गई कविताएँ पारिवारिक रिश्तों की महक से मन तर कर देती है। 'घर में मचा कोहराम' बाल कविता बच्चों की शरारतों से भरपूर है। अलग-अलग संबंधों से अलग-अलग जुड़ाव, खीज, प्यार-दुलार, शिकवा-शिकायत- सबकुछ है इन कविताओं में, जो बच्चों का अपना है। बच्चे खुद को कविताओं में पाते हैं और उनकी कल्पना और सच एकाकार हो जाते हैं। 'नील परी' की पंक्तियाँ हैं-

आसमान से हँसती गाती
नील परी भू पर आती है
आकर के नन्ही बगिया को
खुशबू से यह भर जाती है।

दूसरी तरफ, बच्चों के लिए माँ से प्यारा कोई नहीं। क्योंकि वे जानते हैं कि "रूठूँ तो बस बात बनाकर, पल में मुझे मनाती मम्मी।" यह माँ ही तो है, जो हमारी गलतियों पर गुस्सा करती है, मगर सबसे अधिक प्यार भी और उस गुस्से में भी असीम प्यार छिपा होता है।

कभी-कभी बच्चों को घर-परिवार से बाहर की दुनिया में ले चलते हैं मनु जी, जहाँ ज्ञान-विज्ञान की बातें हैं, देशभक्ति का जज़्बा है, खेल है, मुहल्ले में रहने वाले और रोज हमारे काम आने वाले लोग हैं। वे लोग भी, जिन्हें हम अपने समाज का हिस्सा नहीं मानते, और साथ में हैं नन्ही दुनिया की अपनी परेशानियाँ। कई ऐसी चीजें, कई ऐसी बातें जो बच्चों को घर और बाहर के परिदृश्य से तालमेल करना सिखा जाती हैं- चुपके-चुपके, दबे पाँव। एकल परिवार से संयुक्त परिवार की मिठास का अहसास कराते मनु अपने बाल साथियों को घर के बाहर गली, नुक्कड़ पर ठेलिया लगाए सब्जी वाले से मिलवाते हैं। सड़क और गलियों में आ-जा रहे रिक्शे वाले से भेंट कराते हैं, उसकी मेहनत से रू-ब-रू कराते हैं, फिर शोषक वर्ग के प्रतीक लाला रामदीन की ओर बढ़ जाते हैं। झोंपड़ियों के बच्चों से मुलाकात नन्हे पाठकों का दृष्टि-विस्तार करती है। दिवाली, होली, दशहरा और नए साल के उत्सव पर बात करते हुए मनु बच्चों को स्कूली जीवन में लौटाते हैं, तो पाठ्यक्रम और स्कूली दिनचर्या की पीड़ा 'कितना और पढ़ूँ मैं' में

अभिव्यक्त होती है। घड़ी की टिक-टिक से परेशान बच्चों की मनःस्थिति को खूब पहचाना है उन्होंने -

सुबह हो या शाम
हर वक्त हड़बड़ी है
आफत मेरी घड़ी है।

कंप्यूटर और इंटरनेट अब बच्चों के जीवन का अभिन्न अंग बन चुके हैं। कार्टून देखने के साथ ही छोटे-छोटे प्रोजेक्ट के लिए अब इंटरनेट का सहारा लिया जाता है, खासकर ईमेल का जिसकी जानकारी 'कंप्यूटर' और 'ईमेल' कविता देती है। मनु जी एक ओर पार्क में घूमने और खेलने का आनंद देते हैं, तो दूसरी ओर 'दिल्ली का भीड़-भड़क्का' और 'गाँव का मेला' भी दिखला जाते हैं। बच्चों की दुनिया में शामिल, घर से जंगल तक के जीवों को उन्होंने कविता का विषय बनाया है, जैसे- जूगनू, मेंढक, भालू, तोता, बंदर, कबूतर, हाथी से लेकर तितली और तो और मक्खी भी उनकी कविता की नायिका है। इसी प्रकार छाता, जोकर, एक मटर का दाना भी उनकी कविता का विषय है। कवि हृदय संवेदनशील होता है। उसके आक्रोश में भी करुणा अंतर्भूत होती है। मनु नन्हे-मुन्नों को अपने ऊपर और अपने देश पर गर्व करना सिखाते हैं। 'वह कविता रच जाओ', 'उच्च हिमालय सा अभिमान', 'देश हमारा सपना है', 'हमीं मुकुट हैं' जैसी कविताएँ इसी श्रेणी में आती हैं। 'हमीं मुकुट हैं' की ये पंक्तियाँ देखें -

हम हैं नन्हे वीर सिपाही
भारत देश विशाल के,
हमीं मुकुट हैं मणियों वाले
इसके उज्ज्वल भाल के!

प्रकाश मनु की कविताएँ हलकी-फुलकी मुद्रा में अर्थ-गांभीर्य लिए है। ये बच्चों के लिए कोरे मन-बहलाव की कविताएँ नहीं हैं, बल्कि एक लक्ष्य की ओर उन्मुख पड़ाव-दर-पड़ाव आगे बढ़ने और बाल मन को व्यापक परिवेश देनेवाली रचनाएँ हैं। हँसी-खेल में ज्ञान देने वाली तथा परिवार, समाज और राष्ट्र से संबंध जोड़ने वाले सेतु जैसी हैं, जिनसे व्यक्तित्व निर्माण होता है और जिन पर किसी व्यक्ति का एक इकाई के रूप में प्रभाव पड़ता है।

प्रकाश मनु के छोटे-से मुँह वाले पिटारे में हास्य कविताओं की फुलझड़ियाँ भी हैं। 'टूट गया किस्से का तार', 'मिल्ली टिल्ली', 'मिस्टर रैट', 'मेंढ़क की पतलून', 'ऐंचा-बैंचा रूप तुम्हारा', 'फूटा ढोल', 'फुदकू जी अब कहाँ गए' - इसी तरह की लगभग नब्बे-पंचानवे कविताएँ, जिन्हें पढ़कर नन्हे मियाँ लोट-पोट हो जाएँ। जरा 'फूटा ढोल' की बानगी देखिए -

मेरा भैया गोल-मटोल
दूध-जलेबी जैसे बोल,
दिन भर करता है शैतानी
रोता जैसे फूटा ढोल।

प्रकाश मनु की कलात्मकता के क्या कहने! शब्द-चयन, उपमा और रूपक का सटीक और कभी-कभी अनोखा प्रयोग। अपनी बात मनवाने में उस्ताद, मगर हँसते-मुसकराते हुए। वे जितने अच्छे बाल कवि हैं, उतने ही बेहतर बाल कहानीकार और जितने बेहतर कहानीकार हैं, उतने ही श्रेष्ठ किस्सागो। उनकी कहानियों में भी बच्चों के सुख-दुख, सपने, कल्पनाएँ, भाव-विचार, शरारतें, जिज्ञासाएँ और नन्ही दुनिया की ढेर सारी समस्याएँ व परेशानियाँ शामिल हैं। बाल जीवन से जुड़ी वे तमाम बातें, तमाम प्रसंग तथा संदर्भ जिन्हें हम वयस्क अकसर अनदेखा कर देते हैं, प्रकाश मनु ने उन्हें कहानी का आधार बना दिया या कहानी का केंद्र-बिंदु। इन कहानियों की अपनी छटा है, अपना खिलंदड़पन मगर बगैर ढीलेपन के-एकदम चुस्त और फुर्तीली। इनमें 'तितली का घर' और 'चींटी ने कहा' नन्हे-मुन्ने के लिए शिशुकथाएँ हैं, तो 'तोता-तोती चले घूमने', 'पुरानी तलवार', 'चंदू की छींक' और 'दोस्त राक्षस' गुदगुदाकर हँसाने वाली रचनाएँ हैं। इसी प्रकार 'मुनमुनलाल ने बनाई घड़ी', 'गंगा दादी जिंदाबाद', 'होमवर्क का पहाड़', 'मास्टर जी' जैसी कहानियाँ बच्चों को आगे बढ़ने की प्रेरणा और साहस देती हुई, उनकी यात्रा में साथ-साथ चलती हैं। 'आकू, बाकू और खरगोश' जैसी मजेदार कहानियाँ हैं, तो कुछ कहानियाँ बिना बोझ का अहसास दिलाए शिक्षाप्रद।

'प्रकाश मनु की चुनिंदा बाल कहानियाँ' सिद्ध करती है कि प्रकाश मनु बाल मनोविज्ञान के मर्मज्ञ है। बड़ी गहरी पैठ है उनकी। तभी तो उनकी कहानियाँ बाल मन को गुदगुदाती, कभी कुछ सिखाती, नई दिशा देती चलती है। इस पुस्तक में कुल दस कहानियाँ हैं। सभी अपने अंदर एक इंद्रधनुष समेटे हुए। भाव और व्यवहार जतलाने के साथ-साथ सीख देने की मनु जी की कोशिश बोझिल नहीं करती। इस तरह की कहानियों में 'मास्टर जी', 'दोस्ती का हाथ', 'जमुना दादी', 'अहा रसगुल्ले', 'झटपट सिंह' और' मिठाईलाल' का नाम लिया जा सकता है। मनु जी ने बालसुलभ शरारतों के लिए कहीं भी दंड का प्रावधान नहीं रखा है। बच्चे हैं तो शरारत करेंगे ही। संवेदनशील हैं, इसलिए गलतियाँ करने पर अपराध-बोध से भरेंगे भी। मगर यहाँ बड़ों का कर्तव्य क्या है? वे बच्चों की गलतियों के लिए उन्हें फटकारें, दंडित करें, तिरस्कृत करें-हमजोलियों या सगे-संबंधियों के सामने उन्हें लज्जित करें या फिर उनसे जाने-अनजाने में हुई गलतियों या गलत दिशा में बढ़े उनके कदमों को रोकने के लिए मूल कारणों की तह में जाकर उनका समाधान निकालें - वह भी स्नेह के साथ!

बाल मनोविज्ञान भी यही कहता है कि "बच्चों के व्यवहार का प्रतिकार न करें। बच्चों को समझने के लिए उस स्तर तक उतरें, फिर तय करें कि उनके व्यक्तित्व को कैसे निखारा जा सकता है।" प्रकाश मनु की अधिकांश कहानियाँ साबित करती हैं कि लेखन के समय वे एक बाल मनोवैज्ञानिक की भूमिका निभाते हैं। एक बात और, जो मैंने महसूस की - जिसे वर्तमान समाज में समझने की जरूरत भी है - वह है, बच्चों के प्रति हम वयस्कों के व्यवहार की रूपरेखा। लेखक के प्रायः सभी वयस्क पात्र क्षमाशील, धैर्यवान और मार्गदर्शक हैं। उनकी संवेदना बच्चों को स्पर्श करती है, अतुल स्नेह बच्चों को अच्छा बनने और बने रहने पर विवश करता है, चाहे वे वयस्क पात्र मास्टर जी और जमुना दादी हों, मिठाई के शौकीन बिरजू की माँ हो या रसगुल्ले के शौकीन ननकू की माँ। लेखक ने यही गुण 'दोस्ती' के मुख्य पात्र अनुराग में भी दर्शाए हैं। 'मास्टर जी' की कुछ पंक्तियाँ देखिए -

प्रशांत : मास्टर जी, मेरे मन में तो अँधेरा था। आपने दीया जला दिया। अब तो सब ओर प्रकाश ही प्रकाश है।

मास्टर जी : अँधेरा भी तुम्हारे भीतर ही था और प्रकाश भी तुम्हारे भीतर से फूटा है। अपने गाइड तुम खुद हो प्रशांत!

इस संवाद के बाद कहानी इन शब्दों के साथ खत्म होती है, "प्रशांत के भीतर-बाहर जो उजाला फूट पड़ा था, वह तो कभी खत्म हो ही नहीं सकता था। आज उसने सचमुच मन के दीए जलाए थे। शायद इसलिए मास्टर अयोध्या बाबू के घर से लौटते हुए भी उसे लग रहा था, जैसे वे उसके साथ-साथ चल रहे हैं।"

कहानी के ये अंश वयस्क व्यवहार को तय करने में मददगार हैं। बाल मन का अपने माता-पिता, अभिभावक, शिक्षक के व्यवहार के प्रति आश्वस्त होना उन्हें निश्चिंतता का भाव-बोध देता है। वे स्वयं को तब भी अकेला महसूस नहीं करते, जब माता-पिता दोनों नौकरी पेशा हों। इसी प्रकार अन्य कहानियाँ, जैसे - 'डाक बाबू का प्यार', 'मुनमुन ने बनाई घड़ी' परोपकार करने और घमंड न करने की सीख देती है। जैसा कि पहले भी मैंने कहा है, मनु जी शिक्षा का बोझ अलग से नहीं लादते। भाषा-शैली इतना सहज और स्वाभाविक वातावरण रचने में सक्षम है कि सभी घटनाएँ अपने घर-बाहर, आस-पड़ोस में घटित होती प्रतीत होती हैं। और यही सच भी है। मनु जी अपने नन्हे साथियों को उनके आस-पास की दुनिया से जोड़े रखते हैं। यहाँ इतना कहना अपेक्षित जान पड़ता है कि प्रौढ़ साहित्य भले ही बच्चों और किशोरों के लिए महत्त्वहीन हों, किंतु बाल साहित्य और किशोर साहित्य प्रत्येक वयस्क के लिए उपयोगी हैं। इससे वे अपनी भागमभाग की जिंदगी में भी अपने तथा दूसरे बच्चों को बेहतर समझ सकेंगे और इस नई पौध को सही रूप में पोषित कर सकेंगे। प्रकाश मनु बिना नीतिशतक लिखे यह समझा पाने में सक्षम हैं और इसलिए विशिष्ट बाल साहित्यकार हैं।

मनु जी के व्यक्तित्व की और कृतित्व की यह खासियत है कि वे जहाँ होते हैं, बस वहाँ होते हैं। दूसरी दिशा में भूलकर भी नहीं भटकते। एक उच्च कोटि का बाल साहित्य रचने के लिए जिन गुणों की अनिवार्यता है, वे सब उनमें कूट-कूटकर भरे हुए हैं। मगर अब जरा उनके वयस्क साहित्य पर नजर डालें तो विस्मय का आकाश विस्तृत होता जाता है। उन्होंने जितना बाल साहित्य और किशोर साहित्य रचा, उतना ही बड़ों के लिए भी। जितने खिलंदड़ेपन के साथ बाल रचनाएँ लिखीं, उतनी ही परिपक्वता और गंभीरता से अन्य रचनाएँ। उपन्यासों की चर्चा पहले ही कर चुकी हूँ। 'प्रकाश मनु की लोकप्रिय कहानियाँ' पत्रिकाओं में प्रकाशित और पाठकों द्वारा प्रशंसित कहानियों का संग्रह-रूप है। इसकी भूमिका में उन्होंने स्वयं स्वीकारा है -

"ये कहानियों जैसी कहानियाँ नहीं हैं। ये जिंदगी और कहानी के बीच की खाई को पाटने वाली ऐसी कहानियाँ हैं, जो अपने ढंग से अपनी भाषा और अभिव्यक्ति के अनौपचारिक रास्ते तलाशती हैं। और शायद शब्दों से ज्यादा जिंदगी पर यकीन करती हैं।"

इस संग्रह की कहानियों में, 'अंकल को विश नहीं करोगे', 'जोशी सर', 'एक सुबह का महाभारत', 'थैंक यू सर' को पाठकों का भरपूर प्यार और सकारात्मक प्रतिक्रिया मिली और इस सूचना से इनकार भी नहीं किया जा सकता, क्योंकि ये रचनाएँ वाकई दिल का एक कोना अपने लिए सुरक्षित कर लेती हैं।

'जोशी सर' पढ़कर मुझे अपनी प्राध्यापिकाएँ कृष्णा खन्ना और मीरा चौधरी याद आ गईं, जिनके वात्सल्य और पुस्तकीय सहयोग के बिना मेरा आगे बढ़ पाना कठिन था। एक कहानी की इससे बड़ी सफलता और क्या हो सकती है, जब पाठक अपने जीवन में उसे महसूसने लगे, उसे जीने लगे-स्मृतियों के द्वार पर वर्षों से खड़े रहने के बाद अनायास उसकी गहराई में उतरने को विवश हो और आर्द्र स्वर में कहे कि यह तो मेरी ही कहानी है। यह निजत्व ही इसका विशिष्ट गुण है। 'जोशी सर' का यह अंश देखिए- "जोशी सर की तमाम स्मृतियाँ भूचाल-सी उठीं और भीतर भरती चली गईं। अत्तू के शब्द अँधेरे और धुँधलके में बदलते जा रहे हैं और मैं निराश्रित उस अँधेरे समंदर में हाथ-पैर मार रहा हूँ। निरर्थक!" आत्मीयता की पराकाष्ठा के प्रकटीकरण हेतु कुछ और कहने की आवश्यकता कहाँ बचती है?

अन्य कहानियाँ, जैसे, 'असहमति', 'जादू', 'टूटे कपों का कोरस', 'यात्रा कभी खत्म नहीं होती', 'अंजलीना का नाटक', 'एक बूढ़े आदमी के खिलौने', और 'रंगी बाबू का रिक्शा' अलग-अलग विषयों को पूरी शिद्दत से उठाती और उसे अपनी मंजिल तक पहुँचाती हैं। 'असहमति' कहानी समाज के कई ज्वलंत मुद्दों पर हौले से उँगली रखती है। हलके से दर्द का अहसास होता है, फिर वही दर्द सुधी पाठकों को बेचैन किए रहता है। इसके कुछ अंश देखें - "फिर वे उठे, नमस्कार किया और चल दिए। वे इस आदमी से ऊपरी तौर पर असहमत थे, पर भीतर उसकी सच्चाई और सवालों का जवाब नहीं ढूँढ़ पा रहे थे।"

'अंकल को विश नहीं करोगे' कहानी पढ़कर वरिष्ठ कथाकार सिद्धार्थ वल्लभ ने मनु जी से कहा, यह कहानी 'उन्हें बुरी तरह बेचैन करनेवाली पाँच सात कहानियों में से एक है' और 'मनु, तुमने कम से कम एक बड़ी कहानी लिखी है।'

मैं आम पाठक की हैसियत से अन्य पाठक मित्रों के विचार से पूरी तरह सहमत हूँ, इसलिए उनकी ही राय साझा कर रही हूँ। "ये कहानियाँ भीतर की दुनिया और जीवन के बहिरंग में निरंतर आवाजाही करती कहानियाँ हैं। यही कारण है कि इनमें आत्मा का संगीत है। इनमें कविता सरीखी मर्म पुकार है तो आत्मकथा सरीखा निजत्व भी।"

प्रकाश मनु के कविता-संग्रह 'छूटता हुआ घर' और 'एक और प्रार्थना' उत्कृष्ट साहित्य की श्रेणी में अपनी पहुँच रखते हैं। 'छूटता हुआ घर' की कविताएँ जिस उच्च स्तर पर संवेदनाओं को झकझोरती, विचारों को मथती और चिंतन-शक्ति को ललकारती हुई अपने आस-पास के परिवेश को खुली आँख से देखने को बाध्य करती है, वे कहीं न कहीं समाज की विद्रूपताओं से सामना करने और उनका प्रतिकार करने की हिम्मत भी देती हैं। समाज और साहित्य में हो रहे घालमेल और राजनीतिक दबाव व प्रभाव को रेखांकित करते हुए प्रकाश मनु का कवि-हृदय कुव्यवस्था के प्रति विद्रोह करता है, किंतु उनका विद्रोह बहुत ही सूक्ष्म रूप में, सधे हुए अंदाज में प्रकट होता है। वे आम आदमी के कवि है, उनके दुख-सुख के सच्चे साथी। 'लिरिकल प्रस्फुटन : अँधेरे की छाती पर' का यह अंश देखिए -

तो तू कौन है
कौन है मेरे लिए ओ नन्ही उजली बालिका
तू शायद मेरे भीतर युगों से साधनारत मनु का सही
और एकमात्र परिचय है...
और मात्र परिचय?
आह, मुझे कितना जना है तूने
सच बता, सच, क्या तू माँ है?

इसी तरह 'कौन है यह प्रकाश मनु' कविता की पंक्तियाँ हैं -

वे थे कई
चेहरे पत्थर आँख काई
वे सहज सुखासीन
मंद-मंद हँसते-फुरफुराते

मैंने खोला मुँह तो

तमतमाकर निकले कई असुविधाजनक सच

और अब 'छूटता हुआ घर' की कुछ सतरें

जाने से पहले एक बार मुड़कर देखूँगा जरूर

पूछना चाहूँगा चटकती दीवारों से फर्श से

जहाँ खून जलाकर रची थीं कविताएँ

कि जब चला जाऊँगा तो पीछे

एकाध टूटी लाइन क्या दुहराएगी यहाँ की हवा?

क्या कुछ नहीं कहतीं ये पंक्तियाँ? लक्षणा और व्यंजना का ऐसा प्रयोग, समाज दुरावस्था का ऐसा चित्रण दुर्लभ है। रूपक और उपमा का ऐसा प्रयोग जो शब्द की धार तेज कर दे, कम ही नजर आता है। इसी क्रम में अन्य कविताएँ, 'उम्र की वो नदी', 'एक चिट्ठी बेटी के लिए', 'जिंदगी के हाशिए पर', 'विज्ञापन में छपी औरत', 'एक शाश्वत संवाद' भावना के स्तर पर, बाजार का जायजा लेते हुए, उपभोक्तावाद के राज फाश करता है। जबकि 'एक और प्रार्थना' कविता संग्रह में संचयित कविताएँ अनैतिकता के विरोध में उठाई गई आवाज हैं, जिसके स्वर में कहीं पश्चात्ताप तो कहीं सच से दूर जाने की ग्लानि है। कहीं किसी सामर्थ्यवान के प्रभुत्व के प्रति दबा हुआ आक्रोश है, तो कहीं घर का सही अर्थ तलाशता कवि मन, जबकि भारतीय महानगरीय संस्कृति अपने चिर संचित संस्कारों और शाश्वत मूल्यों को भूलने-भुलाने पर आमादा है। कवि का भावुक मन पीड़ित है और उनकी यह पीड़ा 'घर', 'हमने तो जीना चाहा था माँ', और 'एक और प्रार्थना' और इन जैसी कविताओं में मुखर है। 'घर' कविता की ये पंक्तियाँ देखें -

यों ही पकाती है हमें जिंदगी

जैसे पतीली में हम पकाते हैं दाल

यों ही एक दिन पकाते-पकाते

पकते हैं बाल

पहले राजा के - फिर रानी के!

प्रकाश मनु ने अपने आदर्श गुरु देवेंद्र सत्यार्थी, कवि मुक्तिबोध और सुप्रसिद्ध लेखिका अमृता प्रीतम पर भी बड़ी भावाकुल कर देने वाली कविताएँ लिखी हैं। इन्हें पढ़कर उनके समर्पणशील विनम्र स्वभाव का परिचय मिलता है।

यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं माना जाना चाहिए कि प्रकाश मनु शब्दों से मनचाहे ढंग से खेलते हैं, बिल्कुल खिलौनों की तरह, और उनसे मनचाहे अर्थ भी उगलवा लेते हैं, भले ही वह लक्षणा, व्यंजना या संक्रमित अर्थ में हो। वे अकसर भावपूर्ण शब्दों में लिखते हैं, किंतु भावावेश में नहीं लिखते। उनके समक्ष दर्पण साफ होता है, जिसमें उन्हें अपने लेखन का प्रयोजन स्पष्ट दिखता है। वे जिनके लिए लिखना चाहते हैं, जिस उद्देश्य से लिखना चाहते हैं, उनके प्रति पूरी आश्वस्ति के साथ उनकी कलम चलती है। यही कारण है कि एक ही समय में वे एक बेहतर रचनाकार, बेहतर पत्रकार, उत्कृष्ट समीक्षक और श्रेष्ठ आलोचक बन सके। रचना-प्रक्रिया से गुजरते हुए भी वे आलोचक की दृष्टि खुली रखते हैं। और इन सबसे अलग हटकर बात कही जाए, तो वे एक संवेदनशील, विवेकी, सहयोगी और सरल और सच्चे व्यक्ति हैं। उनके व्यक्तित्व की छाप उनकी कृतियों में है। वर्तमान समाज ने जिस दोहरे चरित्र का विधान किया है, मनु जी उससे परे स्वाभाविक स्वरूप पर अडिग हैं और यही कामना करते हैं कि व्यक्ति आडंबर रहित जीवन अपनाए।

प्रसिद्ध पत्रकार, संपादक और आलोचक पंकज चतुर्वेदी की दृष्टि में, "प्रकाश मनु एक आलोचक, समीक्षक या संपादक के तौर पर विलक्षण हैं। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के संपादक के तौर पर उन्हें बच्चों के लिए कई पांडुलिपियाँ पुनर्वीक्षा के लिए भेजीं। एक तो वे बेहद सकारात्मक हैं, हर रचना में अच्छा क्या है, पहले उसे रेखांकित करते हैं। यदि किसी रचना में कुछ संशोधन करके उसे तैयार किया जा सकता है, तो श्री मनु स्वयं यह काम भी आकर कर देते हैं। उनकी खासियत है कि वे एक शानदार किस्सागो हैं और एक रचना उनके मन में संपूर्ण आकार में उभरती है- यानी वह चित्रों के साथ छपेगी तो कैसी होगी? वह बाल पाठक के मन पर क्या प्रभाव छोड़ेगी? उसे बड़े पाठक किस तौर पर लेंगे? एक संपादक, एक समीक्षक और साथ में अद्‌भुत लेखक - ये तीनों गुण बाल साहित्य में बहुत कम लोगों के पास हैं।"

प्रकाश मनु का साहित्य के प्रति समर्पण, खासकर बच्चों के बौद्धिक और चारित्रिक उत्थान के लिए किया जा रहा उनका चिंतन और प्रयास दोनों प्रशंसनीय हैं। वे लंबे समय तक यों ही नए-नए विषयों पर काम करते रहें और आने वाली कई पीढ़ियों के सखा बने रहें, यही कामना है।

डॉ. आरती स्मित, डी-136, गली नं. 5, गणेश नगर, पांडव नगर कॉम्प्लेक्स,
दिल्ली-110092, मो. : 08376836119, ई-मेल : dr.artismit@gmail.com

✧ ✧ ✧

उजली हँसी के कथाकार प्रकाश मनु

मो. अरशद खाँ

आम तौर पर पशु-पक्षियों को पात्र बनाकर लिखी गई ज्यादातर कहानियाँ एक तरह से रूपक होती हैं। उन पात्रों को अगर मनुष्यों से बदल दिया जाए तो कहानी के रचाव में कोई अंतर नहीं आता। यह उन कहानियों की कमजोरी है। मुझे याद आता है कि एक बाल पत्रिका में एक प्रतिष्ठित लेखक ने कहानी भेजी, जिसका मुख्य पात्र एक हाथी था, जो अपने पेटूपन की आदत से मुश्किलों में घिर जाता है। कहानी पत्रिका में छपी जरूर, लेकिन संपादक ने जहाँ-जहाँ मोटूमल हाथी लिखा हुआ था, वहाँ-वहाँ सिर्फ मोटूमल कर दिया और कहानी जस की तस छाप दी। कहानी छपने पर लेखक महोदय को आश्चर्य जरूर हुआ, पर क्या कोई पाठक इस परिवर्तन को भाँप पाया होगा? इसके बरअक्स अगर मनु जी की कहानियों में पात्र ही क्या, सिर्फ उनके नाम भी बदल दिए जाएँ तो कहानी वही नहीं रह जाती। उसका सार, उसका सौंदर्य, उसका प्रभाव सब बदल जाता है।

प्रकाश मनु जी की बाल कहानियाँ लंबी होती हैं। औसतन साढ़े तीन-चार हजार शब्दों की। आम तौर पर मान्यता है कि बाल कहानियाँ छोटी होनी चाहिए। हालाँकि यह नियम उन संपादकों का बनाया हुआ है, जिन्हें पत्रिका में अधिक विज्ञापन छापने की मजबूरी होती है। फिर भी ज्यादातर लोग यही मानते हैं कि रचनाएँ छोटी होनी चाहिए। लेकिन प्रकाश मनु जी की अधिकतर कहानियाँ इस नियम का पालन नहीं करतीं। ऐसा क्यों है? मेरे मन में बार-बार यही सवाल उठता रहा है।

दरअसल प्रकाश मनु जी बाल कहानियाँ नहीं लिखते। वे बच्चों से बतियाना चाहते हैं। दुनिया के सारे कामों को बिसराकर, सारी फिक्रें छोड़कर। अलमस्त होकर, बिना रुके देर तक बतियाना चाहते हैं। और जब वे बच्चों से बातें करना शुरू करते हैं तो फिर उन्हें होश नहीं रहता कि वे कहाँ बैठे हैं, क्या काम रुके पड़े हैं, कितना समय हो रहा है। बस, बातें ही बातें, जी भरकर बातें। वे कहानियाँ लिखते नहीं, जीते हैं। पूरी तरह डूबकर। पढ़ने वाला या सुनने वाला उनकी दुनिया का हिस्सा बन जाता है। अपनी कहानियों में बच्चा बनकर वे खुद उपस्थित होते हैं, कहीं कुक्कू बनकर, कहीं कुप्पू बनकर, कहीं भुल्लन चाचा बनकर।

'बालवाटिका' के संपादक डॉ. भैरूँलाल गर्ग को अपनी एक कहानी के संदर्भ में वे लिखते हैं, "मेले में ठिनठिनलाल कहानी का नायक ठिनठिनलाल थोड़ा बदले हुए रूप में मैं, यानी कुक्कू ही है। ठिनठिनलाल में मेरा बचपन है, जिसमें त्योहारों का आना एक असीम आनंद में भिगो जाता था कि मैं नितांत पागलपन वाली खुशी में किसी और ही दुनिया में पहुँच जाता था। किस दुनिया में...? उसकी एक छोटी-सी झलक इस कहानी में है।"

'भुल्लन चाचा की दीवाली' के भुल्लन चाचा तो सचमुच मनु जी ही हैं। वे लिखते हैं, ''कोई चार महीने पहले ही निक्का और गौरी के प्यारे-दुलारे और बड़े हरफनमौला किस्म के भुल्लन चाचा अपने गाँव हुलारीपुर से यहाँ आए थे। दिल्ली की इस आलीशान सरोजिनीबाई कॉलोनी में शुरू में तो कुछ दिन हकबकाए से रहे। कोई महीना-डेढ़ महीना लगा उन्हें इसे ठीक से देखने-भालने, समझने में।...यों कायदे से तो आज तक समझ ही नहीं पाए।''

अपनी स्मृतियों में गाँव सहेजे ये भुल्लन चाचा और कोई नहीं, प्रकाश मनु जी ही हैं। इस कहानी के संदर्भ में वे 'बालवाटिका' के संपादक भैरूँलाल गर्ग को लिखते हैं, ''सच कहूँ तो गर्ग जी, भुल्लन चाचा कोई किरदार नहीं। खुद मेरा सपना हैं।''

अपनी एक अन्य कहानी 'सांताक्लाज का पिटारा' में सांता का चित्र खींचते हुए वे लिखते हैं, ''वह खुश था, बहुत खुश...कि अपने हजारों-हजार दोस्त बच्चों की आँखों में खुशी की चमक भरने के लिए वह कुछ तो कर पाया। पर सुबह से शाम तक यहाँ से वहाँ दौड़ते-भागते हुए उसका बरसों पुराना खूबसूरत लाल लबादा और लंबी सफेद दाढ़ी भी कुछ धूल-धूसरित और अस्त-व्यस्त हो गई थी। कभी-कभी माथे पर हलकी शिकन और उदासी भी आ जाती थी। पर ध्यान आता कि कोई कुछ भी कहे, उसे तो बच्चों को ढेर सारी मुसकान और खिलखिलाहटें बाँटनी हैं।''

कौन कहेगा कि बच्चों को ढेर सारी मुसकान और खिलखिलाहटें बाँटने वाला सांता प्रकाश मनु जी नहीं हैं।

आज का बच्चा स्मार्ट है, होशियार है, उसे मूर्ख नहीं बनाया जा सकता। वह आधुनिक तकनीक से जुड़ा हुआ है। ज्ञान-विज्ञान में वह हमारे बचपन के जमाने से कई गुना आगे बढ़ा हुआ है। उसके पास सब कुछ है, सिवाय बचपन को छोड़कर। उसके माथे पर उन्मुक्त हास्य की आभा की जगह चिंता की लकीरों ने ले ली है। वह अपनी मासूम हँसी भूलकर अव्वल आने के लिए कॅरियर के पीछे भाग रहा है। वह तनावग्रस्त है। उसके ऊपर माता-पिता की महत्वाकांक्षाओं का दबाव है। हँसना, मुसकराना, खिलखिलाना वह जैसे भूल चुका है।

मनु जी की कहानियाँ बच्चे को उसका बचपन वापस दिलाने की बेचैन कोशिश हैं। हिंदी बाल साहित्य में वे शायद इकलौते ऐसे रचनाकार हैं, जिनकी कहानियों में हँसी के उजले बिंब इतने

रंगों में प्रकट हुए हैं। उनकी कहानियों में हँसी चारों ओर खिलखिलाती हुई रंगों के झरने की तरह बह रही है, जिसमें हर कोई सराबोर हो जाता है। हँसी के इतने सारे रूप सिर्फ उन्हीं की कहानियों में मिल सकते हैं -

''अरे, हँसी के लड्डू...! ये भी तो भाँग के लड्डू ही हैं, पग्गल।'' ('भुल्लन चाचा के संग होली', बालवाटिका, मार्च 2016)

''और भुल्लन चाचा...? सबको चौंकाकर अब वे हँसी का गुलकंद बने हुए थे।'' ('भुल्लन चाचा के संग होली', बालवाटिका, मार्च 2016)

''उसकी हँसी किसी बमगोले की तरह फूटकर बाहर आ गई।'' ('दीवाली के नन्हे मेहमान', बालवाटिका, नवम्बर 2015)

"मगर बाहर निकलकर देखा तो पूरे दाँत फाड़े हा-हा-हा, हो-हो-हो हँसते कद्दूमल जी नजर आए।" ('सब्जीपुर के चार मजेदार किस्से', बालवाटिका, अप्रैल 2017)

"बैगनमल एकदम मगन होकर हँस रहे थे, 'हा-हा-हा'। फिर एकाएक उन्होंने इतनी जोर का अट्हास किया कि हवा में उनकी मूँछें फड़कने लगीं।" ('सब्जीपुर के चार मजेदार किस्से', बालवाटिका, अप्रैल-2017)

"चिड़िया भी साथ-साथ हँसी, 'तिरु-तिरु-तिरु-तिरु-तिरुक्क...!" ('मंगल ग्रह की लाल चिड़िया', बालवाटिका, जनवरी 2016)

ऐसे ही 'सांताक्लाज कर पिटारा' का सांता जब नन्ही पिंकी के सिरहाने उपहार रखने जाता है तो "उसने सोती हुई पिंकी के पास चॉकलेट, टॉफियाँ, एक सुंदर-सी लाल फ्रॉक रखी और हाँ, एक हँसी का पिटारा भी, जिसमें किस्म-किस्म के जोकर अपने मजेदार किस्से-कहानियों और चुटकुलों से हर किसी का दिल खुश कर देते थे।"

सच पूछिए तो मनु जी की हर कहानी में शुरू से अंत तक बच्चों की मासूम खिलखिलाहट सुनाई देती है। श्याम सुशील को दिए गए अपने एक साक्षात्कार में वे कहते हैं, "बचपन में माँ बताती थीं, कि अगर मैं कभी कोई मजेदार बात सुनता था तो बड़े जोर से ताली बजाकर उछल पड़ता था और फिर एकाएक मेरे होंठों से निकलता था, "ओल्लै...!" वह बच्चा अब भी कहीं मेरे भीतर से गया नहीं है।"

मनु जी अपनी कहानियों में एक ऐसा अचरज भरा संसार रचते हैं जहाँ पेड़-पौधे बातें करते हैं, चिड़ियाँ गाने सुनाती हैं, शेर, भालू, हिरन इनसानों की तरह बतियाते नजर आते हैं। पर मानवेतर प्राणियों का यह संसार पंचतंत्र या अन्य कहानियों से बिल्कुल जुदा है। अगर कभी आपने बचपन में अकेले बैठकर खुद से बतियाया है, अपनी खुद की रची दुनिया में प्रवेश किया है तो आपको यह कतई अस्वाभाविक नहीं लगेगा। तब गुड़िया अचानक बोलने लगेगी, फूल

अपनी पंखुड़ियाँ डुलाकर गाने लगेगा, पौधों को मरोड़ने पर गौरैया डाँट पिलाने लगेगी, सुनहरे पंखों वाली परी अचानक पीछे आकर आँखें बंद कर लेगी और पूछेगी, 'बताओ मैं कौन हूँ?'

आम तौर पर पशु-पक्षियों को पात्र बनाकर लिखी गई ज्यादातर कहानियाँ एक तरह से रूपक होती हैं। उन पात्रों को अगर मनुष्यों से बदल दिया जाए तो कहानी के रचाव में कोई अंतर नहीं आता। यह उन कहानियों की कमजोरी है। मुझे याद आता है कि एक बाल पत्रिका में एक प्रतिष्ठित लेखक ने कहानी भेजी, जिसका मुख्य पात्र एक हाथी था, जो अपने पेटूपन की आदत से मुश्किलों में घिर जाता है। कहानी पत्रिका में छपी जरूर, लेकिन संपादक ने जहाँ-जहाँ मोटूमल हाथी लिखा हुआ था, वहाँ-वहाँ सिर्फ मोटूमल कर दिया और कहानी जस की तस छाप दी। कहानी छपने पर लेखक महोदय को आश्चर्य जरूर हुआ, पर क्या कोई पाठक इस परिवर्तन को भाँप पाया होगा? इसके बरअक्स अगर मनु जी की कहानियों में पात्र ही क्या, सिर्फ उनके नाम भी बदल दिए जाएँ तो कहानी वही नहीं रह जाती। उसका सार, उसका सौंदर्य, उसका प्रभाव सब बदल जाता है।

मनु जी की एक कहानी है, 'मातुंगा जंगल की अचरज भरी कथा'। अद्‌भुत कथा है। क्या खूब अचरज लोक रचा है लेखक ने। वे लिखते हैं -

"आपने सुना है न मातुंगा जंगल का नाम? जरूर सुना होगा। अरे, वहीं तो फूलों की सजीली, सपनीली, स्वार्गिक घाटी है, जहाँ ओस से नहाए कोमल फूलों की सुंदरता देख लोग मुग्ध हो जाते हैं।...इतना ही नहीं, फूलों की उस घाटी में जाने पर लगता है कि जैसे ओस से भीगे ये उजले फूल असंख्य छोटे-छोटे प्यारे बच्चों में बदल गए हैं। और आने वाले सैलानियों को हँस-हँसकर 'नमस्ते' कह रहे हैं।"

मातुंगा जंगल का यह अचरज लोक दुनिया से कटा हुआ कोई निराला लोक नहीं है। वह इसी दुनिया में है, 'जहाँ सारी दुनिया के सैलानी घूमने आया करते हैं। बड़े ही विचित्र आकर्षण, बल्कि सम्मोहन से भरे हुए। पूरा-पूरा महीना वहाँ रहकर जाते हैं।'

घुम्मा-घुम्मी राज्य के राजा हक्कू शाह मातुंगा की अचरज भरी कथा यूनेस्को भेजना चाहते हैं। यह मातुंगा जंगल हमारा अपना गाँव, अपना शहर हो सकता है, अपना हिंदुस्तान भी हो सकता है। शायद इस बहाने यह लेखक की उजली उम्मीद बोल रही है कि ऐसी दुनिया इस पृथ्वी पर हो सकती है, अगर हम उसे रचना चाहें। 'मातुंगा जंगल की सबसे बड़ी खासियत है कि यहाँ एक किस्म का लोकतंत्र है।' यहाँ 'सब मिलकर बैठते हैं और अपने सुख-दुख एक-दूसरे को बताते हैं।' राजा हक्कू शाह जब अपनी सभाएँ करते हैं तो उसमें जंगल का राजा बब्बू शेर भी आता है और अपने विचार रखता है। सभा में उसकी बातें बड़े ध्यान से सुनी जाती हैं।

कहना न होगा, मनुष्य और मनुष्येतर प्राणियों का यह संसार जितना अचरज भरा और निराला है, उतना ही स्वाभाविक भी। पढ़ते-पढ़ते सचमुच ऐसा लगता है कि पशु-पक्षी हमारी बात समझ सकते हैं, हम भी उनकी बोली जान सकते हैं, अगर समझना चाहें तो।

इसी तरह मनु जी की एक और कहानी है, 'चिंकू-मिंकू और दो दोस्त गधे'। इस कहानी में मुखिया राम भद्दर जब चिंकू मिंकू से पूछता है, "क्यों जी चिंकू-मिंकू...? तुम जो भी कहो, वही तुम्हारे ये जादूगर गधे पल भर में कर देवे हैं। तो क्यों जी, क्या ये तुम्हारी बोली-बानी भी समझते हैं, या फिर कोई और ही चक्कर है...?"

इस पर चिंकू-मिंकू बड़ा ही खूबसूरत जवाब देते हैं, "अब बोली-बानी समझते हैं कि नहीं, यह तो क्या कहें, मुखिया जी? पर ये हमारे दिल की भाषा जरूर समझते हैं। इसीलिए हमें कुछ कहने की जरूरत ही नहीं पड़ती।" और जब बदरू और बाँका गधे अपना खेल रचाकर मुखिया जी के आगे सिर झुकाकर खड़े होते तो उन्हें भी समझ में आ जाता है कि गधे यही कह रहे हैं कि 'हमने तो अपनी कला दिखा दी, मुखिया जी। अब आपको कैसी लगी, यह तो आप ही बताएँ।'

यह कहानी एक और मायने में महत्त्वपूर्ण है। इस कहानी के गधे अपने प्रति समाज की बद्धमूल धारणा 'मूर्ख और बेचारे' को अपनी समझदारी, संवेदनशीलता, साहस और श्रम से तोड़ते दिखते हैं। कोयल अच्छी है, कौआ बुरा है, लोमड़ी सयानी होती है, भेड़िया धूर्त होता है, शेर जंगल का राजा होता है, जैसी धारणाओं को कम से कम बच्चों के मन से हटाने की जरूरत है। हर पशु-पक्षी का अपना महत्त्व है। हम अपने बने-बनाए खाँचों के आधार पर उनका मूल्यांकन नहीं कर सकते। अपनी इस कहानी के संदर्भ में मनु जी स्वयं लिखते हैं -

"कहानी लिखते समय मन में एक बात थी कि गधों को नायक बनाया जाए, ताकि वे 'बेचारे गधे' की चौहद्दी से बाहर आएँ। मेरा ख्याल है कि दोनों उत्साही गधों बदरू और बाँका ने अपना दम-खम साबित किया है।"

मनु जी की कहानियों में सिर्फ बचपन की बेफिक्री, मीठी शरारतें, हँसी-चुहल और मस्ती ही नहीं है, वे अपनी कहानियों में एक ऐसी दुनिया रचते हैं, जहाँ बच्चों को उनकी पूरी गरिमा मिली हुई है। वे बच्चे नहीं हैं। वे एक व्यक्ति के रूप में सम्मानित हैं। उनके अपने अधिकार हैं। उनके सामने आशाओं भरी दुनिया का प्रकाश-द्वार खुला हुआ है। वे उनकी उजली हँसी में नई सुबह का सूरज देखते हैं। उनकी रचनाएँ बच्चे और बचपन को पूरी गंभीरता से स्थापित करती हैं।

अगर बड़े गलत हैं तो बच्चे उन्हें भी टोक सकते हैं। 'सब्जीपुर के चार मजेदार किस्से' में सब्जीपुर की नन्ही प्याजो पढ़ाई के साथ-साथ खेलकूद में भी अव्वल आती है। लेकिन भिंडी चाची हैं कि उन्हें किसी की तारीफ अच्छी नहीं लगती। खास तौर से तब, जब कोई उनके बेटे भिन्नू से आगे निकल जाए। जब प्याजो क्लास में फर्स्ट आती है तो भिंडी चाची कहती हैं, "खेल-कूद का

भी ध्यान रखना चाहिए। आजकल खाली पढ़ाई से कुछ नहीं होता!" और जब प्याजो डिबेट में पहला नंबर लाती है तो "सो तो ठीक है, पर देख! अब तू पढ़ाई कर, सिर्फ खेलकूद से कुछ नहीं होता।" कहकर वे उसे निरुत्साहित करने में लगी रहती हैं। मगर प्याजो उन्हें ऐसा प्यार भरा सबक सिखाती है कि वे अपनी यह आदत हमेशा के लिए छोड़ देती हैं।

मनु जी की कहानी 'दीवाली के नन्हे मेहमान' का कुप्पू बड़ों से कहीं ज्यादा समझदार है। उसने दीवाली पर अपने दोस्तों को बुलाया है। ऐसे दोस्त जो उसके घर पहली बार आ रहे हैं। घरवाले उनसे मिले भी नहीं हैं। सब हैरत में तो हैं, पर उन्हें कुप्पू की समझदारी पर विश्वास है। उन्हें मानना पड़ता है कि 'कुप्पू के दोस्तों का दायरा बढ़ रहा है। यही तो बच्चे के बड़े होने की निशानी है।' और जब कुप्पू के दोस्त आते हैं तो घरवालों को उसकी समझदारी का कायल हो जाना पड़ता है।

"कोई दस-बारह बच्चे हैं...पर वे ऐसे बच्चे तो नहीं, जो इस कॉलोनी के लगते हों। बड़े ही साधारण से कपड़े पहने, जिनके रंग भी निकल गए थे। किसी-किसी के कपड़े तो बिल्कुल बेढंगे लग रहे थे। ढीलमढाल। जैसे अपने न हों, किसी और के माँग लिए हों। पैरों में सादा-सी हवाई चप्पलें। बच्चे थोड़े सकुचाए हुए से लग रहे थे, जैसे इस ड्राइंगरूम में सोफे पर बैठकर उन्हें शर्म आ रही हो। कुछ तो नीचे देख रहे थे। अपने पैरों की तरफ।"

कुप्पू से उन बच्चों की दोस्ती यों हुई है कि खाली समय में वह उन बच्चों को उनकी जे.जे. कॉलोनी यानी झुग्गी-झोंपड़ी कॉलोनी में पढ़ाने जाता है। जब उन बच्चों की प्रतिभाओं का पता चलता है तो मम्मी भी उन पर न्योछावर हो जाती हैं। नंदू भैया बड़ी मेहनत से बनाया हवाई जहाज वाला कंदील उन्हें उपहार में दे देते हैं। उन्हें लगता है, "ये लोग भी थोड़ा पढ़-लिख लें तो आगे कोई न कोई राह निकलेगी।"

जाहिर है, कुप्पू यह बात पहले ही सोच चुका था। इसलिए मम्मी को कहना पड़ता है, "छोटा-सा है कुप्पू, पर कितना समझदार...!"

मनु जी की एक छोटी-सी कहानी है 'पिंकी का जन्मदिन' (बालिकाओं की श्रेष्ठ कहानियाँ : सं. नागेश पांडेय 'संजय' पुस्तक में संकलित)। पर यह कहानी इस मायने में बड़ी है कि यह एक नन्ही बालिका के आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता की कहानी है। पिंकी के माता-पिता दोनों नौकरी करते हैं। वह शाम सात बजे घर लौटकर ही पिंकी का जन्मदिन मना सकते हैं। लेकिन पिंकी ही नहीं, उसके दोस्त भी समझदार हैं। उन्हें जन्मदिन की खुशियाँ मनानी हैं। और खुशियों के लिए बड़ी-बड़ी पार्टियाँ, महँगे आयोजन, कीमती उपहार जरूरी नहीं हैं। खुशियाँ आपस में दिल खोलकर बेहिचक मिलने-जुलने से आती हैं।

बस सब आ धमकते हैं पिंकी के घर, "इतने में सीढ़ियों पर जोर-जोर से धप्प-धप्प की आवाज सुनाई पड़ी और फिर जोर-जोर से दरवाजा पीटने की आवाजें। पिंकी दौड़कर गई। दरवाजा खोला तो उसके मुँह से खुशी के मारे चीख निकल गई।...एक-एक करके उसकी सारी सहेलियाँ और दोस्त धप्प-धप्प करते घर के अंदर दाखिल हो रहे थे।"

फिर सबने मिलकर खूब धमाल किया। गाने गाए, डांस किया। रसोई में जाकर पकौड़े, पराँठे, चाट बनाई। शाम को जब मम्मी-पापा लौटकर आते हैं तो वे पिंकी और उसके दोस्तों के प्रेम-स्नेह के कायल हो जाते हैं।

प्रकाश मनु जी की एक महत्त्वपूर्ण कहानी है 'सांताक्लाज का पिटारा'। इस कहानी का सांता मिथकीय सांता से भिन्न है। वह सिर्फ उपहार ही नहीं बाँटता, बच्चों में उनके अस्तित्व का बोध भी भरता है। उनके अंदर कुछ कर गुजरने का जोश भी पैदा करता है। क्रिसमस आने को है और सांता को बहुत तैयारी करनी है। उसे हैरी को सुंदर-सी डॉल के साथ एक गरम शर्ट देनी है। जॉन की फीस भरने का इंतजाम करना है। नील के लिए नए कपड़े पहुँचाने हैं। पिंकी, जो अपने ही घर में अपनों के हाथों पिटती रहती है, उसके लिए खुशियों का पिटारा लाना है। बीनू, सत्ते और रमजानी को उदासी की दुनिया से मुक्ति दिलानी है।

सांता के लिए सब बच्चे एक हैं। वह धर्म-मजहब की तफरीक नहीं जानता। उसे तो सिर्फ बच्चों तक पहुँचना है। उन बच्चों तक, जो आस बाँधे उसका इंतजार कर रहे हैं। बस, उसका एक ही उसूल है कि जिसकी जरूरत ज्यादा हो, उसे पहले। दुनिया भर के बच्चों को खुशियाँ बाँटने में वह परेशान होता है, थकता है, उसका लाल लबादा धूल-धूसरित हो जाता है, पर वह थककर बैठता नहीं -

"सांता, सांता, सांता...! वह जिधर भी जाता, हवाओं में गूँजती बस यही पुकार सुनाई देती। नन्हे-नन्हे होंठों की भोली-सी पुकार। भला उसे कौन अनसुना कर सकता है?"

सांता को 'दुनिया के हजारों-हजार बच्चों से दोस्ती' में ही सबसे बड़ा सुख मिलता है।

इस कहानी में मनु जी बच्चों की आर्थिक-सामाजिक-पारिवारिक समस्याओं की ओर भी संकेत करते हैं। पिंकी की मम्मी उसे बात-बात पर डाँटती हैं, जबकि उसके भाई चिंटू की हर बात मानती हैं। जब-तब पिटाई भी लगती रहती है। मनु जी लिखते हैं, "हे भगवान, यह कैसी दुनिया हम बना रहे हैं? आखिर हर छोटे-बड़े इनसान को इज्जत से जीने का हक है या नहीं? और बच्चे...! उन्हें भला कोई कैसे मार सकता है?"

रमजानी के माता-पिता आपस में लड़ते रहते हैं। उनके लड़ते रहने से रमजानी के कोमल मन पर बुरा प्रभाव पड़ता है। वह परेशान है। हमेशा तनाव में रहता है। वह कहता है, "मैं कितना दुखी हूँ, तुझे क्या बताऊँ, राजू। मेरे मम्मी-पापा तो हर वक्त लड़ते-झगड़ते रहते हैं। इसीलिए तो मम्मी ने आज लंच भी नहीं दिया। जी करता है, कभी घर से भाग जाऊँ।"

बीनू और सत्ते बाल श्रमिक हैं। उनका बचपन डाँट-फटकार और ज़िम्मेदारियों में बीत रहा है। उन्हें तो यह भी नहीं लगता कि सांता उनकी उदासी भरी अँधेरी कोठरी ढूँढ पाएगा, "भला मुझ जैसे गरीब बच्चे से मिलने की उसे कहाँ फुरसत?...मेरे तो मम्मी-पापा दोनों ही नहीं हैं, दुनिया में कोई नहीं। एक पुरानी-सी कोठरी है बस, रहने के लिए...वह भी ऐसी जगह कि सांता पहुँच ही नहीं सकता।"

पर सांता पहुँचता है। उस तक ही नहीं, दुनिया के हर गरीब, परेशान और जरूरतमंद बच्चे तक। वह सबकी ज़िंदगी में खुशियाँ भर देता है। लेकिन यह लेखक का कोई हवाई समाधान नहीं है। वह सांता के माध्यम से हर बच्चे में यह विश्वास भर देना चाहता है कि उन्हें किसी सांता की जरूरत नहीं, वे खुद सांता हैं। नन्हे-मुन्ने सांता, जो दुनिया को और ज्यादा सुंदर बना सकते हैं। वे एक नया सूरज उगा सकते हैं, जिसकी रोशनी हर चेहरों पर खुशियाँ जगाएगी।

कहानी के अंत में जब सांता को लगा कि, "दूर-दूर तक उसे नन्हे-मुन्ने सांता नजर आ रहे हैं, जो इस दुनिया को सुंदर बनाने निकल पड़े हैं।" तो यह सांता की नहीं, बल्कि खुद लेखक की उम्मीद बोल रही है कि बच्चों पर विश्वास करो, आने वाले कल पर विश्वास करो, दुनिया जरूर बदलेगी।

मनु जी को बच्चों पर पूरा भरोसा है। उन्हें विश्वास है कि नई दुनिया का द्वार नन्हे हाथों से ही खुलेगा। इसी स्वर में स्वर मिलाते हुए प्रेमरंजन अनिमेष की एक कविता का उदाहरण देना अनुचित नहीं होगा -

दस्तक दो
तो सबसे छोटे को
दो आवाज
भले ही वह शिशु हो
चलना नहीं जानता हो अभी
जो सबसे छोटा है उसी से
सबसे अधिक उम्मीद है
दरवाजों के
खुलने की

मो. अरशद खाँ, एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, जी.एफ. (पी.जी.) कॉलेज,
शाहजहाँपुर-242001, (उ.प्र.), मो. : 09807006288

✧ ✧ ✧

बच्चों को रिझाते हैं प्रकाश मनु के बाल नाटक

अशोक बैरागी

बच्चों की दुनिया के आसपास बुने गए ये नाटक बाल अंतर्मन की भीतरी तहों को खोलते हैं, तो साथ ही उनकी उलझनें सुलझाकर एक सीख भी दे जाते हैं। मनु जी के नाटकों का वैचारिक कैनवस बहुत ही विस्तृत और विविधता भरा है। उन्होंने ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आधुनिक जीवन से जुड़े, हास्य और कौतुक भरे बड़े ही रसीले नाटक लिखे हैं। कुछ नाटक बड़े साहित्यकारों के जीवन पर आधारित हैं, कुछ लोक कथाओं पर आधारित नाटक है और कुछ नाटक उनके व्यक्तिगत जीवन, विशेषकर स्कूली जीवन आधारित हैं। इन नाटकों के जरिए मनु जी यह प्रयास करते हैं कि बच्चे अपने आसपास की दुनिया के दुख-दर्द और परेशानियों को जानें और उनके मन में भी यह विचार आए कि आखिर एक सुंदर दुनिया बनाने के लिए वे भी तो कुछ कर सकते हैं। कुछ प्रयोगात्मक नाटक तो बहुत ही बेहतरीन और लाजवाब हैं, जो बच्चों के मन की कोमल छवियाँ प्रस्तुत करते हैं।

बाल साहित्य के वरिष्ठ लेखक और बच्चों के चहेते कवि-कथाकार, प्रकाश मनु जी का साहित्यिक चिंतन और सृजन फलक बहुत विराट और भव्य है। इस पर एक साथ विभिन्न दृष्टियों से विचार-विमर्श और मूल्यांकन किया जा सकता है। मनु जी एक साथ कवि, कहानीकार उपन्यासकार, नाटककार, आलोचक, संपादक, पत्रकार और चिंतक हैं। उनके साहित्य की बुनावट में केवल विचार ही प्रेरक नहीं हैं, जीवन के निजी अनुभव भी हैं। वैसे भी जीवन की गहन और घनीभूत संवेदनाओं के बिना ऐसा सुंदर और अतुलनीय सृजन संभव ही नहीं है। मनु जी का सृजन और संवेदना आधुनिक जीवन दृष्टि पर टिकी हुई है। इन्होंने बच्चों और बड़ों के लिए समान अधिकार से लिखा है और बड़े अनोखे ढंग से लिखा है। पूर्ण मौलिकता से लिखा है। उसमें नवीनता है। नवाचार हैं। नई प्रवृत्तियाँ हैं। साथ ही उसमें परंपरागत और प्रगतिशील मूल्यों का समन्वय है। दोनों ही क्षेत्रों में उन्होंने परंपरागत रूढ़ियों को तोड़ा है और बहुत अलग तरह से अपनी पहचान बनाई है।

सच तो यह है कि मनु जी अपने लेखन में हमेशा अलग परिपाटी बनाकर चले हैं। उनकी भाषा-शैली और भाव-संवेदन बिल्कुल निजी और मौलिक हैं। पर बाल साहित्य के क्षेत्र में इन्हें जो सम्मान और पहचान मिली, वह दूसरे साहित्य की अपेक्षा इक्कीस है। इसके साथ

ही बाल साहित्य की परिधि में गुणात्मक वृद्धि हुई है और शायद इनका मन भी यहाँ अधिक रमा है। जो आत्मीय खुशी, सुकून और अंतस की उज्ज्वलता उन्हें यहाँ मिली, वह अन्यत्र दुर्लभ है। फिर एक खास बात यह भी है कि मनु जी का अधिकांश बाल साहित्य इनके अपने जीवन से अनुप्रेरित है।

बाल पाठकों के लिए कविता, कहानी और उपन्यासों के साथ-साथ बाल नाट्य लेखन करके मनु जी ने बहुत उपकार किया है। नाटकों की दुनिया में उनका मन खूब रमा है और उन्होंने बच्चों के मन और उनके सपनों की सतरंगी दुनिया के रेशे-रेशे को खोलकर लिखा है। वह भी बिल्कुल बच्चा बनकर। खेलते, मस्ती करते, हँसते-गाते, शिकायत और मान-मनौव्वल करते लिखा है। इसीलिए इनके नाटक बच्चों के मन से जुड़कर एक ऐसा आत्मीय रिश्ता बना लेते हैं कि एक बार पढ़ने के बाद बच्चे इन्हें भूलते ही नहीं। अपनेपन की सुवास ही उन्हें चुपके-चुपके प्रेम और अच्छाई के रास्ते पर चलने के लिए प्रेरित करती है। इन नाटकों को पढ़ते हुए उनके हृदय में जैसे उजाला सा हो जाता है और मानवीय संवेदना उन्हें सरल, उदार और भावनाशील बना देती है।

मनु जी के नाटकों में बचपन की अबोधता, सादगी, सरलता और जिज्ञासा की जो अमूल्य निधियाँ बिखरी पड़ी हैं, उन्हें आत्मसात करने और इस अमूल्य धरोहर को सहेजने के लिए हमें इसके भीतर गहरी संवेदना के साथ प्रवेश करना पड़ेगा। दूसरी बात यह कि मनु जी का अपना व्यक्तित्व भी जिज्ञासा और संवेदना से परिपूर्ण हैं। हालाँकि वे बड़े सहज भाव से बोलते हैं और विषय के प्रति गंभीर भी रहते हैं। परंतु उसमें एक अपनेपन की मिठास है। उसमें कोई औपचारिकता नहीं होती। यह भी उनके व्यक्तित्व की एक खासियत है कि वे कोई भी काम करते हैं तो मन से करते हैं, दिखाने या कहने भर के लिए नहीं करते। जीवन और व्यक्तित्व की यही सरलता, सादगी और सीधापन तथा हर प्रकार के छल-छद्म और दिखावे से दूर रहकर अपने काम में लीन रहना, ये सब चीजें मनु जी के साहित्य में भी ज्यों की त्यों उतर आई है। उनका कहानी कहने का लहजा इतना सरस, कौतुक भरा और स्वाभाविक है, मानो बच्चों का कोई प्रिय दोस्त उनसे अपने बचपन को साझा कर रहा हो। या फिर अपने जीवन की सबसे अनमोल चीजें उन्हें बाँट रहा हो।

इसी तरह मनु जी अपने नाटकों में कहीं भी सीधे-सीधे उपदेश या शिक्षा नहीं देते, बल्कि दोस्ताना लहजे में ही बातों-बातों में वह सब कह जाते हैं, जो उन्हें कहना होता है। इनके उद्देश्यपूर्ण नाटक दीपक की लौ की तरह हैं, जिसका उजाला तो दिखाई देता है पर उसकी ऊष्मा को हम केवल महसूस कर सकते हैं। इनकी सब नाट्य रचनाएँ कौतुक भरे खिलौनों की तरह लगती हैं। अद्‌भुत किस्सागोई और भाषा की सरलता से ही ये अनूठी रचनाएँ बच्चों के मन में रच-बस जाती हैं। यही कौशल एक सफल नाटककार के रूप में उन्हें शीर्ष सम्मान के सिंहासन पर विराजमान करता है।

मनु जी के नाटकों के कथानक, संवाद, भाषा, परिवेश और उद्देश्य एक सहज गति और लय में अपनी रोचकता के साथ चलते हैं। कहानी सीधे-सहज ढंग से चलती है, कोई ज्यादा

घुमाव-फिराव उसमें नहीं होता। बच्चे उनकी रचनाओं के केंद्रीय पात्र हैं। जहाँ एक तरफ बच्चों के दिल-दिमाग में दुनिया भर की दुख, तकलीफ, अभाव, गरीबी और पीड़ाएँ हैं, वहीं उनकी आँखों में नई दुनिया के सुनहरे सपने जगमग करते हैं। ये खिलंदड़े, अल्हड़, मस्तमौला बच्चे खेल-खेल में बहुत कुछ ऐसा कह जाते हैं, जो कभी भूलता नहीं है। इस तरह अपने रसपूर्ण, चुटीले संवादों से ये पाठकों के मन में सदा-सदा के लिए बस जाते हैं। कहीं ये शरारती-मस्ताने बच्चे हास्य-विनोद द्वारा अपने अभिनय की धाक जमा लेते हैं, तो कहीं अपने भोलेपन और कौतुक से बड़ों को भी दाँतों तले अंगुली दबाने को विवश कर देते हैं। लेकिन कहीं-कहीं अपने दुख-तकलीफों से संघर्ष करते हुए, वे अपनी करुणा से पाठक के हृदय को भिगो भी देते हैं।

बच्चों की दुनिया के आस-पास बुने गए ये नाटक बाल अंतर्मन की भीतरी तहों को खोलते हैं, तो साथ ही उनकी उलझनें सुलझाकर एक सीख भी दे जाते हैं। मनु जी के नाटकों का वैचारिक कैनवस बहुत ही विस्तृत और विविधता भरा है। उन्होंने ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आधुनिक जीवन से जुड़े, हास्य और कौतुक भरे बड़े ही रसीले नाटक लिखे हैं। कुछ नाटक बड़े साहित्यकारों के जीवन पर आधारित हैं, कुछ लोक कथाओं पर आधारित नाटक है और कुछ नाटक उनके व्यक्तिगत जीवन, विशेषकर स्कूली जीवन आधारित हैं। इन नाटकों के जरिए मनु जी यह प्रयास करते हैं कि बच्चे अपने आस-पास की दुनिया के दुख-दर्द और परेशानियों को जानें और उनके मन में भी यह विचार आए कि आखिर एक सुंदर दुनिया बनाने के लिए वे भी तो कुछ कर सकते हैं। कुछ प्रयोगात्मक नाटक तो बहुत ही बेहतरीन और लाजवाब हैं, जो बच्चों के मन की कोमल छवियाँ प्रस्तुत करते हैं। यों मनु जी ने अपने बाल नाटकों के जरिए बचपन को खुशहाल बनाने, आधुनिक और प्रगतिशील मूल्यों को बच्चों के मन में उतारने, जीवन में आने वाली हर छोटी-बड़ी मुसीबत का साहस के साथ सामना करने की सामर्थ्य पैदा करने और साथ ही, बच्चों के जीवन को सृजनात्मक बनाने का सफल प्रयास किया है।

यदि इन नाटकों को मंच पर खेला जाए तो बच्चों के होंठों पर बड़ी ही आनंद भरी मुसकान थिरकती नजर आएगी। और बच्चे खेल-खेल में वह सब सीख भी जाएँगे जो उनके लिए जरूरी है। ऐसे प्रयासों से बच्चों के अंदर दबी रचनात्मक प्रतिभा, कल्पना शक्ति और संवेदना को खुलकर सामने आने का मौका मिलता है।

अगर मैं नाटक की पुस्तकों की बात करूँ तो 'मुनमुन का छुट्टी क्लब', 'इक्कीसवीं सदी के बाल नाटक', 'बच्चों के अनोखे हास्य नाटक,' 'बच्चों के रंग-रंगीले नाटक,' 'बच्चों को सीख देते अनोखे नाटक', 'बच्चों के श्रेष्ठ सामाजिक नाटक', 'बच्चों की श्रेष्ठ हास्य एकांकी' आदि प्रमुख पुस्तकें हैं, जिनमें प्रकाश मनु जी के दर्जनों नाटक बालमन के साथ-साथ बड़ों से भी धौल-धप्पा करने को तैयार नजर आते हैं।

यों बाल नाटकों के जादुई प्रभाव के विषय में स्वयं मनु जी एक जगह लिखते हैं, "नाटक बच्चों के लिए एक ऐसी जादुई कला है, जो उन्हें सदियों से रिझाती आई है। नाटक में ही बच्चों

का मन सबसे अधिक रमता है, लिहाजा गली-मोहल्लों, स्कूल के फंक्शनों या फिर राष्ट्रीय पर्वों पर जब कोई मन को छू लेने वाला अच्छा नाटक होता है, तो अनगिनत आँखें एक साथ भीगती हैं और अनगिनत होंठों पर एक साथ हँसी फुरफुराती है।"

चलिए, अब मनु जी के कुछ नाटकों का अवलोकन करते हैं। 'अब नहीं लड़ेंगे' उनका बहुत चर्चित नाटक है, जो एक ऐतिहासिक कथ्य को आधार बनाकर लिखा गया नाटक है। यह बच्चों को प्रेम, भाईचारे, अहिंसा, सहिष्णुता और शक्तिशाली होने के अहंकार को त्यागने की सीख देता है। कभी-कभी बच्चे भी औरों से कुछ ज्यादा ही होशियार, सुंदर, बुद्धिमान या फिर अमीर होने का अहंकार पाल लेते हैं, परिणाम स्वरूप प्रेम, सौहार्द और सहयोग का माहौल बिगड़ जाता है। अवंतीपुर का प्रतापी राजा बीसलदेव भी इसी तरह पृथ्वी पर सबसे शक्तिशाली होने के अहंकार से भर जाता है। उसे अपनी अपार ताकत, विशाल साम्राज्य और राज्य में सुख-समृद्धि की श्रेष्ठता का अहंकार हो जाता है। वह भूल जाता है कि इनसानियत से बड़ी कोई ताकत नहीं और मुसीबत में भूखे, प्यासे, असहाय, अपाहिज और जरूरतमंदों की सहायता से बड़ा कोई धर्म नहीं होता। इन्हीं के बल पर इनसान श्रेष्ठ बनता है।

राजमती अपने पति बीसलदेव को समझाने का प्रयास करती है परंतु उसकी बात से राजा उलटा चिढ़ जाता है। वह हँसते हुए कहता है, "वीरों का काम तो लड़ना ही है, राजमती।" यहाँ तक कि घमंड में चूर होकर वह कहता है, "मुझसे वीर और कोई राजा नहीं है।" राजमती बुद्धिमान स्त्री है, वह सहज विनम्रता से समझाती है कि, "आप वीर हैं, प्रतापी हैं, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि पृथ्वी पर कोई और वीर राजा नहीं है।" यहाँ यह भी स्पष्ट होता है कि अहंकारी व्यक्ति अपने बुद्धिमान हितैषी की भी बात नहीं सुनता। भले ही वह कितनी भी अच्छी बात क्यों न कह रहा हो।

आखिर शक्ति एवं राज्य के अहंकार के कारण मुकुंदपाल और बीसलदेव के मध्य युद्ध ठन जाता है। लड़ाई लंबी चलने के कारण बीसलदेव के सैनिक हारने लगते हैं, उनकी रसद खत्म हो जाती है। भूखे, लाचार और घायल सैनिक हथियार नहीं चला पाते। यह स्थिति राजा मुकुंदपाल से देखी नहीं जाती। ऐसे में उसका निर्णय सराहनीय है, जो एक बहुत बड़ा आदर्श स्थापित करता है। देखिए -

"मुकुंदपाल : मैं चाहता हूँ, कुछ समय के लिए युद्ध बंद कर दिया जाए।
बीसलदेव : (हैरान होकर) क्यों?

मुकुंदपाल : इसलिए कि हम युद्ध के नियमों से बँधे हैं। कमजोर, बीमार, भूखे और लाचार लोगों पर हम हथियार नहीं चलाते। मुझे पता है, आपके पास रसद खत्म हो चुकी है। भूखे रहकर आपके सैनिक कैसे लड़ेंगे? खाने-पीने का सामान, फल और सब्जियों से भरी गाड़ियाँ हम आपके लिए भिजवा रहे हैं। मेरी विनती है कि आप इन्हें स्वीकार करें।"

युद्धभूमि में सामने खड़े शत्रु की सहायता करना, वह भी इस कदर विनयपूर्वक, यह बहुत बड़ी बात है। यहाँ एक अप्रत्याशित-सी घटना मनु जी ने संभव कर दिखाई है। मुकुंदपाल द्वारा किया गया निर्णय मानवता के हित में लिया गया निर्णय है। इस युद्ध में न कोई हारा, न कोई जीता। मुकुंदपाल के सद्व्यवहार और विनम्रता से राजा बीसलपुर का अहंकार जाता रहा। वह आँखों में आँसू लिए पश्चात्ताप और आत्मग्लानि से भरकर कहता हैं, "आप सचमुच महान हैं, राजा मुकुंदपाल! मैंने आज तक ऐसा उदार कोई राजा नहीं देखा। आज मैंने पहली बार जाना कि सच्ची वीरता क्या होती है? मैं आपको जीतने के लिए अवंतीपुर से आया हूँ, पर आपकी शूरवीरता से ज्यादा आपकी विनम्रता ने मुझे हरा दिया...!"

विनम्रता, उदारता और साहस सच्चे वीर पुरुष की कसौटी हैं, जिन पर मुकुंदपाल खरा उतरता है। अहंकार विनाश को न्योता देता है और इसका अंत पछतावे और आत्मग्लानि से भरा होता है। नाटक में अहंकारी बीसलदेव का सिर नीचा होना और मुकुंदपाल का किसी देवदूत की तरह सहायता के लिए आगे आना मनु जी के नाट्य कौशल का कमाल है। प्रेम, अहिंसा, उदारता और शांति का संदेश देने वाला यह नाटक हर दृष्टि से सफल है। इसे पढ़ते हुए स्वतः आँखें भीग जाती हैं।

मनु जी का नाटक 'गुलगुलिया के बाबा' भी दिल को छू लेता है। यह एक छोटे से बच्चे गुलगुलिया के साहस और संवेदना की कहानी है। बच्चे का मन निर्मल और कोमल होता है। वह किसी को दुख और पीड़ा से कराहते नहीं देख सकता। इस नाटक में ऐसा ही होता है। जब गुलगुलिया के बाबा बच्चे को अपने बुखार की बात बताते हैं तो बालक तुरंत उसकी सेवा में जुट जाता है। वह अबोध बालक डॉक्टर को लेने अकेला शहर जाता है। बच्चे का यह हौसला काबिले तारीफ है। लेकिन अरे! यह क्या? नाटक के दूसरे दृश्य में वर्तमान की भौतिकता और स्वार्थपरकता के आगे मानवीय संवेदना हारती दिख रही है।

यहाँ शायद मनु जी कहना चाहते हैं कि यह दुनिया केवल भावनाओं से नहीं चलती, बल्कि जीवन तो निरंतर संघर्षों का नाम है। जीवन चलाने के लिए कुछ आवश्यक साधन और संसाधन भी होने जरूरी हैं। मनु जी ने यहाँ बच्चे को वास्तविक दुनिया से, उसकी व्यावहारिकता से जोड़ा है। जहाँ एक ओर डॉक्टर अक्खड़ जैसे घमंडी व्यक्ति हैं, वहीं दूसरी ओर राजकुमार और हरिया देवी जैसी देवदूत भी हैं, जो दूसरों के भले के लिए कुछ भी करने को तैयार हैं। यहाँ बच्चे के हौसले और धैर्य को देखकर 'जहाँ चाह वहाँ राह' वाली उक्ति चरितार्थ होती दिखती है। जंगल के राजकुमार और हरिया देवी के आशीर्वाद के बाबा ठीक हो जाते हैं। ये दोनों गुलगुलिया को कुछ गेहूँ के दाने देते हैं, जो वास्तव में सच्चे और अच्छे बच्चे के प्रति शुभभावनाएँ और मंगलकामनाएँ हैं।

यथार्थ और फंतासी के मेल से बना यह नाटक मुसीबत के समय धैर्य, साहस, हौसला, और सूझबूझ बनाए रखने की सीख देता है। हरिया देवी के आने से कहानी का यथार्थ और

आदर्श भी कहीं अधिक रोचक हो जाता है। बच्चे गुलगुलिया के साथी बनकर उसके साथ चलने लगते हैं। गुलगुलिया के हौसले को देखकर हर बच्चा यही कहेगा, "ऐसा तो मैं भी कर सकता हूँ। और मौका मिलते ही अवश्य करूँगा।"

अब चलिए 'मुनमुन का छुट्टी क्लब' की सैर करते हैं। वाह! क्या क्लब है! इसके सभी बच्चे रचनात्मक, प्रतिभाशाली, कल्पनाशील, अलमस्त, खिलंदड़े और गुणी हैं। हर बच्चा अपने आप में जीनियस है। ऊपर से मनु जी की सहज भाषा, संवाद कौशल और बच्चों की भाव-भंगिमाओं का कौतुक नाटक में जान डाल देता है। नाटक की शुरुआत भी बड़े सुंदर और प्रेरणात्मक गीत से होती है। मुनमुन नाटक की मुख्य पात्र और सकारात्मक ऊर्जा से भरी लड़की है। इस नाटक की काव्यात्मक भाषा का अनूठापन देखिए। शोभा दीदी कहती हैं, "जैसे ये बच्चे न हों, जुगनू हों, जुगनू! हर क्षण प्रकाश उगलते, नन्हे-नन्हे जुगनू...!" यहाँ सबसे बड़ी बात मुनमुन के क्लब के सभी बच्चों का वास्तव में प्रकाश उगलते जुगनू होना है। प्रकारांतर से यहाँ उनके गुणी स्वभाव की ओर संकेत है। इसके साथ ही ये अनुशासित, नियमित और अपनी-अपनी जिम्मेदारी को निभाने में ईमानदार हैं। कोई आदर्श अध्यापक है, कोई गायक, कोई नर्तक, कोई कहानी लेखक, कोई चित्रकार, कोई नाटककार, कोई अभिनेता और कुछ गप्पी एवं शरारती भी। सब मिलकर खूब रंग जमाते हैं, और वाकई मुनमुन का छुट्टी क्लब नाटक खूब जम जाता है, और बाल पाठकों के दिलों में अपनी जगह बना लेता है।

नाटक का वातावरण अत्यंत उल्लासपूर्ण और भाव-भंगिमाओं से भरा है। नाटक की खास बात यह है कि सभी बच्चे अपनी-अपनी विधा के उस्ताद हैं। मनु जी का कौशल देखिए, खेल-खेल में इन विधाओं की मौलिक और जरूरी बातें बच्चों से ही कहलवा रहे हैं। जैसे कहानी कैसे लिखनी है? चित्रकला और संपादन कला की बारीकियाँ क्या-क्या होती हैं? नाटक कैसे खेला जाता है? आदि-आदि। मनु जी के ऐसे नाटक सांस्कृतिक और साहित्यिक विधाओं की कार्यशालाओं जैसे हैं। वास्तव में ऐसे बच्चे मनु जी के मन के बच्चे हैं। ऐसा लगता है, जैसे मनु जी खुद बच्चे बनकर नाटक खेल रहे हैं, साथ ही उसी कुतूहल, उत्सुकता और निराले अंदाज में कहानी भी कह रहे हैं। पाठक भी बच्चों के साथ उन्हीं भावों में बहने लगते हैं। उनकी आँखों में भी वही खुशी झिलमिल होने लगती है। हृदय में वही उमंग-उत्साह हिलोरें मारने लगते हैं। नाटक का एक संवाद और बात कहने की शैली का मस्ती भरा अंदाज देखिए -

"शोभा दी : वाह! बजरंगी, ये तो खुद एक कहानी बन गई।

मुनमुन : और कहानी सुनाने का अंदाज भी हमारे बजरंगी का ऐसा है कि जब चाहे रुला दे, जब चाहे हँसा दे।"

"बजरंगी : मैं...? जरा मुझे टाइम ज्यादा लगता है दीदी। अक्कल थोड़ी खुट्टल है।

नेहा : तो कोई बात नहीं, मैं थोड़ा सिर खुजाती हूँ। शायद एक आध कहानी टपक पड़े।

बजरंगी : (हँसते हुए) देखो, ज्यादा सिर मत भुला देना छुटकी, नहीं तो कहानियों की बरसात हो जाएगी और हमें खामखा भीगना पड़ेगा।

नेहा : (चिढ़कर) फिर तुमने छुटकी कहा! अजी, मेरा नाम नेहा है, नेहा!"

नाटक में इसी तरह स्वाभाविक मनोविज्ञान, हास्य, खीज, मान-मनौव्वल और प्रेमपगी शरारतों की अनोखी बानगियाँ खूब मिलेंगी।

इतना ही नहीं, इस नाटक में कहानी बाबा जैसे किस्सागो भी हैं, जो क्लब के बच्चों को सुप्रसिद्ध चित्रकार बृजभूषण त्यागी के जीवन संघर्ष से जुड़ी सच्ची कहानी सुनाते हैं, जिससे बच्चे सचमुच प्रेरित और प्रभावित होते हैं। लगता है, बृजभूषण त्यागी जी जरूर मनु जी के अंतरंग मित्रों में रहे होंगे, जो बाद में एक बड़े कुशल नाटककार और निर्देशक बने। इस तरह हम कह सकते हैं कि मनु जी बच्चों को केवल कल्पनालोक में ही विचरण नहीं कराते, बल्कि उन्हें जीवन की वास्तविकता से भी जोड़ते हैं। वे इतने सिद्धहस्त कलाकार हैं कि वे केवल कविता, कहानी लिखना, चित्र बनाना, बल्कि नाटक का निर्देशन करना और और पत्रिकाओं का संपादन करना भी सिखाते हैं। वास्तव में ऐसी कहानियाँ साहित्य, कला और संस्कृति की पाठशालाएँ हैं। मनु जी बच्चे में छिपी हर प्रकार की प्रतिभा को जाँचने-परखने के लिए छोटे-बड़े सभी को प्रेरित करते हैं। यही इनके नाटकों की सबसे बड़ी खासियत है। 'मुनमुन का छुट्टी क्लब' बेशक उनमें अव्वल है और मनु जी के सर्वाधिक प्रतिनिधि नाटकों में इसे शुमार किया जा सकता है।

मनु जी का बाल साहित्य पढ़ते हुए इस बात की ओर मेरा ध्यान गया कि उनकी बाल कहानियाँ और नाटक एक-दूसरे के बहुत नजदीक हैं और लगभग साथ-साथ चलते हैं। उनकी ज्यादातर बाल कहानियों में इतनी नाटकीयता और कौतुक है कि उनका नाट्य रूपांतरण बड़ी सहजता से हो जाता है। 'गंगा दादी जिंदाबाद', 'जानकीपुर की रामलीला,' 'रहमान चाचा', 'एक था वसंत' आदि उनकी अनेक कहानियाँ हैं, जो बड़े अच्छे नाटकों में ढल गई हैं।

मनु जी के नाटकों में 'गंगा दादी जिंदाबाद' भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह बाल मन को संवेदित और प्रेरित करने वाला नाटक है। गंगा दादी गाँव की सबसे वृद्ध महिला है और इस अवस्था में भी अकेली रहने को मजबूर है। अतः बच्चों के तंग करने पर उसका परेशान होना स्वाभाविक है, पर वह दिल की बुरी नहीं है। वास्तव में वह बच्चों से कम, अपने हालात से ज्यादा दुखी है क्योंकि जब उसे अपनों के सहारे की जरूरत थी, तब वह अकेली रहने को मजबूर है। उसका जवान बेटा और पति गुजर चुके हैं। गंगा दादी अपने बगीचे में फल-फूलों के पेड़ों की रखवाली करती है। अब बच्चे तो बच्चे ठहरे! उन्हें चोरी के फल खाना और शरारतें करना अच्छा लगता है। एक शाम को वही हुआ। बच्चे बाग में पहुँच जाते हैं। जब गंगा दादी बच्चों को भगाने के लिए शामू के पीछे भागी तो एक गड्ढे में पैर आने से, वह धड़ाम से गिर पड़ी! दर्द से कराहने लगी।

अब शुरू होती है असली कहानी। बच्चों की निर्मल संवेदनाएँ, पछतावा, दुख और गंगा दादी के प्रति सेवा और समर्पण का भाव। नाटक में इस स्थल पर भाषा सौंदर्य और संवादों की मार्मिकता इतनी गजब की है कि आपकी आँखें छलछला उठेंगी। जरा देखिए -

"संजू : अरे-अरे! गंगा दादी गिर गई।
गोगना : लगता है, बहुत ज्यादा चोट आई है।
गोलू : हाय राम! अब क्या होगा?
मिठ्ठन : यह तो बुरा हुआ, बहुत बुरा।
गोगना : चलो, गंगा दादी को अंदर चारपाई पर लिटा दें।"

संजू दौड़कर वैद्य को बुलाकर लाता है। बच्चे घर से हलदी वाला दूध लाकर दादी को पिलाते हैं। दवा, मालिश आदि करते हुए सेवा में जुट जाते हैं। बच्चे गंगा दादी से अपनी गलती की माफी माँगते हैं और गंगा दादी का बड़प्पन देखिए, जो उन्हें चोट लगने पर माफ ही नहीं करती, बल्कि खूब प्यार भी करती है। बच्चे भी इतने सच्चे और अच्छे हैं कि जब तक गंगा दादी ठीक नहीं हो जाती, उसकी सेवा में दिन-रात लगे रहते हैं। उन्हें बहुत पछतावा होता है। अब उन्हें क्या करना है, क्या नहीं करना? उनमें यह चेतना स्वतः जाग्रत होती है। अब उन्हें केवल गंगा दादी और अपना कर्तव्य याद है। दादी-पोतों का ऐसा स्नेह भरा मार्मिक दृश्य देखकर बड़के दादा कहते हैं, ''हमें मालूम नहीं था, इन दादी-पोतों में इतना स्नेह है।'' बच्चों और बड़ों के हृदय परिवर्तन की यह बहुत जीवंत और मनभावन कहानी है, जो एक अनोखे, भावनात्मक नाटक की शक्ल में सामने आती है।

चलिए अब जरा 'गोलू-मोलू गप्पू खाँ' के पास चलते हैं, जो गप्पें मारने और शेखी बघारने में अव्वल है। हालाँकि उसे यह अहसास भी है कि यह खराब आदत है। और इतना ही नहीं, वह इससे छुटकारा भी पाना चाहता है। ऐसे में एक प्यारी-सी नीली चिड़िया उसकी मदद करती है। जब तक गोलू पूरी तरह इस आदत को छोड़ नहीं देता, वह उसका साथ देती है। यहाँ भाषा बहुत ही मुहावरेदार, सरस और कसी हुई है। मुँह खुला रह जाना, शेखी बघारना, लत लगना आदि मुहावरों का बहुत ही सफल प्रयोग है। हास्य रस से भरा यह नाटक बड़ा रोचक और मजेदार है।

यहाँ मेरा एक छोटा सा संशय है, जब गप्पू शेखी मारता है तो बच्चे एक साथ 'डब्बा गोल' कहकर उसकी हँसी उड़ाते हैं। तब एक पंक्ति आती है, "शेखी सारी धरी रह गई गोलू जी की किस्मत फूट गई बेचारे गोलू जी की!" यहाँ 'किस्मत फूट गई' जैसा वाक्यांश कुछ अखरता है। यहाँ 'खुल गई पोल' या 'बदल गई चाल' जैसे वाक्यांश आना मेरे विचार से ज्यादा सही होता। खैर, यहाँ लेखक के मन में कोई और संदर्भ भी हो सकता है।

ऐसे ही 'शेरू ने ढूँढ़ी गेंद' कुछ अलग ढंग का, एक छोटा और प्यारा-सा नाटक है। बच्चा गेंद से खेलता है और बार-बार उसे खो देता है। ऐसे में उसका कुत्ता शेरू गेंद ढूँढ़ने में मदद करता है। वह अपने इस करतब से गेंद खेल रहे बच्चों से इतना घुल-मिल जाता है कि बच्चे उसे 'हीरो' और

'शेरू द ग्रेट' कहते हुए, अपनी टीम में शामिल कर लेते हैं। बच्चों को भी शेरू के बिना खेलने में आनंद नहीं आता। नाटक का कथ्य बहुत ही सहज है और यह सभी बच्चों के मन का नाटक है। गेंद, कुत्ते, बिल्ली, कबूतर और खरगोश बच्चों के प्रिय दोस्त होते हैं। ये पात्र कहीं नायक है तो कहीं सहायक। ये सभी अपने अपने क्रिया-कलापों द्वारा नाटक को गति और रोचकता प्रदान करते हैं। इनके आने से बाल पाठक नाटक में रमते चले जाते हैं।

इसी तरह अपने खिलौनों पर भी बच्चे जान छिड़कते हैं और ये छोटे-छोटे खिलौने उनके लिए कुबेर के खजाने से कम नहीं होते। खेलते-खेलते पप्पू की नीली गेंद नाली में कहीं खो जाती है। पप्पू के तो मानो प्राण बसते थे, उसमें। अब उसकी दुनिया ही जैसे लुट गई हो। इसी दुख के कारण वह खाना-पीना तक छोड़कर उदास रहने लगता है। माँ के समझाने पर भी उसकी उदासी कम नहीं होती। फिर अचानक उसका दोस्त शेरू उस नीली गेंद को ढूँढ़ लाता है, तब उसकी जान में जान आती है। यहाँ बालमन की सूक्ष्म संवेदनाओं और मनोविज्ञान की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। पप्पू को गेंद के ही सपने आते हैं, जो कभी आसमान में चली जाती है, कभी चाँद-तारे बन जाती है और कभी एकदम सामने जमीन पर आकर टप्पे खाने लगती है। यह बच्चे के अवचेतन मन की सहज अभिव्यक्ति है। नाटक में शेरू, पप्पू और अन्य बच्चों का परस्पर प्रेम भी अनुपम है, जो देखते ही बनता है।

आजकल बच्चों में खानपान संबंधी बदलती आदतें भी एक चिंता का कारण हैं। इन आदतों के कारण बच्चों का शारीरिक और मानसिक विकास रुक जाता है। बच्चे सात्विक भोजन जैसे दूध, साग-सब्जियाँ और फल आदि की अपेक्षा फास्ट फूड और कोल्ड ड्रिंक जैसी बाजारू चीजों को ज्यादा महत्त्व देते हैं। संतुलित भोजन और शाकाहार की आदतों को विकसित करने के लिए मनु जी ने 'रस-भरे फल, ताजी-ताजी सब्जियाँ' शीर्षक से बहुत सुंदर नाटक लिखा है। शालिनी मैडम हँसते-गाते हुए खेल-खेल में बच्चों को फल-सब्जियों की गुणवत्ता बताती हैं। मैडम का बताने का ढंग लाजवाब है, क्योंकि वह इतना सहज और उत्सुकता भरा है कि बच्चों में जानने की ललक खत्म नहीं होती। बच्चे शुद्ध सात्विक चीजों को खाने के संकल्प को बार-बार दोहराते हैं और मिलकर गाते हैं कि, ''खाओगे सब्जी'' तो सेहत होगी अच्छी, ''खाओगे फल तो हँसोगे पल-पल।''

इन नाटकों की एक अच्छी बात यह है कि इनकी कथावस्तु बहुत ही प्रासंगिक है। दूसरी बात यह कि मनु जी शुरू में ही बड़े रोचक ढंग से पात्रों का परिचय कराते हैं। परिचय भी गुण, स्वभाव के अनुसार, जिसके कारण उत्सुकता निरंतर बढ़ती जाती है। फिर नाटक में विभिन्न स्थलों पर पात्रों के मनोभाव और भाव-भंगिमाएँ बहुत स्वाभाविक हैं। सभी पात्रों में एक विशेष रचनात्मक कौशल है। कोई कहानी लिखने में रुचि रखता है, कोई कविता लिखने में, कोई चित्रकार, कोई गायक, तो कोई घुमक्कड़ है। इनमें नया सीखने की ललक है। सभी नया काम करने को उत्साही हैं। यहीं से बच्चा रचना में रमना शुरू हो जाता है। इसमें कुछ पात्र स्वभाव से शरारती हैं, कुछ गप्पी और गंभीर भी। यानी पाठकों को अपनी रुचि के पात्र आसानी से मिल जाते हैं।

'सपनों का पेड़' भी मनु जी का एक बेहतरीन और बहुचर्चित नाटक है। इसमें मीरा नाम की एक लड़की क्रिसमस ट्री यानी सपनों के पेड़ को विभिन्न प्रकार से सजा रही थी। यह क्रिसमस ट्री सारी दुनिया के लिए खुशियों का पेड़ ही तो है। मीरा बहुत ही संवेदनशील और भावुक लड़की है। वह अपने क्रिसमस ट्री के माध्यम से पूरी दुनिया को सँवारना और खुश देखना चाहती है। अपनी मित्र मंडली के साथ वह मजदूरों की बस्ती में जाती है और अपने नाटकों द्वारा बस्ती में शिक्षा का अलख जगाती है। वह उन मजदूरों के गरीब बच्चों में छिपी प्रतिभा को पहचानकर उन्हें सही दिशा देती है। फिर एक दिन अचानक उनके दादा जी मीरा की नाटक मंडली का हौसला बढ़ाने के लिए वहाँ आ जाते हैं। वे मीरा के इस कार्य और भावना की बहुत प्रशंसा करते हैं। वे अपने ज्ञान, अनुभव और प्रेरणात्मक बातों द्वारा मंडली के बच्चों को और अधिक अच्छा करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। बातों-बातों में 'अपना दीपक खुद बनो' या 'अप्प दीपो भव' का संदेश देते हैं।

मनु जी अपने नाटकों में संवादों के उतार-चढ़ाव, लय, भाषा और शारीरिक भाव-भंगिमाओं का महत्त्व भी प्रतिपादित करते हैं। कहीं-कहीं तो पाठक एकदम हैरान हो जाते हैं। उन्हें लगता है, जैसे नाटक के अंदर एक और नाटक चल रहा है। तभी तो मैं मनु जी के नाटकों को 'साहित्यिक कार्यशाला या प्रयोगशाला' मानता हूँ। मनु जी बाबा महाश्वेतम के माध्यम से अपने कथा गुरु देवेंद्र सत्यार्थी जी के व्यक्तित्व की झलक और गुण-स्वभाव को बच्चों के सामने बड़े नाटकीय अंदाज में रखते हैं। एक अच्छा नाटक कैसे लिखा जाए? उसके आवश्यक अंग क्या हैं? उसकी तैयारी कैसे की जाए? लाइट-साउंड का प्रभाव, स्क्रिप्ट लिखना, प्रभावी और छोटे संवाद, सहज भाषा, पात्रों के अनुकूल वेशभूषा आदि चीजों के बारे में बच्चों के मुँह से कहलवाकर या स्वयं बच्चों के हाथों से करवाकर उन्हें सिखाते हैं। यह लेखक का एक विशेष कौशल है। अगली पीढ़ी के साहित्यिकों को साहित्य की बारीकियाँ सिखाने का नया प्रयोग भी है। मनु जी के बाल पात्र अच्छी हिंदी के साथ-साथ अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों का भी खूब प्रयोग करते हैं। जैसे आइडिया, ड्रेस, रिहर्सल, डायलॉग, क्लब, लाइट साउंड आदि। सच्ची खुशी और जीवन का सार बताने वाला दादा जी का एक संवाद देखिए, जिसमें वे अपने त्योहारों का सामाजिक उद्देश्य बताते हैं, "...ये त्योहार हमें कोई बड़ी सीख देने के लिए आते हैं।...और यह भी कि हमारी सच्ची खुशी यही है कि हम दूसरों के आँसू पोंछ सकें!"

दादा की प्रेम भरी बातें बच्चों के हृदय में उजाला और मन में उत्साह भरती हैं। इसीलिए बच्चे अपने मन से ही कुछ रचनात्मक कार्य करने को तैयार हो जाते हैं। इसी तरह की एक बानगी और देखिए -

"नंदू : मैं भी अविनाश के साथ जाऊँगा। जो जरूरतमंद बच्चे होंगे, उनके लिए कपड़ों, किताबों का इंतजाम करूँगा।

दादा जी : और मीरा क्या करेगी?

मीरा : मैं हर इतवार को नन्हे-मुन्ने बच्चों के बीच बैठकर उन्हें चित्रकला सिखाऊँगी।

लतिका : दादा जी, मैं गाना और संगीत सिखाऊँगी।"

समाज के गरीब और जरूरतमंद बच्चों की सहायता करने की ललक, अपने आसपास के परिवेश को और अधिक बेहतर बनाने के लिए कुछ भी करने को स्वतः तैयार होना बहुत बड़ी बात है। ऐसी शुभ भावनाएँ और अंतःप्रेरणा ही इस नाटक की असली ताकत है। दादा जी का यह कहना कि, "दुख -दर्द चाहे कितना ही बड़ा क्यों नहीं हो, कितनी ही बड़ी लड़ाइयाँ और नफरत क्यों ना हो, मनुष्यता न हारी है न हारेगी।" छोटे-बड़े सभी बच्चों के लिए जीवन का सार, बल्कि सभी को प्रेरित करने वाला एक प्रकाश स्तंभ बन जाता है। यों सपनों का पेड़ वास्तव में बच्चों के सपनों की भावी दुनिया है। मानव जीवन का सार है। कविता के माध्यम से नाटक का अंत बहुत ही शानदार ढंग से हुआ है और नेपथ्य से मनु जी के मन की बात बड़े अनोखे ढंग से उभरकर सामने आती है कि हर बच्चा रोशनी का पेड़ है। और जब वह दूसरों का हमदर्द बनेगा, तभी दुनिया खुशहाल और सुंदर बनेगी।

लेखक की यह संवेदना, सरोकार और उदात्त भावना बहुत सम्माननीय है। असल बात तो यह है कि मनु जी समाज के उपेक्षित, गरीब और परिस्थितियों के मारे बच्चों को समाज के विकास की मुख्यधारा से जोड़कर उन्हें जीवन जीना सिखाते हैं। और दूसरे बच्चे भी उन्हें अपने साथ लेकर चलने को उत्सुक है। परस्पर प्रेम की यह राह ही समाज की उन्नति की राह है।

चलिए, अब जरा देखते हैं कि नए साल में मनु जी के मन के बच्चे क्या करते हैं! 'नए साल क्या-क्या लाओगे' नाटक में मनु जी बच्चों के कुछ कर गुजरने के जोश, संकल्प और जुनून को दिखाते हैं। शोभा दीदी और प्रभात दादा की बातचीत से बड़े रुचिकर ढंग से नाटक की शुरुआत होती है। नया साल बच्चों के लिए खास उत्साह भरा होता है। इस अवसर पर बच्चे पिछले साल में की गई भूलों को आगे न दोहराने का निश्चय करते हैं। कुछ अच्छे और नए लक्ष्य सामने रखते हैं। बाल मंडली के लिए यह खुशियाँ बाँटने का अच्छा अवसर है।

इस अवसर पर प्रभात दादा की प्रेरणा से शोभा, सुजाता, अमित, गोपू आदि सभी बच्चे नववर्ष पर झुग्गी-झोंपड़ियों में शिक्षा से वंचित बच्चों को शिक्षित करने की मुहिम चलाते हैं। वास्तव में ये जागरूक और संवेदनशील बच्चे शिक्षा का महत्त्व समझते हैं और वे स्वस्थ व शिक्षित समाज के निर्माण में अपनी भागीदारी निभाते हैं। ये जानते हैं कि शिक्षा जीवन में उजाला भरकर अभाव, गरीबी और पीड़ा को कम करती है। मन में अच्छे विचार भर देती है। मानो बच्चे यह कहना चाह रहे हों कि सामाजिक उत्थान और प्रगति का रास्ता शिक्षा से होकर गुजरता है। और हम बच्चे यह बात भली-भाँति जानते हैं।

इस नाटक का कथ्य एकदम व्यावहारिक और समसामयिक है। इसके साथ ही बच्चों की लोकजीवन, नृत्य, संगीत आदि के प्रति गहरी रुचि भी स्पष्ट दिखाई देती है। नाटक के बीच में अचानक बच्चों को खाँसते हुए कही गई कुछ रहस्यमयी काव्य पंक्तियाँ सुनाई देती हैं। अरे लीजिए, ये यात्री बाबा हैं, जो बच्चों को बड़े प्यार से ज्ञान-विज्ञान की बातें और प्यारी-प्यारी कहानियाँ सुनाते हैं। वास्तव में मनु जी के बहुतेरे नाटकों में कभी यात्री बाबा, कभी बाबा

महाश्वेतम तो कहीं कहानी बाबा बरबस ही बच्चों की प्रतिभा और उनके सृजनात्मक कौशल की ओर खिंचे चले आते हैं। और बच्चे तो बच्चे, बड़े भी उनके धवल श्वेत कपड़ों, चाँदी-सी चमकती दाढ़ी और मनभावन बातों के जादुई असर से बच नहीं पाते।

इस संदर्भ में एक बार जिज्ञासावश मैंने पूछा तो मनु जी का जवाब था, "बेटे अशोक, यह मेरे कथागुरु देवेंद्र सत्यार्थी जी हैं, जो अकसर मेरी बाल रचनाओं में स्वयं चले आ जाते हैं। और साथ ही कहीं-कहीं सांकेतिक रूप में देवेंद्र सत्यार्थी जी के संघर्ष भरे जीवन की झलक भी आ जाती है।" इस नाटक को पढ़ते हुए मनु जी की बात एकदम सही लगती है, और यात्री बाबा के लिए मन में बड़ा आदर का भाव उत्पन्न होता है।

'जब आया वीर बाँका' नाटक संगीत के मन-मस्तिष्क पर पड़ने वाले व्यापक प्रभाव को दिखाता है। बीच-बीच में हास्य और कौतुकपूर्ण स्थितियाँ भी हैं, जो नाटक में अच्छी खासी रोचकता पैदा करती है। साथ ही एक सच्चे वीर बहादुर को कैसा होना चाहिए, नाटक में यह बखूबी दिखाया है। सच्चा वीर साहसी, दृढ़निश्चयी और जुबान का धनी होता है। वह अन्याय और अत्याचार का डटकर सामना करता है। नाटक का मुख्य पात्र वीर बाँका अपने एक प्यारे दोस्त, ढोल की सहायता से अहंकारी राजा भुल्लन शाह को उसकी गलती का एहसास कराता है। वह दरबार में अपनी बहादुरी और योग्यता को सिद्ध करके, सेनापति का पद हासिल करता है, जिसका वह अधिकारी था। शायद मनु जी संकेत में यह कहना चाहते हैं कि कई बार अपना हक पाने के लिए हमें अपनी योग्यता सिद्ध करनी पड़ती है।

'टुनटुनिया राज्य का सबसे अक्लमंद आदमी' नाटक भी खासा मजेदार है, जो पुल्लू पुलम्मा के हास्य भरे कारनामों से बच्चों को रिझाता है। पुल्लू पुलम्मा, जो नाटक का मुख्य पात्र है, बड़ा अहंकारी है। वह बिजली के खंभे की तरह लंबा है और यह मानता है कि उसका कद लंबा है तो उसकी बुद्धि भी तो सबसे अधिक होगी। लंबा होने के कारण वह अधिक बुद्धिमान होने का अहंकार पाल लेता है। इसी कारण वह छोटे कद के टूटू टुम्मा को कुछ नहीं समझता। बाद में यही टूटू टुम्मा अपने कौशल से पुलम्मा को जीवन का सबक सिखाता है। वह सिद्ध करता है कि बुद्धि का शारीरिक कद-काठी से कोई संबंध नहीं होता। अपने यहाँ एक देशी कहावत है, 'अक्ल बड़ी कि भैंस'। वह यहाँ चरितार्थ होती दिखती है।

मनु जी का नाटक 'रहमान चाचा' भी बिल्कुल अलग-सा है। मुझे लगता है कि 'रहमान चाचा' बाल नाटक 'गोलू भागा घर से' उपन्यास के प्रभाव में लिखा गया है। इसमें शोभित के घर से भागने की मूल कथा तो स्वयं मनु जी के जीवन की ही एक घटना है, जिसे बाद में काल्पनिक पात्रों और घटनाओं के जरिए नाटक का रूप दिया गया है। नाटक की मुख्य कथावस्तु गणित की परीक्षा से डरकर घर से भागे एक बालक शोभित की परिस्थितियों और बाद के प्रसंगों से जुड़ती है। वह अपने पिता की महत्त्वाकांक्षाओं पर पूरा नहीं उतरता। शोभित कुछ और होना चाहता है जबकि पिता उसे कुछ और बनाना चाहते हैं। इस बनने और बनाने की प्रक्रिया में वह इस कदर उलझ जाता है कि इतना बड़ा फैसला ले लेता है।

शोभित गाड़ी में बैठकर दिल्ली पहुँचता है और वहाँ गलत लोगों के चंगुल में फँस जाता है। यहाँ मनु जी ने गाड़ी में और स्टेशन पर बालक की मनःस्थिति का सहज स्वाभाविक और सूक्ष्म वर्णन किया है। शोभित बहुत कोमल मन का संवेदनशील बालक है। वह सहज ही दूसरों पर विश्वास कर लेता है, जबकि दुनिया इतनी सीधी-सादी नहीं है। यहाँ शोभित को दुनियादारों का एक अलग ही रंग नजर आता है। वह अपने घर से भाग तो आया, पर अब उसे पछतावा भी है। परंतु वह इन्हीं कठिन परिस्थितियों में कुछ अच्छा करने या बनने का दृढ़ निश्चय करता है। बड़ी बात यह है कि वह अपने भीतर की अच्छाई को नहीं छोड़ता तथा सभी काम बहुत सावधानी और सूझ-बूझ से करता है। अगर शोभित के घर से भागने के कारणों की तह में जाएँ तो कई कारण मिलेंगे। यहाँ तक कि माता-पिता की महत्त्वाकांक्षा और मौजूदा शिक्षा व्यवस्था भी कटघरे में खड़ी हो जाएगी। लेकिन यह भी तो जरूरी नहीं कि हर किसी को रहमान चाचा ही मिल जाएँगे।

यहाँ मनु जी ने सूत्रधार के माध्यम से बच्चों की लापरवाहियों का भी संकेत किया है कि बच्चे शिक्षक के पढ़ाते समय ध्यान न देकर, दोस्तों की बातों को ज्यादा महत्त्व देते हैं। वे टी.वी., वीडियो गेम आदि देखने में अपना समय गँवा देते हैं। फिर उन्हें बाद में पछताना पड़ता है। मनु जी स्पष्ट करते हैं कि सही मार्गदर्शन के अभाव में कई बार पढ़ाई का यही भय बच्चों को आत्महत्या या बड़े अपराधों की ओर गलत दिशा में ले जाता है। यहाँ शोभित अपनी कुशलता और एक अन्य लड़के, अशरफ की सहायता से अपराधियों की पहचान कर लेता है। बूढ़े आदमी के सहयोग से वह खुद बच निकलता है और अपराधियों के गिरोह का भी पर्दाफाश करता है। अंत में रहमान चाचा, जो एक भले पुलिस अधिकारी हैं, शोभित के आत्मविश्वास को मजबूत करते हैं। ठीक वैसे ही, जैसे रामकथा में जामवंत हनुमान जी को उसके अंदर की शक्ति की पहचान कराते हैं। रहमान चाचा शोभित से बहुत सार्थक बात कहते हैं, "हाँ, और सुनो, अब तुम अपने आप को अयोग्य और निकम्मा मानना छोड़ दो। तुम सच्चे हो। ईमानदार हो और बहादुर हो। और सबसे बड़ी बात यह है कि दूसरों के लिए कुछ भी करने का जज्बा है तुम्हारे दिल में। यह बहुत बड़ी बात है।"

मनु जी अपनी रचनाओं के द्वारा बाल पाठकों को योग्यता और स्वाभिमान की पहचान करना सिखाते हैं। उनके कई नाटक देश और समाज के लिए कुछ अच्छा करने की भावना से जुड़े हैं। ऐसे ही मनु जी के कई ऐसे बेहतरीन नाटक हैं, जो शिक्षा का महत्त्व बताने के साथ-साथ बुरी संगत से बचने की सीख देते हैं। साथ ही मुसीबत के समय मुश्किल में पड़े लोगों की सहायता करने के लिए प्रेरित करते हैं। इससे वे बच्चों को अपने दोस्त नाटक लगते हैं।

मनु जी के नाटकों की विविधता भी देखने लायक है। उन्होंने प्रकृति, पर्यावरण, साहित्य, समाज, शिक्षा, राजनीति, प्राचीन गौरव और मानवीय मूल्यों पर केंद्रित नाटक लिखे हैं, तो झूठ और पाखंड को खोलने वाले नाटक भी हैं। यहाँ तक कि हास्य और मनोरंजन पर आधारित नाटक भी उनके यहाँ मिल जाएँगे। ऐसे हँसते-हँसाते नाटक, जो बच्चों के मन में बैठ जाते हैं। ऐसे ही 'घर ले जाओ' नाटक झूठ, पाखंड और लोभ-लालच की पोल खोलता है। यहाँ अहंकार और अक्खड़पन पर विनम्रता, उदारता और सद्व्यवहार की जीत होती है। रामरतन, एक अच्छा

कलाकार तो है, परंतु उसकी नीयत अच्छी नहीं है। अधिक धन कमाने के लालच में वह सही-गलत नहीं देख पाता। साथ ही उसके व्यवहार में विनम्रता भी नहीं है। इसी लोभी और अहंकार वृत्ति के कारण उसका सारा कार्य-व्यापार चौपट हो जाता है, जबकि श्यामलाल अपनी विनम्रता और उदारता के कारण सबका प्रिय हो जाता है। देखते ही देखते उसके सारे खिलौने बिक जाते हैं और वह लोगों के दिलों में रहने लगता है।

दूसरी ओर, रामरतन अपने खिलौने बेचने के लिए झूठ और पाखंड का सहारा लेकर भोली-भाली जनता को ठगता है। पर फिर एक दिन, एक सच्चा और तेजस्वी दरवेश तर्क के आधार पर उसके झूठ का पर्दाफाश करता है। बाबा की बात लोगों की समझ में आ जाती है और सभी शर्मिंदा होकर वापस लौट जाते हैं। यहाँ कहीं मनु जी का इशारा आजकल के झूठे, लोभी बाबाओं, धर्मगुरुओं, तांत्रिक-ओझाओं की तरफ तो नहीं है, जो भोले-भाले लोगों को भावनाओं के जाल में फँसाकर तरह-तरह से लूटते हैं। ऐसे लोग किसी भी दृष्टि से मानव या समाज हितैषी नहीं होते। यहाँ पर भी 'सच्चे का बोलबाला, झूठे का मुँह काला' वाली उक्ति पूर्ण चरितार्थ होती है।

रामरतन को फटकारते हुए कही गई बूढ़े दरवेश की बातें बड़ी वजनदार हैं। वह कहता है, "तू तो बहुत झूठा और ठग है भाई! अगर तेरी यह बात सच है कि लक्ष्मी की यह मूर्ति घर में रखने पर सोने और रुपयों की बारिश होगी, तो तू ही इसे अपने घर में रखकर धनवान क्यों नहीं हो जाता। क्यों इसके लिए हुए गली में मारा-मारा फिरता है!" बूढ़े दरवेश की बातों में सच्चाई है, इसलिए उसकी बातों का सब पर असर होता है। इसी कारण रामरतन शर्मिंदा होकर स्वीकार करता है, "ओह, लालच ने मेरी आँखें अंधी कर दी थीं। अब मुझे समझ में आया, मुझसे भूल हुई है, बड़ी भारी भूल...! अब फिर वही सीधी-सादी मेहनत की जिंदगी शुरू करूँगा। उसी में आनंद है, जीवन का सच्चा आनंद!"

इसी तरह एक छोटे बच्चे नितिन की सपनीली दुनिया से जुड़ा मनु जी का 'और मिल गया खजाना' नाटक बड़ी सहजता से सिद्ध करता है कि 'मेहनत ही सफलता की कुंजी है'। इसी से दुनिया का खजाना और खुशियाँ मिल सकती है। यहाँ नितिन के मन में बड़ा ही स्वाभाविक-सा प्रश्न उठता है कि लोग अमीर कैसे बनते हैं? क्योंकि अपने आस-पास के परिवेश में वह अमीरों और गरीबों की जीवन शैली और कार्य का अंतर देखता है। यह उसके मन पर प्रभाव डालता है। और प्रभात अंकल बड़ी कुशलता से उसके सवाल का जवाब देते हैं। परिश्रम से कमाया गया धन ही जीवन में सच्ची खुशी और आनंद देता है। सफलता पाने के लिए परिश्रम ही उसका एकमात्र साधन है। और परिश्रम का कोई विकल्प नहीं होता।

'विचित्र देश के महा आलसी!' नाटक भी आलसी लोगों की दुनिया की गलतफहमी और झूठे मिथक को दूर करता है। यह नाटक हमें सिखाता है कि जीवन को सुंदर एवं स्वस्थ बनाने के लिए शरीर में आलस्य नहीं होना चाहिए, बल्कि हमें चुस्ते-फुर्तीला और कर्मशील होना चाहिए। कर्मशील व्यक्ति ही सभी कार्य सही समय पर सही ढंग से कर सकता है। साथ ही वह

मुसीबत में पड़े लोगों की मदद भी कर सकता है। इस नाटक के जरिए मनु जी यह संदेश देते हैं कि आलसी व्यक्ति न केवल अपने शरीर को, बल्कि अपने भविष्य को भी बिगाड़ लेता है। आलस्य एक शारीरिक और मानसिक अवगुण है। यह बुरी आदत है, जो अपने साथ कई बुराइयों और बीमारियों को लेकर आता है। फिर आलस्य बच्चों का तो सबसे बड़ा शत्रु है। आलसी आदमी कभी कोई काम सुचारु रूप से नहीं कर पाता, न ही उसे कभी सफलता मिलती है। अतः आलस्य को कभी जीवन में प्रवेश नहीं करने देना चाहिए।

यहाँ बड़े ही हलके-फुलके ढंग से एक बहुत महत्त्वपूर्ण विषय को मनु जी ने अपने नाटक के जरिए उभारा है।

दादी-नानी की कहानियाँ बच्चों को बड़े रोचक ढंग से जीवन के बड़े-बड़े पाठ सिखा देती हैं। इस तरह बच्चों को शिक्षित करने व अच्छे संस्कार देने में उनकी बड़ी भूमिका है। फिर उनकी किस्सागोई का तो कोई जवाब ही नहीं। मनु जी का ऐसा ही एक गजब का पद्यात्मक नाटक है, 'नानी की कहानी'। इसमें बच्चे कहानी सुनने के लिए उत्सुक होकर नानी के चारों ओर बैठ जाते हैं। नानी का कहानी सुनाने का अंदाज बड़ा ही निराला और उत्सुकता पैदा करने वाला है। उसमें केवल कहानी सुनाना ही नहीं, बल्कि भावों और भाषा में गहरा उतार-चढ़ाव, भाव-भंगिमाएँ और अभिनय भी शामिल है। वास्तव में 'नानी की कहानी' में कहानी के साथ-साथ कविता और नाटक विधाएँ भी शामिल हैं। कहानी सुनने वाले बच्चों के काव्यात्मक संवाद बहुत ही जीवंत है। पढ़ते-पढ़ते सारा दृश्य आँखों के सामने सजीव हो उठता है। यों मनु जी इस नाटक के जरिए केवल मनोरंजन ही नहीं करते, बल्कि दादी-नानी के कहानी के माध्यम से उन्हें बड़े-बुजुर्गों के संस्कारों, गुणों, अनुभवों, ज्ञान और कौशल से जोड़कर बच्चों को सामाजिक और व्यावहारिक भी बना रहे हैं।

'जसोदा बाबू की अमर गाथा' बेहद मार्मिक और सीख देने वाला बेहतरीन सामाजिक नाटक है। यह सामाजिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक विमर्शों को नए आलोक में देखने के लिए प्रेरित करता है। नाटक के केंद्र में एक गरीब बच्चे जस्सू की कहानी है, जो पढ़ना तो चाहता है परंतु परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि उसके चाचा उसे पढ़ा नहीं पा रहे। उसे भेड़-बकरियाँ चराने का काम करना पड़ता है। परंतु जैसे ही वह स्कूल के पास से गुजरता है और स्कूल में जाते हुए बच्चों को देखता है, या फिर कक्षा में पढ़ाते अध्यापक की आवाज को सुनता है, तो उसमें भी पढ़ने की ललक पैदा होती है। वह मन ही मन सोचता है कि काश! वह भी स्कूल जा पाता। पर उसकी परिस्थितियाँ कुछ अलग थीं। आखिर अपनी अंतः प्रेरणा और नियमित अभ्यास से वह स्कूल के पीछे बैठकर ही बहुत कुछ सीख गया।

फिर एक दिन स्कूल के अध्यापक ने उसे देखा, तो अचरज से भर उठे। उन्हें मानो धूल में पड़ा कोई हीरा मिल गया हो। वे गरीब जस्सू की पढ़ाई का खर्चा खुद उठाते हैं और उसे स्कूल में दाखिल कर लेते हैं। बस यहीं से जस्सू के जीवन की दिशा बदल गई। इस नाटक के द्वारा मनु

जी ने एक आदर्श, पारखी और समर्पित अध्यापक के गुण, स्वभाव और कार्यशैली पर प्रकाश डाला है। वहीं ऐसे बच्चों के अंदर की लगन, उनके निश्चय और साहस की सराहना भी की है, जो विपरीत परिस्थितियों में भी शिक्षा की राह निकाल लेते हैं।

यह नाटक बच्चों के साथ-साथ बड़ों में भी संवेदना का विस्तार करता है। यहाँ आदर्श विद्यार्थी वाली कृतज्ञता और समर्पण भी है। जस्सू विदेश में धन कमाने के बजाय, अपने देश व समाज में अपने जैसे जरूरतमंद बच्चों के घर जाकर शिक्षा का अलख जगाना चाहता है। उसके जीवन का आदर्श देखिए। जब मास्टर जी उससे पूछते हैं कि आगे क्या करना चाहते हो जस्सू, तो वह भावुक होकर कहता है, "मास्टर जी, आपने मुझे धूल-मिट्टी से उठाकर बड़ा किया। पर अभी मेरे जैसे बहुत हैं। मैं गाँव-गाँव में शिक्षा का अलख जगाना चाहता हूँ।" मनु जी ने कितना बड़ा आदर्श और लक्ष्य बच्चों के सामने रखा है, यह देखने की बात है। अयोध्यानाथ जैसे संवेदनशील शिक्षक की भूमिका भी प्रशंसनीय है। जस्सू कहता है, "मास्टर जी, इसमें मेरा कुछ नहीं है। सब कुछ आपका ही दिया है। आपने उस दिन जस्सू के सिर पर हाथ फेरकर उसके हृदय में ज्ञान का जो दीपक जलाया था, यह उसी का प्रकाश है। सारी दुनिया जिसे यशोदानंदन के रूप में जानती है, वह असल में तो वही आपका जस्सू ही है।"

वास्तव में आज अयोध्यानाथ जैसे मानव शिल्पी अध्यापकों की आवश्यकता है। ऐसे समर्पित अध्यापक ही जाति, धर्म, अमीरी और गरीबी के भेद-भाव से ऊपर उठकर, धूल में मिले जस्सू जैसे रत्नों की पहचान करके उन्हें तराश सकते हैं। उनके भीतर छिपी ज्ञान की ललक को सही दिशा दे सकते हैं। कहा जा सकता है कि प्यार, सहानुभूति और सच्ची प्रेरणा से अबोध बच्चों के व्यक्तित्व को निखारकर कुछ भी बनाया जा सकता है। मनु जी का यह नाटक प्रत्यक्ष रूप में इस बात का प्रमाण है कि "अध्यापक वह दीपक है, जो स्वयं जलकर चारों ओर अपना प्रकाश फैलाता है।"

'राख में छिपे सुनहले अक्षर' नाटक फ्लैशबैक शैली में चलता हुआ बड़े प्रभावी ढंग से अपनी बात कहता है। इस नाटक की कथावस्तु सुप्रतिष्ठित साहित्यकार, रामदरश मिश्र जी के जीवन पर आधारित है। वही इस नाटक के मुख्य पात्र सरस्वती बाबू हैं, जिन्हें बचपन में सब सरू कहकर बुलाते थे। सरू बुरी तरह डाँट-डपट करने वाले कठोर अध्यापक के डर से पढ़ाई बीच में छोड़कर घर बैठ जाता है। लेकिन माँ तो माँ होती है, वह बच्चे को दुखी कब देख सकती है! उसकी माँ जानती है कि शिक्षा के बिना बच्चे का जीवन अंधकारमय हो जाएगा। वह शिक्षा का महत्त्व जानती है। वह नहीं चाहती कि उसका बेटा पढ़ाई के बगैर गरीबी और अभावों के बीच पले। इसलिए सरु के हार मानने पर भी माँ हार नहीं मानती। वह सरू को घर के आँगन में चूल्हे की राख और मिट्टी पर उँगलियाँ फिरा-फिराकर लिखना-पढ़ना सिखाती है।

माँ के पढ़ाने का असर यह हुआ कि वह शीघ्र ही क, ख, ग सीख गया। गंगा काका ने पाँच तक पहाड़े सिखाए। यहाँ बड़ी बात बच्चे के मन से जुड़ने और सहजता से उसे सिखाने की है।

कई बार तो बड़े-बड़े डिग्रीधारक अध्यापक भी बच्चे के मन तक नहीं पहुँचे पाते। परिणाम वही, बच्चा स्कूल और अध्यापक के नाम से ही डरने लगता है और आखिर वह स्कूल छोड़ देता है। दूसरी ओर गंगा काका और ममतामयी माँ का स्वाभाविक तरीका उन्हें और अधिक सीखने के लिए प्रेरित करता है। उसके अंदर सीखने की ललक और जिज्ञासा पैदा होती है। माँ बेशक अनपढ़ हो, लेकिन उससे बेहतर कोई गुरु नहीं हो सकता। इस कहानी के माध्यम से मनु जी यह संदेश देते हैं कि बच्चों को करियर और किताबों के अनावश्यक बोझ से दूर रखना चाहिए। शिक्षक को बच्चे पर कुछ भी थोपना नहीं चाहिए। बल्कि सहज रूप में उसके अंदर की शक्तियों को जगाना चाहिए। ऐसे आजाद वातावरण में ही बच्चे का शारीरिक और मानसिक विकास खुलकर हो पाता है।

सरस्वती बाबू अपने सम्मान समारोह में व्याख्यान देते समय अपनी कामयाबी का सारा श्रेय माँ को ही देते हैं। वे कहते हैं, "वही माँ मेरी पहली गुरु थीं। आज वे नहीं हैं पर उनका चेहरा याद करके आज भी मेरी आँखें भर आती हैं।" सच पूछिए तो 'राख में छिपे सुनहले अक्षर' एक माँ के त्याग, समर्पण और लगन को दर्शाने वाला बहुत सुंदर नाटक है। मनु जी के ऐसे नाटकों से एक बात यह भी सिखने को मिलती है कि अच्छा प्रबंधन कैसे किया जाए? यानी कम से कम साधनों से या केवल उपलब्ध संसाधनों से ही लक्ष्य कैसे हासिल किया जाए। बाल नाटकों में यह बात ले आना सामान्य बात नहीं है, बल्कि उच्च कोटि का कौशल है। इससे यह भी पता चलता है कि अपने देश, समाज को लेकर मनु जी की चिंताएँ और सरोकार बहुत गहरे हैं।

यही विशेषता 'जब राजकुमारी ने भूख को जाना' नाटक में भी है। यह एक लोककथा पर आधारित गजब का सामाजिक और राजनीतिक नाटक है, जो बच्चों को कल्पना और सुख-वैभव की दुनिया से निकलकर जीवन की वास्तविकता समझने के लिए प्रेरित करता है। इस तरह यह बच्चों को यथार्थ की जमीन से जोड़ने वाला नाटक है। इस नाटक के जरिए बच्चे यह समझ जाते हैं कि अन्न के बिना जीवन नहीं चल सकता। यह जीवन की पहली आवश्यकता है। भूख के आगे हीरे-मोती-जवाहरात किसी काम के नहीं। शरीर और मन को जिस ऊर्जा की जरूरत है, वह अन्न से ही मिल सकती है, धन-दौलत से नहीं। इसलिए मानव जीवन की सबसे सुंदर और कीमती वस्तु अन्न है। इसके बिना मानव जीवन का अस्तित्व ही संभव नहीं है।

नाटक की कथावस्तु भी बड़ी रोचक है। राजकुमारी नंदिनी का साम्राज्य विशाल और समृद्ध है। वह स्वयं भी सुंदर और बुद्धिमान है, पर जरा तुनकमिजाज है। उसे अपनी सुंदरता और बुद्धिमता पर अहंकार है। राजकुमारी की शर्त है कि जो आदमी उसे दुनिया की सबसे सुंदर वस्तु लाकर देगा, वह उसी से शादी करेगी। तब जयंत, जो एक अनोखा नाविक है और राजकुमार नंदिनी से प्रेम करता है, उसे विदेशों से बढ़िया गेहूँ के हजारों बोरे लाकर देता है। लेकिन राजकुमारी को यह अपना अपमान लगा। वह गुस्से के मारे चिल्लाने लगती है। उसने कभी भूख को महसूस नहीं किया था, इसलिए वह अन्न के महत्त्व को नहीं जानती थी। उसका पालन-पोषण बड़ी सुख-सुविधाओं में हुआ था। इसलिए गेहूँ के बोरे उसके लिए बहुत मामूली

और साधारण चीज थे। कुपित होकर वह गेहूँ के बोरों को समुद्र में फेंकने का आदेश देती है।

आखिर पूरा राज्य ही अकाल की चपेट में आ जाता है। अब उसे चारों ओर भूख से मरने वालों की चीखें सुनाई देती हैं। राज्य के सभी लोग राजकुमारी नंदिनी को ही इसके लिए जिम्मेदार मानकर, उसे धिक्कारते हैं। सब लोग दाने-दाने को मोहताज हो गए। महल का सारा अनाज खत्म हो गया। सैकड़ों लोग नंदिनी को घेरकर अनाज माँगने लगे। महल में सोने-चाँदी और हीरे-जवाहरात के ढेर थे, लेकिन उन्हें खाया नहीं जा सकता। जब उसने भूख से तड़पती हुई अपनी जनता की हालत देखी तो उसके हृदय में करुणा जागी। वह एक जहाज में बेशकीमती रत्न लेकर अपनी प्रजा के लिए गेहूँ लेने निकल पड़ती है। पर दुर्भाग्य से वह जहाज पानी में डूब जाता है। राजकुमारी किसी तरह बच जाती है। भूख से विकल होकर वह भटक रही है। तब जयंत, जो अब कमालपुर का राजा बन चुका है, उसकी मदद करता है। राजकुमारी नंदिनी को अपनी भूल का अहसास और अपने किए पर पछतावा हो रहा था। अब वह केवल भूख को ही नहीं पहचानती, बल्कि सामान्य आदमी के दुख-दर्द को भी समझने लग जाती है।

यहाँ मनु जी अनाज के प्रबंध और भंडारण के साथ-साथ अन्न के एक-एक दाने का महत्त्व सिद्ध करते हैं। कुछ धनाढ्य लोग शादी-ब्याह या तीज-त्योहारों के अवसर पर अन्न का दुरुपयोग करते हैं। वे भूल जाते हैं कि हमारे समाज में बहुत से ऐसे लोग हैं, जिन्हें एक समय का भी भोजन नहीं मिलता। अतः हमें केवल उतना ही भोजन थाली में लेना चाहिए, जितनी हमें आवश्यकता हैं। इस नाटक के जरिए बच्चों को बड़े सांकेतिक ढंग से छोटी उम्र में ही ये अच्छी आदतें सिखाकर मनु जी अपने सामाजिक दायित्व को निभाते हैं।

फिर मनु जी के नाटकों के पात्र भी बड़े अनूठे और अजीबोगरीब हैं। यहाँ एक गुलाब का पौधा भी आपको पुस्तक पढ़ता नजर आएगा। 'नन्हा गुलाब पढ़ता नई किताब' बहुत सरस पद्य नाटक है, जिसमें नट और नटी के जीवंत एवं कौतूहल भरे संवाद नाटक को बहुत ही रोचक बना देते हैं। मनु जी ने एक सुर्ख गुलाब पर बाल मनोभावों का निरूपण किया है। एक नन्हा गुलाब हाथों में किताब पकड़े मजे से पाठ पढ़ रहा था, जिसे देखकर सब हैरान हो जाते हैं। इसमें मनु जी ने खिलखिलाते प्राकृतिक सौंदर्य और पुस्तकों के सौंदर्य का बहुत ही मनोरम चित्र प्रस्तुत किया है। संवादों की भाषा और नाटक का एक-एक दृश्य लाजवाब है। जरा संवादों की एक बानगी देखिए -

"मिंकी : जाने कितने रंगों वाली।
छुटकी : जाने कितने चित्रों वाली।
चंदू : प्यारे-प्यारे किस्सों वाली।
सब बच्चे : (मस्ती में भरकर दोहराते हैं)
आहा, नई किताब,
पढ़ता नन्हा एक गुलाब!

नील : उसमें हैं जी मीठे किस्से।
नीना : जाने क्या है उसने देखा?
निक्का : होंठों पर चहकी एक रेखा।

गीत शैली में लिखा गया यह एक मुकम्मल नाटक है। पर बात यहीं पर खत्म नहीं होती। इसलिए कि केवल नाटक को गीतात्मक शैली में लिखना ही मनु जी का उद्देश्य नहीं है। असल में मनु जी यहाँ बड़े अनूठे ढंग से बाल साहित्य की किसी अच्छी पुस्तक की कसौटी गढ़ते हैं। उसकी परिभाषा बताते हैं कि बाल साहित्य की पुस्तक कैसी होनी चाहिए? उसमें क्या-क्या आकर्षण होना चाहिए। वह रंग-बिरंगे चित्रों वाली हो, मीठे-मीठे प्यारे किस्सों वाली हो तथा उसकी भाषा में बड़ी सरलता होनी चाहिए, जिसे देखते ही बच्चों के चेहरों पर प्यारी-सी मुसकान छा जाए। साथ ही जिसे पढ़ते हुए उनका मन मुग्ध हो जाए, बच्चों की किताब ऐसी होनी चाहिए।

'ताजी-ताजी पूरी-भाजी' मनु जी का बिल्कुल अलग-सा नाटक है, जिसमें एक गरीब बच्चे के जीवन के दर्दनाक हालात और असलियत सामने आती है। यह बड़ी कठिन परिस्थितियों में भी हिम्मत रखने वाले परिश्रमी बब्बू की कहानी है। नाटक में बब्बू के मन का द्वंद्व है, उसकी समस्या और समाधान भी। यह नाटक हमें दुखी, असहाय और मेहनती लोगों की सहायता करने और उनसे प्रेम करने की सीख देता है। वास्तव में जिसने दुख और भूख को नजदीक से देखा है, वही इन दोनों का स्वाद जानता है। और फिर वही व्यक्ति दूसरों की सहायता के लिए भी दौड़ता है। बब्बू ऐसा ही सच्चा और संवेदनशील बालक है। वह केवल अपने लाभ या स्वार्थ के लिए परिश्रम नहीं करता, बल्कि अपने जैसे और लोगों के दुखों को कम करने के लिए कम कीमत पर अच्छी ताजी पूरियाँ बेचता है।

इस नाटक में कुछ खल पात्र भी हैं। जैसे बिना बात गरीबों को सताने वाले पुलिस के लोग और दूसरे मतलबी दुकानदार। ये बब्बू के प्रति ईर्ष्या रखते हैं। मनु जी ने इनके जवाब में सुधाकर जी और पत्रकार सक्सेना जैसे सहृदय पात्रों को रचकर कहानी को और भी रोचक बना देते हैं। कहानी का मुख्य नायक बब्बू जितना संवेदनशील और सहृदय है, उतना ही सूझ-बूझ वाला और धैर्यवान भी है। वह सहयोग लेना भी जानता है और देना भी जानता है। वह समाज के उपेक्षितों और पिछड़ों का प्रतिनिधित्व करता है। और सबसे बड़ी बात यह कि उसके अंदर परिश्रम करके आगे बढ़ने की ललक है। उसमें कामचोरी और बेईमानी की आदत नहीं है। दूसरों द्वारा बाधाएँ पैदा करने पर भी वह डरता और हारता नहीं है। बल्कि दूने उत्साह से उस मुसीबत में कोई न कोई राह निकाल लेता है। वह भूखे और गरीब लोगों को दुखी नहीं देख सकता। यह सामान्य गुण नहीं, बल्कि देवत्व जैसा गुण है, जो उसे दूसरों से ऊँचा उठाता है। यह भावना, ये गुण स्वतः उसके अंदर पनपे हैं। वह अपने काम को पूजा समझकर पूरी निष्ठा से करता है। ग्राहक की संतुष्टि और स्वच्छता उसकी पहली प्राथमिकता है।

बब्बू को इस काम में अपनी माँ से बड़ा सहारा मिलता है। माँ उसे अकेला नहीं पड़ने देती। बब्बू की आत्मा उजली है। पवित्र है। इसी कारण उसका लक्ष्य भी बहुत बड़ा है। देखिए नाटक का एक प्रभावी अंश, जिससे बब्बू के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है -

"सुधाकर जी : (बब्बू का कंधा थपथपाते हुए) लेकिन बब्बू, आज के जमाने में इतनी सस्ती पूरियाँ कैसे बेच पाते हो? अब तो महँगाई भी बढ़ गई है।

बब्बू : बाबू जी, महँगा खाना बेचने वाले तो बहुत हैं, पर मुझे तो अपना ख्याल आता था। अपने दुर्दिन याद आते थे। जो मेरे जैसे लोग हैं, दिनभर मेहनत करते हैं, सस्ते में उनका पेट भर जाए, उन्हें साफ-सुथरा और अच्छा खाने को मिले। यह कौन सोच रहा है? रिक्शा वाले, ताँगे वाले, मजदूर सब मेरे यहाँ आते हैं और तृप्त होकर जाते हैं। इनके चेहरों पर तृप्ति देखकर मुझे बहुत खुशी मिलती है।"

रेहड़ी लगाने वाले, चाय के खोखों पर काम करने वाले, कूड़ा बीनने वाले और दिन भर मजदूरी करने वाले गरीब और उपेक्षित लोगों को मनु जी ने बाल साहित्य में प्रतिष्ठित किया है। इन लोगों का संघर्ष बहुत बड़ा और अंतहीन है। ऐसे लोगों को नायक बनाना भी बड़ी बात है। सच तो यह है कि बब्बू दूसरे लोगों को पूरी-सब्जी खिलाकर कोई व्यापार नहीं कर रहा, बल्कि अपने जैसे गरीब-मजदूर लोगों को खुशियाँ बाँट रहा है। उससे जितना बन पा रहा है, उतनी उनकी मदद और सेवा कर रहा है। यह मानवीय भावनाओं और सरोकारों से भरा बहुत सुंदर और रोचक नाटक है।

बच्चों का तन मन जितना कोमल होता है, उनके क्रिया-कलाप भी उतने ही मासूमियत और भोलेपन से भरे होते हैं। उनकी भोली तुतलाती भाषा हर किसी को अपना बना लेती है। उनकी हर बात में अपनापन और जिज्ञासा भरी होती है। अब देखिए न! छोटा-सा पप्पू दादा बन गया। यानी 'पप्पू बन गया दादा जी' नाटक में एक नटखट बच्चे की शरारतों, मस्ती में किए गए कार्यों, उसकी बेपरवाह जिंदगी और निर्भय-स्वच्छंद वातावरण का बड़ा खूबसूरत चित्रण है। पाठक पढ़ते-पढ़ते इसमें रमता चला जाता है। यहाँ पप्पू दादा जी का चश्मा, छड़ी और अखबार लेकर दादा जी बनकर घर में हू-ब-हू वैसा ही व्यवहार करता है। उसके हाव-भाव, चाल-ढाल सब कुछ दादा जी जैसा है। उसे इस तरह एक्टिंग करते देख सभी खुश होकर हँसते हैं।

बच्चे प्रायः बड़ों की ऐसी नकल करते हैं और प्रशंसा भी पाते हैं। यहाँ पप्पू दादा जी का अभिनय ही नहीं करता, बल्कि इस अभिनय में वह मन ही मन दादा जी के जीवन अनुशासन, आदत, हाव-भाव और स्वभाव को भी अपना लेता है। वह इस अनुकरण में वैसा ही इनसान बनने की छवि अपने अंदर समेट लेता है। यह बच्चों को सिखाने और सात्विक मनोरंजन करने का सही तरीका है। बच्चे अनुकरण से बहुत जल्दी सीखते हैं।

इस संदर्भ में मनु जी लिखते हैं, "नाटक बच्चों की सबसे प्यारी और दोस्त विधा है, जिसमें उनकी कल्पना शक्ति और रचनात्मक ऊर्जा का भरपूर इस्तेमाल होता है। फिर नाटक कोई भी हो

पौराणिक या मनोरम फंतासी लिए हुए, हास्य प्रधान या मीठी सीख देने वाला। अंततः बच्चों का वही नाटक कामयाब माना जाता है, जिसमें पूरी जिंदादिली हो और बच्चे जिसे देखते या पढ़ते समय पूरी तरह लीन हो जाएँ।"

'पप्पू बन गया दादा जी' नाटक में बच्चे की अबोधता और सहज भोलापन देखने लायक है। जब बच्चा अपने दादा जी अभिनय करता है तो वह अचानक कहता है, "अरे वाह! मैं सचमुच दादा जी बन गया!.... क्या बात है। पर भाई, अभी एक कमी है, अखबार! दादा जी तो जब भी देखो, चश्मा लगाए नजर आते हैं। भला बगैर अखबार के मैं दादा जी कैसे लगूँगा?"

ऐसे नाटकों में बच्चा सूक्ष्म निरीक्षण करना भी सीखता है। फिर यहाँ नाटक की भाषा में अपनापन और संवादों में भोलापन देखने और प्रशंसा करने लायक है।

आज मनु जी उन साहित्य सेवियों में हैं, जिनका लेखन बाल मनोविज्ञान की सूक्ष्म समझ से उपजा है। वह जितना विषयों की विविधता लिए हुए है, उतना ही मूल्यवान भी है। मनु जी का बहुआयामी व्यक्तित्व उनकी साहित्यिक कृतियों उपन्यास, नाटक, कहानी और संस्मरणों आदि में मुखर रूप से सामने आता है। बच्चों की भाषा, अभिनय की रुचि, उनके खेलकूद, शरारतें और सीखने का मनोविज्ञान मनु जी के भीतर बैठा बाल रचनाकार खूब जानता है। इसीलिए इन्होंने बच्चों की पसंद-नापसंद, रुचि, प्रवृत्ति, आदत और स्वभाव को ध्यान में रखकर सीधी, सरल बोधगम्य भाषा में बच्चों को रिझाने, गुदगुदाने और तनाव कम करने वाले करीब सौ नाटक लिखे हैं। ये बाल साहित्य की बहुत बड़ी और मूल्यवान उपलब्धि हैं।

मनु जी के नाटक सीधे-सरल होते हुए बहुत कुछ अनकहा कह जाते हैं, जो सूक्ष्म विमर्श की माँग करते हैं। इन नाटकों की बुनावट बहुत ही सीधी, सहज है, फिर भी उनके भीतर...और भीतर उतरने की आवश्यकता है। उनमें जीवन के विविध आयामों, सरोकारों, चिंताओं और संभावनाओं के नित नए द्वार खुलते हैं।

फिर मनु जी के नाटक मनोरंजन करते हुए भी खेल-खेल में सीख देते हैं। जीवन का व्यावहारिक गणित सिखाते हैं। अपने परिवेश में घुलना-मिलना सिखाते हैं। मानव जीवन, पर्यावरण और प्रकृति के बीच सम्यक ढंग से संतुलन साधना सिखाते हैं। इसके साथ ही विकास के लिए आधुनिक तकनीक की उपयोगिता एवं महत्त्व को भी सामने रखते हैं। मनु जी के नाटक बुरे कामों से, बुरे आदमियों से, निठल्लेपन, आलस्य, झूठ, और छल-बल से दूर रहना सिखाते हैं। यह एक प्रकार से पाठकों के मन का विरेचन है। इन नाटकों को पढ़कर बाल पात्र स्वयं बुराइयों और दूसरी विकृतियों से तौबा कर जाते हैं। नाटक का कथ्य और भाषा इतनी असरदार हैं कि पात्र के साथ-साथ पाठक भी कह उठता है कि, "छी! छी! ऐसा घृणित कार्य, मैं तो कभी नहीं करूँगा।" दूसरी ओर यही कथ्य और भाषा पाठक को चारित्रिक दृढ़ता और उत्साह भी देती है कि, "अरे वाह! ऐसा तो मैं भी कर सकता हूँ...या फिर मैं भी ऐसा ही बनूँगा।" यह है मनु जी के नाटकों की असली ताकत!

अपनी रचना-प्रक्रिया के विषय में बताते हुए मनु जी स्वयं स्वीकारते हैं कि, "मैं हर रचना को लिखने के बाद उसे कई बार एक सामान्य पाठक की दृष्टि से पढ़ता हूँ। उस रचना की भाषा कैसी है, उसके पात्र कैसे हैं, उसकी शैली बच्चों के अनुकूल है या नहीं, रचना का कथ्य बच्चों की बच्चों में रुचि पैदा करता है या नहीं। और जब मैं पूर्ण आश्वस्त हो जाता हूँ कि यह रचना उपयुक्त है, तभी उसे आगे भेजता हूँ।" मनु जी यही अंतर्दृष्टि अगली पीढ़ी के रचनाकारों में भी पैदा करना चाहते हैं। यह एक बड़े सर्जक की पहचान है। और ऐसा बिरले, बहुत बिरले सर्जक ही कर पाते हैं। मनु जी के नाटकों को पढ़कर लगता भी है कि ये नाटक कई स्तरों पर मँजते हुए, एक तरह की पूर्णता के साथ पाठकों तक पहुँचते हैं।

इतना ही नहीं, बल्कि इन रचनाओं में स्वयं प्रकाश मनु जी भी उपस्थित रहते हैं, कभी कोई अबोध बच्चा बनकर, तो कभी किसी सहृदय अभिभावक या उदार हृदय वाले मार्गदर्शक के रूप में। मनु जी के नाटकों की एक और खासियत है कि इनके नाटकों की कथावस्तु कहीं व्यक्तिगत जीवन से ली गई है, तो कहीं किसी बड़े महान साहित्यकार या कलाकार के जीवन की किसी प्रमुख घटना से। उनके संघर्ष और जीवट से प्रेरित होकर तथा उनके बताए रास्तों पर चलकर, बच्चे अपने जीवन की दिशा तय करते हैं। इन महान लोगों का जीवन कदम-कदम पर मानव जीवन को बेहतर बनाने की प्रेरणा देता है।

मनु जी के कुछ नाटकों को लेकर जिज्ञासावश मैंने प्रश्न किया कि, "गुरु जी, आपके कई नाटक बड़े साहित्यकारों और कलाकारों के जीवन पर आधारित है। इस बारे में कुछ बताइए?" तब मनु जी ने सहृदयता से बताया कि, "प्रिय अशोक बेटे, तुम्हारी बात ठीक है। 'जसोदा बाबू की अमर गाथा' शैलेश मटियानी जी की जीवन गाथा पर केंद्रित है। 'राख में छिपे सुनहले अक्षर' में रामदरश मिश्र जी का बचपन है। 'एक था वसंत' में असमी के दिग्गज साहित्य मनीषी शंकरदेव जी की जीवन कथा है। 'धरती का कलाकार' में शांतिनिकेतन के एक बड़े कलाकार, रामकिंकर जी की कथा है। इसमें मास्टर मोशाय के रूप में नंदलाल बसु उपस्थित हैं और महान कलाकार बल्कि कलागुरु अवनींद्रनाथ ठाकुर तो इसमें सबसे मुख्य पात्र के रूप में प्रारंभ से अंत तक विद्यमान ही हैं।"

इस आधार पर हम कह सकते हैं कि मनु जी की नाट्य कथाओं का आधार यथार्थ की भावभूमि से सृजित है, कल्पना तो उसमें रोचकता व जिज्ञासा बढ़ाने के लिए एक साधन के रूप में प्रयोग की गई है। यहाँ मनु जी की प्रशंसा करनी होगी कि इन्होंने इन दोनों तत्वों का संगुम्फन इतने अनोखे ढंग से किया है कि इन्हें अलग करके नहीं देखा जा सकता। ठीक वैसे ही जैसे आटा नमक को इस प्रकार अपने में समा लेता है कि फिर उन्हें अलग नहीं किया जा सकता और उसका आस्वादन भी पहले से बेहतर एवं स्वास्थ्यवर्धक हो जाता है।

अगर मनु जी के कुछ चर्चित और अत्यंत महत्त्वपूर्ण नाटकों के नाम गिनाने हों तो 'पप्पू बन गया दादा जी', 'नाचो भालू नाचो,' 'गुलगुलिया के बाबा,' 'गंगा दादी जिंदाबाद', 'जानकीपुर की

रामलीला', 'रहमान चाचा', 'हरिया देवी', 'तिशू पू', 'भुलक्कड़राम,' 'धमाल पंपाल के जूते', 'सपनों का पेड़', 'मुनमुन का छुट्टी क्लब', 'जसोदा बाबू की अमरगाथा', 'राख में छिपे सुनहले अक्षर', 'ताजी-ताजी पूरी भाजी', 'एक था वसंत', 'रज्जो की अनोखी सहेली', 'आखिर जीत गई धन्नू की धुन,' और 'धरती का कलाकार' आदि ऐसे दर्जनों नाटक है, जो बच्चों के आस-पास की दुनिया के दुख-दर्द, संघर्ष, जीवट और आस्थाओं को सहेजे हुए हैं। इनसे दुनिया को जानने के नए-नए और रंग-बिरंगे कपाट खुलते हैं। ये नाटक बच्चों को हिम्मत से जीने, दुख-तकलीफों को हँसकर झेलने और उनका मुकाबला करने का हौसला देते हैं। इन सभी में एक ललक है कि दुनिया को और अधिक सुंदर कैसे बनाया जाए।

इस तरह मनु जी के बाल नाटक ललित कला, अद्‌भुत कल्पना, सरस हास्य, सात्विक मनोरंजन और जीवन के कर्म सौंदर्य का बेजोड़ समन्वय हैं। नाटक में कोई भी सीख, घटना, प्रसंग या पात्र बाहर से थोपा हुआ नहीं है, बल्कि सब कुछ आवश्यकता अनुसार स्वाभाविक लय और गति में हैं। वास्तव में जिंदादिली से भरपूर इन अनोखे नाटकों के रूप में मनु जी की अनमोल धरोहर हमारे पास है, जिसके अध्ययन और चिंतन-मनन द्वारा भावी पीढ़ी को सभ्य और आदर्श नागरिक बनाया जा सकता है।

अंत में मन्नू भंडारी जी की एक उक्ति के साथ मैं अपनी कलम को विराम देना चाहूँगा। यह उक्ति प्रकाश मनु जी के संपूर्ण कृतित्व पर सोलह आने खरी उतरती है। वे लिखती हैं, "लोकप्रियता कभी रचना का आधार नहीं बन सकती, असली मानक होता है रचनाकार का दायित्वबोध एवं जीवन दृष्टि!" सचमुच मनु जी के नाटकों में यह जीवन-दृष्टि ही है, जो उन्हें औरों से अलग और विशिष्ट बनाती है। फिर एक बड़ी बात यह भी है कि मनु जी की कहानी और कविताओं की तरह उनके नाटक भी बच्चों के सुख-दुख के सच्चे साथी हैं, जो उनके दिल की बात कहते हैं। इसीलिए बच्चे उन्हें इतना पसंद करते हैं।

अशोक बैरागी, हिंदी प्राध्यापक, राजकीय कन्या उच्च विद्यालय, हाबड़ी, तहसील - पुंडरी,
जिला - कैथल (हरियाणा), पिन-136026, मो. : 09466549394

✧ ✧ ✧

सतत साधना और संघर्षों से सुंदर होती प्रकाश मनु की दुनिया

श्याम सुशील

उसी दिन उनके जीवन का मकसद तय हो गया- लिखना, लिखना, निरंतर लिखना..! लिखना और पढ़ना। पढ़ना और लिखना।... इस पढ़ाई-लिखाई और नौकरी, घर-परिवार को साधने के संघर्षों के साथ वे साहित्य की दुनिया में अपनी राह बनाते हुए निरंतर अपनी धुन में आगे बढ़ते रहे, और उम्र के 75 वें पड़ाव पर पहुँचकर आज वे पहले से और अधिक अपने पठन-विश्लेषण, रचनात्मक साहित्य-सृजन में सक्रिय हैं। कविता, कहानी, उपन्यास, संस्मरण, आलोचना, साक्षात्कार, इतिहास और बाल साहित्य की तमाम विधाओं में विपुल साहित्य रचने वाले मनु जी के लिए पाठकों का प्यार ही सबसे बड़ा सम्मान और पुरस्कार रहा है। जीवन की इस आपाधापी में अनेक मोर्चों पर लड़ते हुए भी वे कभी अकेले नहीं रहे। उनके साथ प्रसाद, निराला, मुक्तिबोध, नागार्जुन, सर्वेश्वर, विष्णु खरे आदि की रचनाओं का बहुत बड़ा संसार जो था!

कविता से जिस कवि का आत्मिक जुड़ाव आधी सदी से भी अधिक पुराना हो, उस कवि की रचना-यात्रा और जीवन-यात्रा के बारे में उसकी किताबों से बेहतर भला कौन कुछ कह सकता है! आइए, हम उस किताब के कवि से मिलते हैं, जिसने अपना घर किताबों से बनाया है। उसके शब्दों में साँस लेते जीवन से मिलने की ललक मेरी तरह आप में भी अवश्य होगी।

वरिष्ठ रचनाकार प्रकाश मनु की सतत साधना और संघर्षों से उपजी अनुभूतियों का यह एक ऐसा घर है - जिसके दरवाजे किताबों के हैं, खिड़कियाँ किताबों की और किताबें ही एक कमरे से दूसरे कमरे तक ले जाती हैं। इस घर का आसमान जरा अलग है, उसके नियम-कायदे थोड़े अलग हैं :-

अगर आप जरा घमंडी हैं अफलातून

तो दोनों हाथ बढ़ाकर दाखिल होने से रोक देंगी किताबें

दरवाजे पर लग जाएगी अर्गला

मगर गरीब रफूगर या आत्मा का दरवेश कोई नजर आए

तो उसे प्यार और आँसुओं से नहलाकर

दिल के आसन पर बैठाती हैं किताबें।...

इस घर के आकाश में अनेक जगमगाते ध्रुव तारे हैं - गोर्की, प्रेमचंद, निराला, टैगोर,

टॉलस्टाय, दोस्तोवस्की, चेखव, पुश्किन, सार्त्र, शेक्सपियर आदि। तमाम ग्रह-उपग्रह, सूरज-चाँद-तारे जो अपनी रोशनियों से धरती-आकाश को नहलाते रहते हैं। कवि के शब्दों में :-

मैंने जो घर बनाया है...
अकसर उसके अक्षर कबिरा की तान में तान मिलाकर
अजीब उलटबाँसियाँ सुनाने लगते हैं
नजरुल इस्लाम के विद्रोही गीत वहाँ सुलगते हैं
दिलों में तूफान उठाते
और मैं चौंक पड़ता हूँ...
एक साथ कितने युग और इतिहास गले मिलते हैं
मेरे इस छोटे से किताबों के घर में...!

इस छोटे से किताबों के घर में रहने वाले रचनाकार की दुनिया में किसी तख्तनशीं का राज नहीं चलता। यहाँ तक कि ताकतवर लोग अकसर बिना बात 'पीपर पात सरिस' काँपते देखे गए हैं। उसकी दुनिया में सभी को अपनी बात जोर-शोर और बुलंदी से कहने का हक है। एक बच्चा भी अपनी किलकारी से पड़-पुरखों और जड़ विद्वानों की राय काट सकता है। प्रकाश मनु के 'कवि की दुनिया' इसलिए भी सुंदर है क्योंकि काम करते हुए लोग उन्हें सुंदर लगते हैं। वे स्वयं किसान, मजूर, दर्जी की तरह आजीवन कर्मलीन रहे हैं। तभी तो उन्हें -

सुंदर लगता है रिक्शा चलाता
हाजीपुर का अवधू रिक्शा वाला
सब्जी बेचती पारस गाँव की लक्ष्मी
और सुबह उठने से लेकर शाम तक काम में डूबे पिता
और बच्चा जिसे ड्राइंग की कापी में
दोस्तों के साथ पिकनिक का चित्र बनाना है
और इस बार 'नंदन' की चित्रकला प्रतियोगिता का इनाम जीतना है।

वे कहते हैं, "सुंदर है दुनिया सचमुच सुंदर... काम करते लोगों से... जिससे भीतर की नमी चेहरों पर आ जाती है... और हम एकाएक जान जाते हैं कि काम करते लोगों की सूरत ही... असल में होती है भगवान की सूरत!"

ऐसी सुंदर दुनिया की चाह रखने वाले कवि की जीवन-यात्रा 12 मई, 1950 को उत्तर प्रदेश की धरती शिकोहाबाद से शुरू होती है। उन्होंने 1970 के आस-पास लिखना शुरू किया। तब वे बीस बरस के थे और तभी से कविता उनकी सहयात्री है। आगरा कॉलेज से भौतिक विज्ञान में एम.एस.सी. करने के बाद उन्होंने मन के द्वंद्व और एक गहरी ऊहापोह से गुजरकर, एक बहुत बड़ा निर्णय लिया और घर वालों को बताया :-

"मैं अब नए सिरे से जीवन की शुरुआत करना चाहता हूँ। मैं हिंदी साहित्य से एम.ए. करूँगा, फिर पी-एच.डी. और एक बिल्कुल अलग-सा जीवन जिऊँगा।"

और उसी दिन उनके जीवन का मकसद तय हो गया- लिखना, लिखना, निरंतर लिखना..! लिखना और पढ़ना। पढ़ना और लिखना।... इस पढ़ाई-लिखाई और नौकरी, घर-परिवार को साधने के संघर्षों के साथ वे साहित्य की दुनिया में अपनी राह बनाते हुए निरंतर अपनी धुन में आगे बढ़ते रहे, और उम्र के 75 वें पड़ाव पर पहुँचकर आज वे पहले से और अधिक अपने पठन-विश्लेषण, रचनात्मक साहित्य-सृजन में सक्रिय हैं।

कविता, कहानी, उपन्यास, संस्मरण, आलोचना, साक्षात्कार, इतिहास और बाल साहित्य की तमाम विधाओं में विपुल साहित्य रचने वाले मनु जी के लिए पाठकों का प्यार ही सबसे बड़ा सम्मान और पुरस्कार रहा है। कविता-संकलन 'छूटता हुआ घर' पर प्रथम गिरिजाकुमार माथुर स्मृति पुरस्कार, बाल उपन्यास 'एक था ठुनठुनिया' पर साहित्य अकादमी का पहला बाल साहित्य पुरस्कार, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का 'बाल साहित्य भारती' पुरस्कार और हिंदी अकादमी का 'साहित्यकार सम्मान' प्राप्त करने वाले मनु जी की बड़ों और बच्चों के लिए डेढ़ सौ से अधिक कृतियाँ प्रकाशित हैं और अनेक प्रकाशन की राह में हैं।

'मैंने किताबों से घर बनाया है' करीब पच्चीस बरसों के लंबे अंतराल के बाद प्रकाशित होने वाला उनका ताजा कविता-संकलन है। इन कविताओं में वे जीवन का अर्थ टटोलते हुए नजर आते हैं। बीच-बीच में एक गहरी अकुलाहट के साथ वे अपने वर्तमान और गुजरे हुए जीवन पर नजर डालते हैं, और बहुत से सवाल अपने आप से भी करते हैं :-

कौन हो तुम, क्या हो तुम, कहाँ जाना है तुम्हें प्रकाश मनु
कहाँ दौड़े जा रहे हो बेहिसाब
जिधर दिल कहता है कि सच वहाँ है दमकता
दौड़ते हैं तुम्हारे पैर तुम्हारी आँखें तुम्हारा जिस्म
तुम्हारी एक-एक साँस तक
और तुम पागल जुनून में धुनते चले जा रहे हो रास्ते की धूल
ऐसे तो बर्बाद हो जाओगे तुम प्रकाश मनु और मिलेगी नहीं तुम्हारी राख और हड्डियाँ तक..!

जीवन की इस आपाधापी में अनेक मोर्चों पर लड़ते हुए भी वे कभी अकेले नहीं रहे। उनके साथ प्रसाद, निराला, मुक्तिबोध, नागार्जुन, सर्वेश्वर, विष्णु खरे आदि की रचनाओं का बहुत बड़ा संसार जो था! सुनीता जैसी जीवन-संगिनी और देवेंद्र सत्यर्थी, रामविलास शर्मा, रामदरश मिश्र, हरिपाल त्यागी, रमेश तैलंग, देवेंद्र कुमार जैसे कुछ आत्मीय संगी-साथी थे, जिनका सानिध्य उन्हें जूझने का हौसला देता रहा। 'धूप में पुश्किन के साथ कुछ दिन' कविता में वे दोस्तों के लिए दिल के गहरे भावावेगी उफान से निकले ये शब्द कहते हैं :-

असल में सच्ची कहूँ, मैं भीतर से इस कदर
टूट-फूट जाता हूँ पुश्किन...
कि ये दोस्त ही हैं तुम्हारे जैसे लाजवाब दोस्त
जो काम आते हैं ऐसे दुख के पलों में
कि भीतर आत्मा के कोठे की मरम्मत...!
यों भी दोस्त मेरे अवचेतन में इस कदर पैठ चुके हैं...
कि दोस्तों के बगैर यह दुनिया मुझे नहीं चाहिए
सचमुच नहीं चाहिए!

इस संग्रह में अनेक ऐसी कविताएँ आप पढ़ेंगे जो मनु जी ने अपने प्रिय कवियों-लेखकों-मित्रों और परिजनों को याद करते हुए, बहुत ही आत्मीय पलों में डूबकर लिखी हैं। 'पिता के लिए एक कविता' में वे दूर-दूर तक फैली डालों और घने पत्तों वाले धूपलिपे बरगद में पिता का चेहरा देखते हैं और याद करते हैं :-

पिता ने बड़ा होना सिखाया
अपने से बाहर निकलकर बड़े होने का भान
इसलिए बुरे दिनों में भी याद रहा
कि आदमी छोटा अपने मन से होता है
और गरीबी में भी गुरबत होती है।...

जीवन का शताब्दी वर्ष जीते हुए हम सबके बीच उपस्थित गुरुवर रामदरश मिश्र से मिलकर लौटने का आश्चर्य और आनंद 'हमारी दुनिया में एक सीधा आदमी' कविता में देखते ही बनता है :-

पता नहीं आप में भँवर हैं या आप भँवर में
मगर मुश्किल तो मेरी है गुरुदेव
कि जब-जब पूरी तैयारी के साथ आया आपके करीब
अकसर लौटा अधूरा, उदास, खाली हाथ।
मगर जब खाली हाथ चला आया यों ही टहलते-टहलते
मन में सदानीरा सी बहती किसी जिज्ञासा के साथ
तो खुले खजाने मिले
दोनों हाथों में भरकर जिन्हें
लौटा मैं उछलते पाँवों के उत्साही रथ पर।

गजब के उत्साह से भरे हुए मनु जी के मन में कुछ आश्चर्य भी हैं, जो सवालों पर सवाल उठाते हैं :-

कहाँ से आते हैं ये अकूत खजाने गुरुदेव!

एक सीधे-सादे आदमी में कहाँ से आता है इतना दम?
अपनी शर्तों पर जीने की ताकत?
कहाँ से यह निपट देहाती नदी के से मोहक कटावों वाली भाषा,
जो बगैर किसी कोशिश के हम हड़बड़िए लोगों की हड़बोंग पकड़ लेती है,
सीधी-सादी बातों में दे जाती है अंदर का पता।

'एक अजन्मी बेटी का खत' इस संग्रह की अद्‌भुत, अनमोल रचना है। इसे पढ़ते हुए 'सरोज-स्मृति' की याद हो आई। वह पिता की तरफ से बेटी की याद में लिखी गई महाप्राण निराला की महान रचना है। प्रकाश मनु की रचना में एक अजन्मी बेटी पिता को पत्र लिखते हुए अपने दुख को साझा करती है :-

मैं तो हूँ पापा तुम्हारे आँगन की चिड़िया
जिसे तुम्हीं ने दर-बदर किया
तुम्हीं ने किया अपनी दुनिया से खारिज
और कसकर अर्गला लगा दी!...
वरना कैसे तुमसे अलग रहती मैं पापा
तुम पुकारते तो मैं दौड़ी-दौड़ी आती
और कुहुक-कुहुककर पूरे आँगन को गुँजा देती।
तुम एक बार पुकारते तो सही पापा...
बिन कारण, बिन अपराध
मुझे घर निकाला देने से पहले!
तुमने एक बार सिर्फ एक बार
प्यार भरी आँखों से मुझे देखा होता
तो मेरी सरल पानीदार मुसकान में
मिल जाते तुम्हें अपनी मुश्किलों और परेशानियों के जवाब।...

कविता जैसे-जैसे आगे बढ़ती है, पिता के प्रति एक बेटी का प्रेम और सघन होता जाता है :-

मैं तो ऐसे रह लेती पापा
जैसे फूल में रहती है फूल की सुवास
... ...
जैसे धरती में धरती का धैर्य
जैसे अंबर में अंबर का अथाह नीलापन
... ...
नन्हे हाथों से थपक-थपक तुम्हारा माथा दबाती
और तुम्हें सुख-चैन देकर पापा

सुख पाती मुसकराती
मेरे जिस छोटे भाई की प्रतीक्षा में तुमने
मुझे किया दर-बदर,
अपनी दुनिया और इतिहास से बाहर...
क्या पता पापा
मैं उससे बढ़कर तुम्हारा सुख तुम्हारी खुशी
तुम्हारे हाथों की लाठी हो जाती
तुम्हें निश्चिंतता देने की खातिर
खुशी-खुशी खुद तपती
और कभी न करती किसी कमी की शिकायत!...

आगे और भी बहुत सी बातें हैं इस लंबी कविता में, जिसे पढ़ते हुए किसी भी सहृदय का दिल काँप जाएगा। इस कविता को लिखना मनु जी के लिए भी सहज नहीं रहा होगा।...

इस संग्रह की 'ईश्वर के इतने पास', 'बनारस के लिए पाँच कविताएँ', 'दुख की गाँठ खुली', 'बारिशों की हवा में पेड़', 'मोगरे के फूल', 'सीता की रसोई', 'एक बूढ़े मल्लाह का गीत', 'वह स्त्री जो लिखती थी कविताएँ', 'राम-सीता', 'छोटी बेटी नन्ही की पंद्रहवीं वर्षगाँठ पर', इन बारिशों में', 'बेटी जो गई है काम पर' आदि कविताओं में भी हम जीवन की गरिमा, मानवीय रिश्तों और निर्मल मन की प्रार्थनाओं की महक महसूस कर सकते हैं :-

बेटी गई है बाहर काम पर...
ओ हवाओं, उसे रास्ता देना
दूर तक फैली काली लकीर-सी वहशी सड़कों,
तनिक अपनी कालिख समेटकर
उसे दुर्घटना से बचाना।...

इन कविताओं से गुजरते हुए हमें कवि की आपबीती और जगबीती के अनुभवों का सहज अहसास होता है। मनु जी ने 'मैं और मेरे कविता : अर्द्ध सदी का सफर' (कुछ सतरें मेरी भी) में लिखा है :-

"सच पूछिए तो मेरी कविताएँ एक अर्थ में कविता के हर्फों में लिखी गई मेरी आत्मकथा और समय-कथा भी हैं। वे ऐसी क्यों हैं? क्या इससे भिन्न भी हो सकती है कविता, मैं नहीं जानता। शायद कविता का यही रूप मुझे प्रिय है और इसी रूप में मैंने उसे भीतर तक महसूस किया है। उसके सहारे मैंने आपबीती और जगबीती को समझा है और जीवन का अर्थ टटोला है।"

पुस्तक के आमुख, 'कुछ शब्द : मैंने किताबों से घर बनाया है के बहाने' में वरिष्ठ कवि दिविक रमेश ने सही कहा है कि यह संग्रह निश्चित रूप से मनुष्यता का पाठ रचती, जीवन से

भरी जीवंत कविताओं का है, जो समय की दुश्वारियों के बीच जीने की ऊर्जा भरने में समर्थ है।

75 पार करते हुए रचनाकर प्रकाश मनु के रचनात्मक उल्लास को 'अभी मैं नहीं मरूँगा' कविता में हम देख सकते हैं :-

दलदल अभी बहुत है - इसे साफ करना है
झाड़ना-पोंछना है धरती को, जोतना है खेत
चिड़िया के चुग्गों का इंजाम करना है...
चूमना है आसमान
अभी तो मेरे सामने है कुल जहान...
अभी तो मुझे जीना है
अभी मैं नहीं मरूँगा
अभी मुझे करने हैं बहुत काम।...

हमें पता है काम करते हुए लोग मनु जी को कितने सुंदर लगते हैं और काम करते लोगों से ही यह दुनिया सुंदर है! हम कामना करते हैं मनु जी स्वस्थ-सृजनशील रहें और अपनी लेखनी से शानदार रचनाएँ हमें देते रहें, जिससे हम सब मिलकर इस दुनिया को और सुंदर बना सकें।

श्याम सुशील, ए-13, दैनिक जनयुग अपार्टमेंट्स, वसुंधरा एनक्लेव, दिल्ली-110096
मोबाइल : 9871282170, ई-मेल : shyamsushil13@gmail.com

✧ ✧ ✧

बहुत अनूठी और रसमय है प्रकाश मनु की रामकथा

सूर्यकांत शर्मा

इसी भूमिका में प्रकाश मनु अपनी चिरसंगिनी डॉ. सुनीता जी का भी जिक्र करते हैं, जो रामकथा में आकंठ डूबी हैं। सुनीता जी को अपने बचपन में संतो नानी से रामकथा सुनने का अवसर मिला, जिसके साथ एक बेहद मर्मस्पर्शी प्रसंग भी जुड़ा है। संतो नानी के गाँव में एक धाकड़ किस्म के शख्स ने, जिसका नाम सिंघू था, अपने छोटे भाई को जबरन घर से निकाल दिया, जो अब दाने-दाने को मोहताज था। प्रकाश जी के अनुसार -

"एक दिन सिंघू संतो नानी की कथा सुनाने आया, तो नानी ने उस दिन भरत जी वाला प्रसंग सुनाया कि वे राम को मनाने वन में गए कि वह अयोध्या की राजगद्दी सँभाल लें। पर प्रभु रामचंद्र जी ने मना कर दिया।...संतो नानी कथा सुना रही थी, तभी एकाएक सिंघू उठा और उनके चरणों में लोटपोट हो गया। बोला, माफ करना बहन, तुमने मेरी आँखें खोल दीं। मैं अपने छोटे भाई को वापस बुलाऊँगा, उसे उसका सब कुछ सौंप दूँगा।

'राम रामेति रामेति', वे राम जो रोम-रोम में हैं। वे राम जो इस लोक और परलोक में भी रमण करते हैं। वे आप्तकाम हैं। वे ईश्वर रूप का सगुण रूप भी हैं और निर्गुण भी। वे हारे के राम भी हैं और सबल के राम भी हैं।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम हमारे श्वास-श्वास, संस्कार, संस्कृति, अध्यात्म, दर्शन, भक्ति और मेधा में यहाँ-वहाँ यानी सर्वत्र हैं। वे पूरे ब्रह्मांड में प्रारंभ से वर्तमान और भविष्य में भी रमण करते हैं। आप जहाँ तक भी सोचिए, श्रीराम की व्याप्ति हैं। ऐसे ही प्रभु श्रीराम की कथा जब पुनः परिभाषित हो, रेखांकित की जाए - अपने अनुभवों से, अपने शब्दों में, अपने भावों से, तो वह प्रकाश मनु द्वारा हाल ही में आई चर्चित कृति 'फिर लौट आए राम अयोध्या में' के रूप में पढ़ने को मिलती है।

12 मई, सन् 2025 को आदरणीय प्रकाश मनु जी, अपना अमृत वर्ष पूर्ण कर लेंगे, और यह कितना सुखकारी संयोग है कि उन्हें अपने जीवन के इस सोपान पर उनके और हम सब के आराध्य भगवान श्री राम की कथा कहने का परम सौभाग्य मिला है। सुप्रसिद्ध साहित्यकार, संपादक तथा बच्चों के प्रिय लेखक ने जब रामकथा पर कलम उठाई, तो उसमें एक नई ऊर्जा, एक नई दृष्टि पाठकों के सामने अमृत-वर्षा के रूप में सामने आई। हिंदुस्तान टाइम्स की लोकप्रिय बाल पत्रिका

'नंदन' के संपादन से 25 वर्षों तक जुड़े, इस सुप्रसिद्ध साहित्यकार के नाम अनेक पुरस्कार और लगभग दो सौ पुस्तकें दर्ज हैं। उन्हें मिले पुरस्कारों में से उल्लेखनीय है - साहित्य अकादमी का पहला बाल साहित्य पुरस्कार, जो उन्हें अपने बहुचर्चित बाल उपन्यास 'एक था ठुनठुनिया' पर प्रदान गया था।

प्रकाश मनु जी की कृतियों में 'फिर आए राम अयोध्या में' निस्संदेह एक अत्यंत विशिष्ट पुस्तक है, जिसमें प्रकाशक की भी उतनी ही रुचि दिखलाई पड़ती है जितनी कि लेखक की, और यह दुर्लभ संयोग बहुत कम देखने में आता है। प्रकाशक श्री नरेंद्र कुमार वर्मा जी के शब्दों में, "मेरा प्रकाश मनु जी से कई वर्षों से आग्रह था कि वे आज के तरुणों के लिए भगवान राम के गौरवमय चरित्र की गाथा लिखें, जिसे पढ़कर वे आनंद विभोर होकर कुछ सीखें भी। प्रभु श्री रामचंद्र जी का चरित्र अगाध है। बहुत रसमय होने के साथ ही उनमें बहुत कुछ है, जिससे पग-पग पर हम सीख ले सकते हैं। वे हमारी भारतीय संस्कृति के महानायक हैं, जिनके थोड़ा-सा भी निकट जाने पर हमारे दिलों में उजाला हो जाता है और हम बाहर-भीतर से बदलने लगते हैं।"

यह बात भी एक शुभ संकेत मानी जा सकती है कि प्रकाशक स्वयं अपने प्रकाशकीय में पुस्तक के बारे में ऐसी सटीक और सारगर्भित टिप्पणी लिखे कि, "पुस्तक में रामकथा के माध्यम से ऐसे प्रभु राम की अनुपम झाँकी उपस्थित की गई है, जो दिव्य हैं, मनोहर हैं, बहुत बड़ी आस्था और प्रेरणा के केंद्र हैं। पुस्तक बड़े ही भावपूर्ण शब्दों में लिखी हुई है। इस मनोरम रामकथा को पढ़ते-पढ़ते राम का पूरा जीवन पाठकों के आगे साकार हो उठेगा। साथ ही वे रामकथा के जरिए भारतीय संस्कृति के महान आदर्शों से भी परिचित हो सकेंगे, जो वर्षों से मानवता को प्रेरित करते रहे हैं और आज उनकी आवश्यकता पहले से कहीं अधिक है, ताकि यह दुनिया सुंदर हो, प्रेममय हो और नई आस्था से जगमगाए।"

लेखक और प्रकाशक की यह सुंदर और स्पृहणीय जुगलबंदी भूमिका में भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। इस भूमिका में प्रकाश मनु जी ने अपने जीवन के विभिन्न सोपानों में भगवान राम से संबंधित प्रेरक घटनाओं का उल्लेख किया है। ये प्रसंग निश्चित रूप से कहीं न कहीं पाठकों को या सही अर्थों में कहा जाए, तो सभी वर्ग के पाठकों को इस रामकथा को पढ़ने के लिए प्रेरित करेंगे। जीवन में उन्हें सकारात्मक सोच और कर्तव्य परायणता की ओर प्रेरित करने में सहायक सिद्ध होगा। प्रकाश मनु भूमिका के आरंभ में ही कहते हैं कि -

"रामकथा मुझे बचपन से ही मोहती थी। याद आता है, राम का नाम आते ही मैं एक अलग दुनिया में पहुँच जाता था। लगता था, राम दिव्य हैं, राम मनोहर हैं, राम कितने बड़े हैं, कितने महान हैं। जीवन में कितने कष्ट उठाए उन्होंने, पर न तो सच्चाई की लीक छोड़ी और न ही अपनी मर्यादा। इसीलिए उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम कहा गया।"

मनु जी आगे बताते हैं कि उनके बचपन में हर साल कार्तिक महीने में बाबा रामजीदास आया करते थे। वे पूरे परिवार के गुरु सरीखे थे। ऋषिकेश में उनकी छोटी-सी कुटिया थी। वहाँ से वे हर

बरस आते थे। कार्तिक मास में ही रात में कार्तिक की कथा होती थी। आसपास की बिरादरी बड़े प्रेम भाव से उसे सुनने आती थी। कथा से पहले प्रकाश मनु के बड़े भाई कश्मीरीलाल जी महाभारत पढ़ते और उनसे छोटे भाई कृष्णलाल रामचरितमानस का पाठ करते। फिर बाबा जी कार्तिक की कथा सुनाते। प्रकाश मनु जी बताते हैं कि किशोर अवस्था के आसपास अपनी बड़े भाईसाहब की व्यस्तता के कारण वे रामचरित मानस का पाठ करने लगे और जब भी वे रामचरित मानस पढ़ते थे, तो राम की पूरी जीवन-कथा उनकी आँखों के आगे एक मर्मस्पर्शी फिल्म की तरह चल पड़ती और वे उसमें डूब से जाते थे।

इसी संदर्भ में रामकथा वाचक मुरारी बापू को भी याद करते हुए प्रकाश मनु कहते हैं, "आप कभी मुरारी बापू को राम की कथा कहते हुए सुनें। लगता है, रस झर रहा है। कथा कहते हुए वे खुद भी रामकथा में इतने डूब जाते हैं कि आँखें बार-बार भीगने लगती हैं। खुद मुरारी बापू की भी, आपकी भी।"

रामकथा के इसी रसमय अंदाज का अनुकरण इस पुस्तक में हुआ है। राम की महिमा स्वामी मैथिलीशरण जी, जो कि श्री रामकिंकर विचार मिशन के संस्थापक अध्यक्ष हैं - की कथा में भी देखी जा सकती है, जिसका प्रभाव, आम जन के जीवन में आज भी उतना ही है, जितना पहले था।

इसी भूमिका में प्रकाश मनु अपनी चिरसंगिनी डॉ. सुनीता जी का भी जिक्र करते हैं, जो रामकथा में आकंठ डूबी हैं। सुनीता जी को अपने बचपन में संतो नानी से रामकथा सुनने का अवसर मिला, जिसके साथ एक बेहद मर्मस्पर्शी प्रसंग भी जुड़ा है। संतो नानी के गाँव में एक धाकड़ किस्म के शख्स ने, जिसका नाम सिंघू था, अपने छोटे भाई को जबरन घर से निकाल दिया, जो अब दाने-दाने को मोहताज था। प्रकाश जी के अनुसार -

"एक दिन सिंघू संतो नानी की कथा सुनाने आया, तो नानी ने उस दिन भरत जी वाला प्रसंग सुनाया कि वे राम को मनाने वन में गए कि वह अयोध्या की राजगद्दी सँभाल लें। पर प्रभु रामचंद्र जी ने मना कर दिया।...संतो नानी कथा सुना रही थी, तभी एकाएक सिंघू उठा और उनके चरणों में लोटपोट हो गया। बोला, माफ करना बहन, तुमने मेरी आँखें खोल दीं। मैं अपने छोटे भाई को वापस बुलाऊँगा उसे उसका सब कुछ सौंप दूँगा। आज से मेरा घर पहले उसका है, फिर मेरा। यों सिंघू बदला, तो इस कदर बदल गया कि फिर वह पूरे जीवन भर संतो नानी का हनुमान बनाकर उनकी सेवा करता रहा।"

स्वयं प्रकाश मनु रामकथा के इस सम्मोहक प्रभाव से परिचित हैं और वही प्रभाव वे इस रामकथा में लाने का जतन करते हैं। पूरी रामकथा को मनु जी ने बहुत सुचारु रूप से छयालीस अध्यायों में गूँथकर, अपनी कलम से ऊर्जस्वी किया है। कथा में एक मनोरम किस्म की सहजता, सरसता, सरलता, गहनता और तरलता - कुल मिलाकर वह सभी कुछ है, जो कथा को रोचक और सुबोध बनाती है।

कथा के आरंभ में 'दशरथ के घर जनमे राम', 'आए विश्वामित्र नगरी में' और 'आश्रम में अनोखी दीक्षा' अध्यायों में भगवान राम के शैशव, बालपन और किशोरावस्था का बड़ा मनोरम और गतिपूर्ण वर्णन है।

राम जन्म की महिमा इस कथन से भी पूर्णतया स्पष्ट होती है कि ईश्वर जो निर्गुण है, अजन्मा है, वही प्रेमाभक्ति के वशीभूत होकर सगुण रूप में जन्म लेकर माता की गोद में आ जाता है, और सर्वत्र बिखर जाती है स्नेह, ममता और पूर्ण आनंद की छटा। सबको आनंद प्राप्ति हो जाना ही तो राम जन्म है। मानो प्रभु राम के जीवन और चरित के इसी सार को गहन अनुभव और भाव से ग्रहण करके, पूरी तरह रामचरित में लीन होकर ही इस पुस्तक का सृजन हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे रामकथा लिखते हुए स्वयं प्रकाश मनु भी राममय हो गए हों।

प्रकाश मनु जी एक दक्ष और तरल हृदय के बाल साहित्यकार हैं। इसका उदाहरण 'दशरथ के घर जनमे राम' अध्याय में वर्णित लोरी में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। इसकी बानगी यहाँ देने का मन है। माँ कौशल्या राम को अपनी गोद में लेकर बार-बार बलैयाँ लेने लगी। उनके मुख से अनायास मधुर लोरी के स्वर फूट पड़े :-

आ जा तुझे सुलाऊँ,
मैं मीठे गीत सुनाऊँ,
मन बातों से बहलाऊँ,
फिर लोरी मधुर सुलाऊँ।
आ चंदा तुझे दिखाऊँ
आ तारे तुझे दिखाऊँ,
नन्ही दँतियों से हँस दे
मैं तुझ पर बलि-बलि जाऊँ।
आ जा, मैं तुझे सुलाऊँ,
आ, लोरी मधुर सुनाऊँ।

यों भी शैशव और बाल अवस्था, हमारे जीवन का सबसे मधुर और स्वर्णिम काल होता है। ऐसे में यदि कोई अनुभवी और लब्धप्रतिष्ठ बाल साहित्यकार रामकथा में राम के बचपन को लिखे, तो शब्दों में उसका वर्णन असंभव नहीं, तो कठिन तो अवश्य ही हो जाता है। इस लिहाज से भगवान राम का कौए के प्रति प्रेम और उसका काव्यात्मक वर्णन देखें, जिसमें बाल मन की बड़ी अद्‌भुत झाँकी है -

नाच कौए नाच
नाच कौए नाच,
फिर थोड़ा सा हँस करके
नाच कौए नाच।

अपनी कथा बाँच,
जैसे हम नाचते हैं
वैसे तू भी नाच।

मुनि विश्वामित्र का अयोध्या नगरी में आना और राजा दशरथ से माँगकर राम और लक्ष्मण को अपने आश्रम में शिक्षा-दीक्षा के लिए ले जाना और फिर आश्रम में अनोखी दीक्षा देना - ये ऐसे प्रसंग हैं, जिन्हें लेखक ने बहुत ही कुशलता परंतु गतिशीलता से आगे बढ़ाया है। शास्त्र और शस्त्र जैसी महत्वपूर्ण और भविष्य को प्रभावित करने वाली परिचर्चा या उपयुक्त दीक्षा में गुरु विश्वामित्र कहते हैं कि -

"तुम दोनों कुमार मेरी बात बड़े ध्यान से सुनो। फिर इस पर खूब मनन करना कि शस्त्र विद्या और शास्त्र विद्या अलग-अलग नहीं हैं। दोनों एक-दूसरे की पूरक हैं। शस्त्र विद्या शास्त्र विद्या की रक्षा के लिए है। लेकिन बिना शास्त्र विद्या के शस्त्र विद्या भी निरर्थक है। बिना शास्त्र विद्या के शस्त्र विद्या व्यक्ति को निर्मम बना देती है। वह नीति-अनीति नहीं जान पाता। इसलिए अनुचित कार्य करने लगता है। शस्त्र विद्या का कहाँ प्रयोग करना चाहिए कहाँ नहीं, यह भी वह नहीं जानता। ऐसा व्यक्ति देश और समाज का कोई भला नहीं कर पाता। पर तुम ऐसे नहीं बनना। तुम्हें देश और समाज के लिए ही जीना है और बड़े-बड़े काम करने हैं।"

श्रीराम के कैशोर्य काल के जीवन से आगे की कथा में 'जनकपुरी में स्वयंवर', 'परशुराम का क्रोध अपार', 'अयोध्या में आनंद की लहर', 'राम-सीता विवाह', 'हुआ अयोध्या में स्वागत', 'राम बनेंगे युवराज', 'क्यों रूठी कैकेयी', 'वन जाओ तुम राम', 'अयोध्या में हाहाकार', 'राम गए वन में' जैसे अध्याय बहुत रुचिकर और रसपूर्ण ढंग से लिखे गए है। यहाँ से भगवान राम का युवा रूप स्पष्ट रूप से उभरकर और निखरकर आमजन के सामने आता है।

प्रकाश मनु जी ने आज के युग के अनुसार, जहाँ नारी के सशक्तिकरण का प्रश्न सबसे अहम है और नारीवाद से आगे की यात्रा भी हमारे समाज में शुरू हो चुकी है - अहिल्या उद्धार जैसे प्रसंग को बेहद सटीक शब्दों में पाठकों के आगे रखा है। श्री राम के पूछने पर कि गुरुदेव यह आश्रम किसका है, क्या यहाँ कोई नहीं रहता, विश्वामित्र ने बताया -

"यह गौतम ऋषि का आश्रम है राम, इसकी बड़ी करुण कथा है। बहुत पहले ऋषि गौतम अपनी पत्नी अहिल्या से नाराज होकर यह आश्रम छोड़कर चले गए थे। जाते हुए उन्होंने कुपित होकर अहिल्या को श्राप दिया था कि तुम पत्थर की शिला बन जाओ। पर फिर उन्हें कुछ दया आ गई। बोले, आगे चलकर प्रभु राम जन्म लेंगे और इस राह से होकर निकलेंगे। तब उनके पैरों की धूल से तुम्हारा उद्धार होगा।"

सीता स्वयंवर में शिव धनुष तोड़े जाने के प्रसंग पर पहुँचकर प्रकाश मनु जी ने परशुराम द्वारा भगवान श्री रामचंद्र की स्तुति और विनत होकर प्रणाम करने के बाद उनका वहाँ से जाना - इस पूरे घटना-क्रम को बहुत ही संक्षिप्त परंतु सारगर्भित अंदाज में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया

है। यहाँ नीति-उपदेश नहीं, बल्कि पाठकों को मोहने वाली दृश्यात्मकता है। परशुराम बड़ी ही विनय और कृतज्ञता के साथ कहते हैं -

"हे राम, मैं समझ गया, आप तो साक्षात् परमात्मा के ही अवतार हैं। संपूर्ण कलाओं से युक्त आपका अलौकिक रूप देखकर मैं धन्य हूँ। आप अपनी लीलाओं से सभी को आनंदित करने और धरती का भार उतरने के लिए आए हैं। यह समझने में मुझे देर लगी, मुझे क्षमा करें प्रभु। आपके होते हुए, भला मेरे होने का क्या अर्थ है? मैं अब जाता हूँ।"

राम-सीता विवाह के उत्सव के दौरान सीता जी की माता रानी सुनैना और सखियाँ उल्लास से भरकर विवाह गीत गा रही हैं। इस गीत में मन के भावों को मनु जी ने बड़ी ही कोमलता और मसृणता से व्यक्त किया है -

राम दूल्हा बने आज जनकपुरी में।
राम दूल्हा बने, सीता दुलहिन बनी,
सारे साज सजे आज जनकपुरी में।
राम दूल्हा बने आज जनकपुरी में।

वहीं राम के राजतिलक की घोषणा होने के बाद अयोध्या में जन-उल्लास का चित्रण देखते ही बनता है। उसकी बानगी कुछ यों है -

राम बनेंगे युवराज रे भैया, राम बनेंगे युवराज!
मगन हैं सारे लोग, अहा, अब सँवरे सारे काज!
यहाँ खेलते देखा उनको सुंदर-सुंदर खेल,
कैसी मनहर लीलाएँ रच करते सबसे मेल।
बड़े हुए फिर शिक्षा पाई, हुए धनुर्धर भारी,
विश्वामित्र के संग गए फिर, वहाँ ताड़का मारी।
जनकसुता से ब्याह रचाकर घर लौटे रघुनाथ।
होंगे अब युवराज रे भैया, पूरन सारे काज!

इधर कैकेयी माता के दुलारे राम और उनका राम से प्रेम जग जाहिर है। माता कैकेयी किस प्रकार से अपनी खुशी को प्रकट कर रही हैं और राम के राजतिलक की बात सुनकर उनका मन किस तरह उमग रहा है, यह मनु जी द्वारा इस गीत में बेहद सटीक शब्दों में व्यक्त किया गया है -

कैकेयी के दुलारे राम
सभी के हुलारे राम,
राजा बनेंगे,
राजा बनेंगे, महाराजा बनेंगे...!

जैसा कि पहले भी लिखा गया है कि कथा में कहीं भी शिथिलता नहीं है, वरन समायोजित

रूप से उसमें एक तरलता और गतिशीलता है। अगले अध्याय 'क्यों रूठी कैकेयी' में प्रकाश मनु जी ने मात्र एक संक्षिप्त कथन से पाठकों को कितना सही संदेश दिया है, "इतिहास अब अपना सिर धुन रहा था और काल अब उलटी गति से बहने वाला था।"

प्रभु श्रीराम के वन जाने की सूचना मात्र से ही अयोध्या में हाहाकार मच गया। इसका चित्रण मनु जी के बड़े मार्मिक ढंग से किया है -

"राम के वनवास की बात सुनते ही अयोध्या में हाहाकार मच गया। प्रजा तो दुखी थी ही, पेड़-पौधों तक की शक्ल ऐसी हो गई, जैसे रो रहे हों। पशु-पक्षी भी उदास। चिड़ियाँ चहचहाना भूल गईं, और गाय, बैल मुँह मारे से लगते। आसमान भी जैसे अँधेरा उगलने लगा था।"

'राम गए वन में', 'मुनि भरद्वाज से भेंट', 'चित्रकूट में किया निवास', 'राजा दशरथ की मृत्यु', 'भरत चले राम को मनाने', 'चरण पादुका लेकर लौटे भारत', 'पंचवटी फिर पहुँचे राम' - ये सभी अध्याय राम के वन में जाने, वहाँ के निवासियों से मिलने और उनका स्नेह प्राप्त करने के विभिन्न सोपान रहे हैं। चित्रकूट में निवास के लिए जब प्रभु श्रीराम, सीता जी और लक्ष्मण पर्णकुटी बनाते हैं, तब लेखक ने सीता जी के मुख से उस कुटिया की सुंदरता का बड़ा अद्‌भुत वर्णन किया है -

कैसी सुंदर है कुटिया हमारी,
राज महलों से बढ़कर यह कुटिया हमारी,
इसमें खुशियाँ हैं दुनिया की सारी की सारी।
छोटी सी कुटिया है मुझको तो प्यारी।
हँसता सा उपवन, हँसती हर क्यारी,
राज महलों से बढ़कर है कुटिया हमारी...!

यहाँ यह लिखना अत्यंत आवश्यक है कि रामकथा वर्णन में लेखक ने भाषा की सरलता और तरलता पर विशेष ध्यान दिया है। भरत और शत्रुघ्न को जब पिता की मृत्यु, भ्राता राम के वनवास और माँ कैकेयी द्वारा भरत के लिए राजगद्दी माँगने का पता चलता है, तो बड़े आकस्मिक रूप से एक के बाद एक घटने वाली इन घटनाओं के दुख-दाह और भावों की भुलभुलैया में, पाठक को सहज और सार-रूप में कैसे सारा वृत्तांत बताया गया है, जरा इसका एक उदाहरण देखें -

"भरत और शत्रुघ्न दोनों ही अवाक् और हक्के-बक्के से सुन रहे थे - हा हंत, यह क्या हुआ! हमारे अयोध्या जैसे राज्य में पाप की ऐसी काली छाया?"

इसी प्रकार की एक और बानगी है, जब भरत राम से मिलने के लिए वन में आते हैं, ताकि उन्हें राज सिंहासन ग्रहण करने के लिए मना सकें, परंतु अभी किसी को पूर्ण रूप से यह ज्ञात नहीं है कि वे किस उद्देश्य से आ रहे हैं। इस स्थिति को प्रकाश मनु जी ने अपनी अनुभव-जनित सटीक भाषा से जीवंत कर दिया है -

"मुझे लग रहा है निषादराज! उस बूढ़े निषाद ने शांत स्वर में कहा कि भरत लड़ाई करने नहीं, शायद नेह-प्यार का संदेश लेकर आए हैं। इसीलिए साथ में अयोध्या की तीनों रानियाँ और गुरु वशिष्ठ भी हैं। मुझे कई निषादों ने आकर बताया है कि भरत के चेहरे पर बड़ा प्रेम भाव है। और वे निरंतर 'राम-राम' उच्चारते हुए आगे बढ़ रहे हैं। कुछ लोगों ने उनकी बातें भी सुनी हैं। वे बार-बार यही कह रहे हैं कि हम बड़े भैया राम को जरूर वापस ले आएँगे।"

'जब आई सूर्प्रनखा तो', 'सोने का हिरन', 'सीता को हर लाया रावण', 'तुम देखी सीता मृगनयनी', 'जटायु ने बताई सब बात' इन अध्यायों में राम के व्यक्तित्व के बहुत से आयामों के साथ ही स्पष्ट रूप से विभिन्न घटनाओं और प्राणियों से संवाद, यथा जटायु से पाठक का परिचय होता है। फिर आगे पुस्तक के 25वें अध्याय 'और फिर मिले हनुमान' में हनुमान जी से भेंट और सुग्रीव से किष्किंधा पर्वत पर मिलन की कहानी को बहुत सुंदर बुनावट और रोचकता के साथ आगे बढ़ाया गया है।

यहाँ पर पाठकों को बता दें कि रामकथा या रामायण भारत के अतिरिक्त कई देशों में प्रचलित हैं, यथा थाईलैंड में 'रामकियन', इंडोनेशिया में 'ककबिन रामायण', म्याँमार में 'रामवत्थु' और मलेशिया में 'हिकायत सेरी राम'। एक और बड़ा महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि रामकथा थाईलैंड की राष्ट्रीय पुस्तक भी है। थाईलैंड के राजा खुद को श्री राम के वंशज मानते थे। यही नहीं चीन, जापान, नेपाल और श्रीलंका में भी रामकथा प्रचलित है। दुनिया भर में रामकथा के लगभग तीन सौ से ज्यादा पाठ मौजूद हैं। रामलीला का मंचन आज भी एक दर्जन से अधिक देशों में होता है और 60 से अधिक देशों में अन्य किसी न किसी रूप में रामकथा विद्यमान है।

तो यह तो थी रामकथा की व्यापकता। चलिए, फिर से पुस्तक 'फिर आए राम अयोध्या में' पर बात करते हैं। अमृत वर्ष में पहुँचे लेखक प्रकाश मनु आगे बड़ी ही कुशलता और गतिशीलता से कथा को आगे बढ़ाते हैं। 'चले हनुमान सीता जी का पता लगाने', 'फिर जली पाप की लंका', 'सीता जी का संदेश ले आए हनुमान', 'विभीषण ने भाई को समझाया' जैसे अध्यायों में प्रभु श्रीराम के धैर्य, संगठन करने की अद्‌भुत क्षमता, शत्रु और मित्र को पहचानने, मित्रों को साथ लेकर चलने और मित्रों की राय को सम्मान से समझने और फिर अपने नेतृत्व गुणों से लक्ष्य की ओर बढ़ने और प्राप्त करने को कथा में संवाद, विचार और सोच से प्रदर्शित किया गया है।

राम द्वारा रावण के अनुज भक्त विभीषण को शरणागत मानना, उसे अपने प्रिय अनुज भरत सदृश स्थान देना और मन की इस भावना को सुंदर शब्दों में व्यक्त भी करना - रामकथा का यह बड़ा सुंदर प्रसंग है, जो राम के महान चरित को उजागर कर देता है। प्रकाश मनु बड़े ही सहज भाव से इसे पाठकों के आगे संप्रेषित कर देते हैं। वे लिखते हैं -

"फिर राम ने बड़े ही स्नेह भाव से विभीषण से कहा, 'अब आप हमारे प्रिय मित्र भी हैं, हितू भी हैं और विशिष्ट सलाहकार भी। समय-समय पर आपकी सलाह और परामर्श से हम आगे की

रणनीति तय करेंगे।' विभीषण बड़े आदर के साथ प्रभु राम को प्रणाम करके चल दिए। उन्होंने मन ही मन कहा कि 'राम जितने वीर और प्रतापी हैं, उतने ही सहज स्नेहशील और कृपालु भी। इसीलिए तो आज मुझे लग रहा है, जैसे मैं अपने घर आ गया। लंका पाप की नगरी है। वहाँ मैं दुखी था। पर अब बहुत समय बाद मन को सही ठिकाना मिला है। मैं बड़ा सौभाग्यशाली हूँ कि प्रभु श्री राम के चरणों में मुझे स्थान मिल गया।

प्रकाश मनु जी ने रामकथा को अपने अंदाज में सभी वर्ग के लोगों के लिए पुनः परिभाषित किया है और उसे नया रूप भी दिया है। साथ ही, अधिक रसमय भी बनाया है। अगले अध्याय हैं - 'समुद्र पर पुल बनाया नल-नील ने', 'अंगद बना दूत', 'वानर सेना लंका में', 'युद्ध भूमि में मेघनाद', 'जब लक्ष्मण हुए मूर्छित', 'मारा गया कुंभकरण', 'हुआ वध मेघनाथ का'। इनमें 'समुद्र पर पुल बनाया नल-नील ने' अध्याय में छोटी-सी गिलहरी का रामसेतु बनाने में योगदान और प्रभु श्री राम का दुलार देखते ही बनता है। उसकी सूक्ष्म बानगी प्रस्तुत है -

"प्रभु का प्रताप, तभी से गिलहरी के शरीर पर बड़ी ही सुंदर धारियाँ बन गईं। वे दूर से ही बतातीं कि राम ने प्यार से हाथ फेरकर उसे शाबाशी दी थी। वे धारियाँ तब से गिलहरी के शरीर से गई नहीं। उनके साथ प्रभु राम जी की याद जो जुड़ी है।"

लक्ष्मण मूर्च्छा प्रसंग को भी संवेदनशीलता से वर्णित करने में मनु जी ने बड़ी ही संयत और मर्यादित भाषा इस्तेमाल की है। राम के करुण शब्दों में मानो करुणा साकार हो रही है और जीवन भर की उनकी वेदना सामने आ जाती है -

"हाय, मैं कितना अभागा हूँ कि पहले सीता को खोया और अब लगता है, तुम्हें भी खो बैठूँगा। पता नहीं कितने दारुण दुख लिखे हैं मेरे जीवन में। कहकर वे फिर-फिर पुकार उठते, मेरे प्यारे भाई लक्ष्मण, उठकर मुझसे बात तो करो। तुम्हारे मुँह से 'भैया' शब्द सुनने के लिए मैं कितना तरस रहा हूँ!"

'रावण आया युद्ध भूमि में', 'और फिर मारा गया रावण', 'राम-सीता मिलन', 'चले अयोध्या की ओर', 'हनुमान ने दिया संदेश', 'उमड़ा अयोध्या में आनंद', 'जय-जय, जय-जय राजा राम' और पुस्तक का अंतिम अध्याय 'आया फिर ऐसा राम राज्य!' रामकथा के ऐसे पुनीत और सुंदरतम सोपान हैं, जो मन में आशा जगाने के साथ ही गहरी आस्था को जन्म देते हैं। इन्हीं अध्यायों में रावण के दरबार में राम-भक्त विभीषण के चरित्र और सीता-हरण काल में मातृवत् त्रिजटा का वर्णन भी मनु जी की लेखनी से निःसृत हुआ है। प्रसंग है कि जब राम-रावण का युद्ध अपने चरम पर था और रावण परास्त नहीं हो रहा था, श्री राम द्वारा उसके दसों शीश कटने के बाद पुनः आ जाते थे। ऐसे में माता सीता जब चिंतित होकर मन की निराशा व्यक्त करती हैं, तब त्रिजटा उन्हें ढाढ़स बँधाती है -

"रावण का अंत अब निकट ही है। सीता, कोई आततायी कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो, अंत में एक दिन तो उसके पापों का घड़ा भरता ही है। और तब वह जी नहीं सकता। देखना, रावण

की मृत्यु भी जल्दी ही होगी। जिन रघुवीर ने इतनी बड़ी राक्षस सेना का संहार कर दिया, कुंभकरण तक को मारा, भला क्या वे रावण को छोड़ेंगे?"

और राम के अयोध्या पहुँचने पर सरयू के जल के माध्यम से राम का स्वागत-गान कितने आनंद और उमंग को समाहित किए हुए है, यह रही उसकी बानगी -

राम आए हैं, आए हैं, राम आए हैं,
हमारे प्रभु आए हैं, आए हैं, राम आए हैं,
आज धन्य है अयोध्या, राम आए हैं,
राम आए हैं, आए हैं, राम आए हैं।

वहीं प्रभु श्री राम के राजतिलक होने और राजा बनने पर रामकथा लेखक प्रकाश मनु जी की प्रसन्नता कुछ इन शब्दों में व्यक्त हुई है -

राम राजा बने, राम राजा बने,
राम लाखों दिलों के राजा बने,
आज खुश है अयोध्या, राजा बने।

पुस्तक के अंतिम अध्याय की आखिरी सतरों में राम राज्य की कल्पना और खुशी को व्यक्त करता यह अमृत वर्षीय सृजनकर्ता अपने पाठक से बतियाता भी है। ऐसे में हृदय के सच्चे आवेग से भरे उसके ये शब्द जरा ध्यान से सुनें -

"अगर राम-राज्य के दिखाए मार्ग पर चलकर भारत सुखी और संपन्न होगा और यहाँ सब ओर राम-राज्य की महिमा छा जाएगी, तो सारी दुनिया भी हमसे सीखेगी कि आदर्श राजा और आदर्श राज्य क्या होता है। अभी हाल ही में 500 वर्ष की कठिन तपस्या के बाद अयोध्या में राम का सुंदर और भव्य मंदिर बना है। और हर दिल में फिर से राम जाग गए हैं। साथ ही, भारत में राम-राज्य का सपना भी जाग उठा है। अब यह जन-जन का सपना है, जो हर दिल में बसा हुआ है और हर आँख में झिलमिला रहा है। राम हर दिल में बसे हैं। हम पूरा आनंद लेकर रामकथा पढ़ेंगे, उसका रस लेंगे और दूसरों को भी सुनाएँगे, तो प्रभु रामचंद्र की मनोहारी छवि सारी दुनिया में फैलेगी। तभी तो देश-दुनिया में आएगा रामराज्य, जरूर आएगा।"

इस पूरी पुनः परिभाषित रामकथा को अक्षरशः पढ़ने के बाद यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इसमें हमारी भारतीय संस्कृति और उसमें समाज के आदर्श तथा सुखांत का अनुपम प्रसाद पाठक को प्राप्त होता है।

सूर्यकांत शर्मा, मानसरोवर अपार्टमेंट, फ्लैट नंबर बी-1, प्लॉट नंबर 3, सेक्टर 5, द्वारका,
नई दिल्ली-110075, मो. 7982620596, ई-मेल - suryakant.sharma1902@gmail.com

✧ ✧ ✧

मेरे मन्नू भाई उर्फ प्रकाश मनु

रमेश तैलंग

मटियानी जी उस समय भयंकर मानसिक पीड़ा के आघात से थोड़ा-सा उबरे थे और बातचीत करने के लिए उन्होंने मनु को शायद स्वयं ही आमंत्रित कर लिया था। इसलिए यह साक्षात्कार उस सुखद माहौल में नहीं हुआ था, जैसी सुखद स्थिति चतुर्वेदी जी के साक्षात्कार के समय रही थी।...कारण स्पष्ट थे। चतुर्वेदी जी के साथ गुजरा दिन ठहाकों से भरा था और मटियानी जी के साथ का समय उत्तेजनाओं तथा कुछ-कुछ विषाद में लिपटा हुआ। मटियानी जी को अस्पताल में जो कमरा मिला था, उसमें उनकी पत्नी नीला जी तथा बेटा राकेश भी साथ थे।

मटियानी जी ने उस साक्षात्कार में अपनी रचनाओं तथा साहित्यिक अनुभवों के साथ-साथ अपनी जानलेवा बीमारी एवं जीवन के कुछ अछूते निजी प्रसंग हम सब से साझा किए थे। मनु तथा शैलेंद्र चौहान की तो शायद मटियानी जी से मुलाकात पहले भी हो चुकी थी, पर मेरी उनसे यह पहली मुलाकात थी और उसी दिन मुझे पता चला था कि मनु को वे कितना अगाध स्नेह और सम्मान देते थे।

प्रख्यात कवि, कथाकार, आलोचक तथा बाल साहित्यकार डॉ. प्रकाश मनु से मेरी मुलाकात 1989 के आसपास कस्तूरबा गाँधी मार्ग, नई दिल्ली स्थित हिंदुस्तान टाइम्स हाउस के तृतीय तल पर हुई थी, और वह भी मेरे वरिष्ठ साहित्यकार मित्र देवेंद्र कुमार ('नंदन' पत्रिका के तत्कालीन सहायक संपादक) के माध्यम से। तीनों के मिलने का नतीजा था, 'हिन्दी के नए बालगीत', जिसमें हम तीनों मित्र कवियों की चुनी हुई बाल कविताएँ शामिल थीं। इसका प्रकाशन हिंदी अकादमी, दिल्ली द्वारा दी गई अनुदान राशि से संभव हुआ था और इस पुस्तक के आवरण सहित सभी मनमोहक चित्र प्रख्यात चित्रकार, लेखक हरिपाल त्यागी ने बनाए थे।

त्यागी जी के सादतपुर निवास पर जाने के लिए प्रकाश मनु के साथ तब मैंने काफी पदयात्रा की थी। हालाँकि त्यागी जी से हमारी यह पहली मुलाकात थी, पर उन जैसे सरल चित्त कलाकार से मिलकर हमें बहुत अच्छा लगा था। उन्होंने अपनी कुछ कलाकृतियाँ भी हमें दिखाई थीं और दाल-रोटी का स्वादिष्ट देसी भोजन भी कराया था। यह एक संयोग ही था कि उस दिन वहाँ बाबा नागार्जुन भी आ गए थे और उनसे सभी की बतकही शुरू हो गई थी। मैंने अपनी डायरी उनके सामने रखते हुए कहा था, "बाबा, आप इसमें अपनी हस्तलिपि में कुछ

लिख दीजिए", तो उन्होंने स्नेहवश अपनी एक मशहूर कविता की तीन पंक्तियाँ लिख दीं, "अगर कीर्ति का फल चखना है, कलाकार ने फिर-फिर सोचा, आलोचक को खुश रखना है।"

कुल मिलाकर यह एक सुखद दिन बीता था। प्रकाश मनु से हुई एक-दो मुलाकातों में ही मुझे लगने लगा था कि मनु अतिवादी व्यक्ति हैं। मेरी यह धारणा आज भी कमोबेश बरकरार है। चाहे लिखने की ऊर्जा हो या फिर बोलने की, चाहे आक्रोश की मुद्रा हो या फिर विनम्रता की, चाहे फकीराना वेशभूषा हो या फिर शाहाना (शाहाना शब्द से यहाँ 'जिसको कछु नहीं चाहिए, वह है शहंशाह' वाला भाव ग्रहण करें तो आसानी होगी!), मनु अपनी उपस्थिति का अहसास सामने वाले को अवश्य कराते रहते हैं। आज के तथाकथित भद्र समाज में करीब-करीब 'मिसफिट' मनु देखने-दाखने में सचमुच 'फिट' लगते हैं, पर उनके पूरे व्यक्तित्व को समझना टेढ़ी खीर है। वे क्षणे तुष्टा, क्षणे रुष्टा की मुद्रा साधे रहते हैं। आक्रोश निकालते हैं तो सामने वाले को बोलने भी नहीं देते और विनम्र होते हैं, तो उन्हें खोजने के लिए सूक्ष्मदर्शी की जरूरत पड़ती है।

मनु ने उपन्यास, कहानी, कविता, आलोचना, और बाल साहित्य सभी विधाओं में विपुल लेखन किया है। पर मेरी अपनी दृष्टि में, उनका गद्य उनकी कविताओं से ज्यादा प्रभावित करता है। इसका यह अर्थ नहीं कि उनकी कविताएँ सामान्य स्तर की हैं। पर गद्य में वे कविताओं से ज्यादा खुलते है, खासकर अपनी तेज-तर्रार समीक्षाओं में, जिनके कारण उन्होंने न जाने कितने स्वनामधन्य साहित्यकारों को कुपित किया। समीक्षा-कर्म कोई बहुत भला काम नहीं। अच्छी-बुरी, हलकी-भारी सभी तरह की रचनाओं को पढ़ना पड़ता है और स्वयं की रचनात्मकता की भी बलि देनी पड़ती है।

मनु ने एक बार बताया था कि शैलेश मटियानी की भारी-भरकम किताब 'बर्फ की चट्टानें' पर समीक्षा लिखने के लिए एक प्रतिष्ठित पत्र ने (जो दुर्भाग्य से अब बंद हो चुका है) सिर्फ पचहत्तर रुपए भेजे थे। एक किताब, जिसको पचाने में मनु ने अपनी तीन रातें जलाकर खाक कर दीं, उसका पारिश्रमिक एक संपन्न घराने के पत्र द्वारा पचहत्तर रुपए आँकना आश्चर्य में डालता है। पर एक तरह से यह उन पत्रों से ठीक था, जो संसाधनों तथा आर्थिक स्रोत के होते हुए भी लेखक के पारिश्रमिक को दबा जाते हैं। खैर, यह एक इतर विषय है और इस पर चर्चा करना यहाँ समीचीन नहीं है।

मनु के बारे में, उनके अंतरंग मित्रों की धारणा है कि वे किसी काम पर जुटते हैं तो धुनी की तरह जुटते हैं। देवेंद्र सत्यार्थी पर किया गया उनका काम इसका प्रमाण है। कहने को सत्यार्थी जी पर प्रकाशित उनकी अनेक पुस्तकें संपादित हैं, पर उनमें लिखी गई लंबी-लंबी भूमिकाएँ स्वयं में एक किताब से कम नहीं, जो सत्यार्थी जी के अंतरंग जीवन की कितनी ही अँधेरी-उजली परतें उघाड़ती हैं। हालाँकि मनु ऐसा कोई दावा नहीं करते, पर देवेंद्र सत्यार्थी के साहित्य को पुनर्जीवित करने में निश्चित रूप से उनकी बहुत बड़ी भूमिका रही है। एक बार जब उनसे पूछा गया कि वे सत्यार्थी जी पर कब तक लिखते रहेंगे, तो उनका कृतज्ञ भाव से भरा उत्तर था, "जीवन भर!"

मनु को उनके वयस्क साहित्य तथा बाल साहित्य दोनों के लिए अनेक शीर्ष पुरस्कारों से नवाजा जा चुका है, पर आरंभ से ही वे पुरस्कारों से (खासकर सरकारी संस्थाओं के या फिर उन गैर-सरकारी संस्थाओं के, जो आदान-प्रदान की छद्म नीति की आड़ में पुरस्कृत करते हैं) बचते रहे हैं! उनकी काव्यकृति 'छूटता हुआ घर' को जब स्व. गिरिजाकुमार माथुर की स्मृति में स्थापित प्रथम पुरस्कार के लिए चुना गया तो मनु को यों लगा, जैसे पुरस्कार के लिए उन्हें घेर लिया गया हो। आनन-फानन में उन्होंने घोषणा कर डाली कि वे इस पुरस्कार की संपूर्ण राशि का उपयोग अभी तक उपेक्षित रहे, दबे-पिसे, संघर्षशील नए कवियों के काव्य-संकलन को प्रकाशित करने के लिए करेंगे, और उन्होंने 'सदी के आखिरी दौर में' (जो कोई दर्जन भर नए, लगभग अनजान कवियों की कविताओं का संकलन था) निकालकर ऐसा किया भी।

मनु का पहला उपन्यास 'यह जो दिल्ली है' जब लिखा जा रहा था तो उनसे उपन्यास की विषयवस्तु, पात्रों तथा उपन्यास के परिवेश पर घंटों का संवाद मेरी स्मृति में अभी भी ताजा है। 'दिल्ली में सत्यकाम', 'राजधानी प्रेस' और न जाने कितने नामों की सीढ़ियाँ लाँघता अंत में 'यह जो दिल्ली है' पर आकर अटक गया यह उपन्यास। धराशायी होते पत्रकारिता के मूल्यों और मानदंडों पर लिखा गया यह एक विवादास्पद उपन्यास साहित्यिक अखाड़ेवाजी में उस तरह चर्चित नहीं हुआ, जिस तरह होना चाहिए था।

ऐसा नहीं कि मनु को इस सबसे पीड़ा नहीं होती, पर वे इसे प्रकट न करते हुए एक मुकाम पर पहुँचने के बाद दूसरे की खोज में निकल पड़ते हैं। यही कारण है कि लाख निराशाओं के बीच घिरे रहने के बावजूद वे हताश नहीं होते।

उनके बाद के दो उपन्यास 'कथा सर्कस', और 'पापा के जाने के बाद' भी, जो क्रमशः साहित्य एवं कला-जगत में व्याप्त अनेक चालाकियों पर व्यंग्यात्मक टिप्पणी तथा एक संघर्षशील कलाकार के स्वाभिमान तथा मृत्यु-उपरांत उसकी पारिवारिक पीड़ा को मार्मिकता से अभिव्यक्त करते है, आज लगभग गुमनामी का दंश झेल रहे हैं।

मनु ने अपनी साहित्यिक यात्रा के बीच अनेक नामी-गिरामी साहित्यकारों के साक्षात्कार लिए हैं, जो मणिका मोहिनी के संपादन में निकली पत्रिका 'वैचारिकी संकलन' में प्रकाशित हुए थे। बाद में इनका प्रकाशन 'मुलाकात' नाम से अभिरुचि प्रकाशन द्वारा पुस्तक रूप में भी हुआ। इनमें से कुछ मुलाकातों में मैं भी मनु का सहभागी और साक्षी रहा। मुझे याद है, एक बार सन् 1996 में हम दोनों जगदीश चतुर्वेदी का साक्षात्कार लेने उनके लारेंस रोड, नई दिल्ली स्थित उनके निवास पर गए थे। पूरा दिन बिताकर जब हम शाम को पाँच बजे उठे तो सोचा, चलो, अब हम दोनों ठीक समय पर अपने-अपने घर पहुँच जाएँगे। लेकिन मनु जी कमरे से निकलते-निकलते भी दरवाजे पर ही घंटों बतियाते रहे और मेरी टोका-टोकी को नजरअंदाज करते रहे।

समय निकलता गया और जब हम चतुर्वेदी जी के निवास से बाहर आए तो मनु जी को चिंता लगी कि हजरत निजामुद्दीन पहुँचने तक उनकी फरीदाबाद जाने वाली आखिरी लोकल ट्रेन भी कहीं न निकल जाए। और फिर हुआ भी वही। अब उन्हें अपनी पत्नी सुनीता तथा दो बच्चियों के घर पर अकेले होने की चिंता लग गई। आखिर अपने आग्रह पर मैं उन्हें उस रात्रि, यह आश्वस्ति देकर कि सुबह-सुबह मैं उन्हें फरीदाबाद की पहली गाड़ी पकड़ा दूँगा, अपने घर शकरपुर ले आया।

भोजनोपरांत जब हम बिस्तर पर पड़े तो मनु जी शायद ही पूरी रात सो सके हों। सुनीता का बच्चियों के साथ अकेले रहना उन्हें लगातार चिंतित कर रहा था। ठंड का मौसम था। सुबह कोहरा बना हुआ था, पर मनु जी ने मुझे ठीक पाँच बजे उठा दिया। हाथ-मुँह धोकर मैं उन्हें वेस्पा स्कूटर पर बैठाकर मिंटो ब्रिज स्टेशन के लिए निकल पड़ा। सर्दी के कारण हाथ लकड़ी की तरह अकड़े जा रहे थे। राउज एवेन्यू (दीनदयाल उपाध्याय मार्ग) पर सड़क के बीच मैनहोल सतह से नीचे होने के कारण स्कूटर कई बार उछलता जा रहा था, और आस-पास कुछ वाचाल कुत्ते भी भूँक रहे थे। बहरहाल, हम किसी तरह गंतव्य पर पहुँचे और मनु जी ने सुबह-सुबह की अपनी गाड़ी पकड़ी। इस बात का हमें संतोष हुआ था, पर सर्दी के कारण उस कोहरीली सुबह में मेरी जो हालत हुई थी, उसके लिए मैं मनु जी को आज भी कुछ कोफ्त के साथ याद करता हूँ।

लेकिन उनका आभारी भी हूँ कि साहित्य की दुनिया में थोड़े-बहुत पैर जमाने में जिन शख्सियतों ने मेरी मदद की, उनमें देवेंद्र कुमार और प्रकाश मनु दो मित्रों का बहुत बड़ा हाथ रहा है। हम तीनों ने हिंदुस्तान टाइम्स हाउस के आस-पास एक साथ इतनी दोपहरें और शामें बिताई हैं कि हमारा आत्मिक संबंध अनेक अंतर्विरोधों के बावजूद आज भी यथावत् अटूट बना हुआ है।

'देवेंद्र सत्यार्थी मनु के कथागुरु रहे हैं और मनु उनके स्नेहभाजन भी। मनु के जरिए ही मेरी भी सत्यार्थी जी से उनके जीवन काल में यदा-कदा भेंट हुई है। एक बार दुर्ग से प्रकाशित 'सापेक्ष' पत्रिका के संपादक महावीर अग्रवाल के आग्रह पर मुझे सत्यार्थी जी से 'कबीर' पर साक्षात्कार लेना था। जाहिर है कि यह कार्य मनु के सहयोग से ही संपन्न हो सका था। उन्होंने सलाह दी थी कि सत्यार्थी जी से सीधे-सीधे सवाल-जवाब की आशा मत रखना, बल्कि उन्हें अपने आप ही बोलने देना। फिर उसी में से सवाल-जवाब बना लेंगे। मनु जी की बात को ध्यान में रखते हुए मैं सत्यार्थी जी के रोहतक रोड स्थित निवास पर जा पहुँचा।

सत्यार्थी जी उस समय बीमार चल रहे थे और उन्हें ज्यादा बोलने में भी तकलीफ हो रही थी। उनकी पत्नी श्रीमती शांति सत्यार्थी, जो लोकमाता के नाम से प्रसिद्ध थीं, उनकी सेवा-सुश्रूषा में लगी थीं। ऐसे माहौल में वह साक्षात्कार शुरू हुआ और मनु जी की चेतावनी भी वहीं सच हो गई। बीच-बीच में बोलते हुए वे पटरी से उतरते रहे और कबीर की जगह मुझे लाहौर की अनारकली की सैर कराते रहे, डॉ. इकबाल और साहिर के किस्सों के बीच घुमाते रहे। जब मैंने

उन्हें कबीर के बारे में चेताया तो बोले, "हाँ, मैं उन्हीं के बारे में ही कह रहा था...!" और फिर यह अनोखा साक्षात्कार आदिग्रंथ तथा खुशवंत सिंह के संदर्भों के साथ संपन्न हुआ।

इस बीच वे बार-बार पूछ्ते रहे, "मनु के क्या हालचाल हैं?...आप हिंदुस्तान टाइम्स हाउस की किस मंजिल में बैठते हैं?...मेरी तबीयत आजकल ठीक नहीं रहती है। क्या आपके पास भीष्म साहनी की नाट्य रचना 'कबिरा खड़ा बाजार में' की कॉपी है? हो तो भिजवा देना। मैं उसे पढ़ना चाहता हूँ।"

मनु के ऊपर देवेंद्र सत्यार्थी और शैलेश मटियानी के व्यक्तित्व का काफी प्रभाव पड़ा है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता। 'यह जो दिल्ली' है के नायकीय चरित्र सत्यकाम में कुछ हिस्सा सत्यार्थी जी के चरित्र का भी रहा हो तो आश्चर्य नहीं, हालाँकि कथा-साहित्य में सृजित चरित्र बहुत ही संश्लिष्ट होते हैं और उनमें किसी व्यक्ति का आरोपण करना दूर की कौड़ी फेंकने से ज्यादा नहीं होता।

एक और घटना याद आ रही है, जब मनु, मैं और शैलेंद्र चौहान कथापुरुष शैलेश मटियानी से दिल्ली के गोविंद बल्लभ पंत अस्पताल में बातचीत करने गए थे। यह शायद जगदीश चतुर्वेदी से लिए गए साक्षात्कार के लगभग एक महीने पहले का समय रहा होगा। यानी नवम्बर, 1996 का कोई दिन। मटियानी जी उस समय भयंकर मानसिक पीड़ा के आघात से थोड़ा-सा उबरे थे और बातचीत करने के लिए उन्होंने मनु को शायद स्वयं ही आमंत्रित कर लिया था। इसलिए यह साक्षात्कार उस सुखद माहौल में नहीं हुआ था, जैसी सुखद स्थिति चतुर्वेदी जी के साक्षात्कार के समय रही थी।...कारण स्पष्ट थे। चतुर्वेदी जी के साथ गुजरा दिन ठहाकों से भरा था और मटियानी जी के साथ का समय उत्तेजनाओं तथा कुछ-कुछ विषाद में लिपटा हुआ। मटियानी जी को अस्पताल में जो कमरा मिला था, उसमें उनकी पत्नी नीला जी तथा बेटा राकेश भी साथ थे।

मटियानी जी ने उस साक्षात्कार में अपनी रचनाओं तथा साहित्यिक अनुभवों के साथ-साथ अपनी जानलेवा बीमारी एवं जीवन के कुछ अछूते निजी प्रसंग हम सब से साझा किए थे। मनु तथा शैलेंद्र चौहान की तो शायद मटियानी जी से मुलाकात पहले भी हो चुकी थी, पर मेरी उनसे यह पहली मुलाकात थी और उसी दिन मुझे पता चला था कि मनु को वे कितना अगाध स्नेह और सम्मान देते थे। बचपन से ही संघर्ष और पलायन की विपदा झेलने वाले शैलेश मटियानी, जो अपने रचना-कर्म के बल पर (आत्मश्लाघावश नहीं) स्वयं को प्रेमचंद के बाद का सबसे बड़ा कहानीकार मानते थे, से मिलना हमारे लिए एक विरल अनुभव था। हालाँकि देवेंद्र सत्यार्थी, नागार्जुन आदि की तरह मटियानी जी द्वारा की गई परिवार की उपेक्षा से उनकी पत्नी तथा पुत्र दोनों ही दुखी दिखे, लेकिन पंत अस्पताल में बीत रहे वे दिन सेवा करने के दिन थे, गिले-शिकवे करने के नहीं।

मनु स्वयं बहुत भावुक हैं। और हम दोनों भी इसके अपवाद नहीं थे, इसलिए मटियानी जी

जब भी अपनी विक्षिप्तावस्था, असहनीय मानसिक पीड़ा तथा पारिवारिक चिंताओं की चर्चा करते तो हम सबकी आँखें भर आतीं!

विपरीत परिस्थितियों में हमारी सहभागिता सहित मनु द्वारा लिया गया मटियानी जी का यह साक्षात्कार उनके द्वारा लिए गए साक्षात्कारों में सबसे अधिक लंबा था। 'मुलाकात' पुस्तक के 57-58 प्रष्ठ घेरे थे उसने। यह वह समय था जब प्रकाश मनु द्वारा लिए गए साहित्यकारों के लंबे-लंबे साक्षात्कार, वह भी बिना रेकार्ड किए, काफी चर्चा का विषय बन चुके थे और जिनसे मनु की एक अलग ही पहचान बनी थी।

एक-दो साक्षात्कारों पर विवाद भी खड़ा हुआ था। एक बड़े साहित्यकार ने तो अपने साक्षात्कार में कही गई कुछ बातों को सिरे से नकार दिया था और सारा दोष मनु की भंग-स्मृति पर डालकर मुक्त हो गए थे। इससे मनु कुछ दिनों तक काफी विचलित रहे थे। इस संदर्भ में मुझे कन्हैयालाल 'नंदन' द्वारा लिए गए जैनेंद्र कुमार के एक साक्षात्कार का स्मरण भी आ रहा था, जिसमें जैनेंद्र जी द्वारा नकारी गईं कुछ बातों का प्रमाण 'नंदन' जी ने जैनेंद्र जी द्वारा हस्ताक्षरित पांडुलिपि को प्रकाशित कर के दिया था। जबकि मनु ने ऐसी सावधानी शायद कभी नहीं बरती और न ही उनके किसी साहित्यकार से प्रकटत जरूरत से ज्यादा कटु संबंध बने।

बीस-पच्चीस बरस पहले के और आज के प्रकाश मनु को देखता हूँ, तो मुझे दोनों में काफी कुछ परिवर्तन नजर आता है। ज्यों-ज्यों मनु का रचनात्मक कद बढा है, उनके अंदर की विध्वंसात्मक ऊर्जा शांत होती गई है। एक परिवर्तन यह भी आया है कि वे जब से बाल साहित्य सृजन की ओर उन्मुख हुए हैं, उन्होंने अपने आप को बाल साहित्य की धारा में ही संपूर्णतः बहा दिया है।

बाल साहित्य की लगभग सभी विधाओं में मनु ने विपुल मात्र में लेखन किया है और अभी भी कर रहे हैं। आलोचना के क्षेत्र में 'हिंदी बाल कविता का इतिहास', 'हिंदी बाल साहित्य : नई चुनौतियाँ और संभावनाएँ' जैसी गंभीर विवेचनात्मक कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं और अभी कुछ अरसा पहले उनके द्वारा कई वर्षों के श्रम से लिखा गया 'हिंदी बाल साहित्य का इतिहास' भी पाठकों के सामने आ चुका है।

मनु की अथक रचनात्मक ऊर्जा के पीछे उनकी लेखिका पत्नी डॉ. सुनीता की सतत शक्ति रही है, और मनु की रचनाओं की सबसे पहली पाठक और आलोचक भी वे ही रही हैं। मनु की रचनाओं की तुलना में सुनीता की प्रकाशित कृतियाँ कम हैं, पर उनमें जो गँवई महक और पारिवारिक जीवन के आत्मीय संबंधों की झलक है, वह मनु की रचनाओं में मुझे कम दिखती है। एक में अनुभवों की समृद्धि का आधिक्य है तो दूसरे में अनुभूतियों की सघनता का।

मनु अब तक जीवन के 74 वसंत देख चुके हैं और वय में वे मुझसे लगभग तीन-चार वर्ष छोटे हैं। पर वे (और डॉ. सुनीता भी) मुझे हमेशा छोटा भाई मानकर ही व्यवहार करते हैं और इसमें सचमुच मुझे सबसे बड़ा सुख मिलता है। उम्र जैसे-जैसे बढती जाती है, वैसे-वैसे आत्मीयजनों और अपनी चीजों से मोह भी बढ़ता जाता है, जबकि ऐसा होना नहीं चाहिए। बच्चन जी ने शायद ऐसी ही मनःस्थिति में कभी लिखा होगा, "अंगड़-खंगड़ मोह सभी से, क्या बाँधूँ, क्या छोड़ूँ रे, जिसका सारा माल-मता है उससे नाता जोड़ूँ रे!"

'कुछ अरसा पहले मनु जी की दो आत्मकथात्मक पुस्तकें आई थीं। उनकी आत्मकथा का पहला खंड 'मेरी आत्मकथा : रास्ते और पगडंडियाँ' और 'मेरे कुछ आत्म-संस्मरण'। इन्हें पढ़कर मैं उन्हें पत्र लिखे बिना न रह सका। यहाँ उस पत्र को देने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूँ -

"प्रिय मन्नू भाई, उर्फ प्रकाश मनु,

'मेरी आत्मकथा : रास्ते और पगडंडियाँ' के लगभग सभी पन्ने कुछ सरसरी तौर पर और कुछ गंभीरतापूर्वक पढ़ गया हूँ। इस पुस्तक के माध्यम से आपने अपने परिजनों और अपने निजी जीवन के किशोरावस्था तक के प्रसंगों को बहुत ही आत्मीयता और रोचकता के साथ हम पाठकों के साथ साझा किया है।

मेरा अपना मानना है, आत्मकथा कोई भी हो, वह केवल आत्म तक ही सीमित नहीं रहती, उसमें परकथा भी साथ-साथ चलती रहती है। नाम के लिए यह परकथा होती है, लेकिन वह आत्म के साथ इस तरह बिंधी होती है जैसे माला के साथ मोती। 35 अध्यायों में आपने अपने पूर्वजों, माँ, पिता, भाई-बहन, मित्र सभी की इतनी घनी स्मृतियाँ उकेरी हैं कि मैं अभिभूत हूँ पढ़कर। बचपन में भावुक होना, जिद पर अड़ना और माँ, नानी से सुनी कहानी-किस्सों में खोकर अपना खुद का काल्पनिक संसार रचना, घर छोड़कर भाग जाना और आए दिन डाँट-डपट, मार-पिटाई से रू-ब-रू होना, ये सब ऐसी घटनाएँ हैं, जिनसे होकर आपकी तरह हम भी गुजरे हैं। यही कारण है कि ये सब प्रसंग आपके निजी होकर भी हमारे लगते हैं। शायद यही वह सूत्र है, जो आपकी आत्मकथा को पढ़ते हुए हमें चौंकाता है, हँसाता है, रुलाता है। एकाएक हमें लगने लगता है कि अरे, यह तो हमारे ही बचपन और किशोर वय की बात की जा रही है, ऐसा तो हमारे साथ भी घट चुका है।

भरे-पूरे परिवार में पारंपरिक व्यवसाय छोड़कर कलम को पकड़ लेना किसी विद्रोह से कम नहीं। ऐसा जिद्दी बच्चा फिर चाहे वह कुक्कू हो या कोई और, इस बात की परवाह नहीं करता कि उसकी जिद, उसके निर्णय को परिवार में किससे समर्थन मिलेगा और किससे नहीं। लेखक बनना कुक्कू की जिद भी है और सपना भी। यह जिद ही उसे बड़ा लेखक बनाती है। उम्रदराज माँ, बाप, पाँच भाइयों और दो बहनों के बीच अनेक तरह के संघर्षों के बीच उठने-गिरने और फिर

अपना मुकम्मल रास्ता चुनने की मार्मिक कहानी कही है आपने इस आत्मकथा में। एक तरह से यह जीवन की विलोम यात्रा भी है, जिसमें कितने रास्ते और कितनी पगडंडियाँ आपको पार करने पड़े हैं।

कृष्ण भाईसाब और श्याम भैया की स्मृतियाँ और धीरे-धीरे उनका असामयिक विछोह सचमुच आँखें भिगो देता है। बचपन की कथा दोहराते हुए आपने जिन पंजाबी जबान के गीतों को उद्धृत किया है, वे अंदर तक छूते हैं। वहाँ भाषा बाधा नहीं बनती, बल्कि उनमें व्यक्त किया गया भाव मर्मस्थल को सीधे छूता है। कोई साठ पार की अवस्था में अपने अतीत के इतने पीछे जाना और उन्हें शब्दों में बाँधना सबके बस की बात नहीं। शैशव से लेकर तरुणाई तक आपकी जीवन-यात्रा के अनेक मार्मिक प्रसंग इस आत्मकथा के प्रथम भाग मे बिखरे पड़े हैं, जिन्हें मुक्त रूप से बिना किसी तारतम्य के भी पढ़ा जा सकता है और उनका आनंद लिया जा सकता है। यह एक ऐसा आनंद है, जिसमें ठेठ देसीपन की ठसक, गमक और चमक है, जो विदेशी आत्मकथाओं मे कम से कम हमारे जैसे पाठकों को दुर्लभ है। इसकी एक झलक आपकी दूसरी पुस्तक 'मेरे कुछ आत्म संस्मरण' में पहले देख चुका हूँ।

ये दोनों पुस्तकें हिंदी साहित्य मे कितना स्थान बनाएँगी, कह नहीं सकता, पर जहाँ तक मेरा अपना सवाल है, आपकी समस्त श्रमसाध्य पुस्तकें मेरी अपनी निजी धरोहर हैं, जिन्हें जब तलब होती है, उठा लेता हूँ। फिलहाल इतना ही...!

डॉ. सुनीता जी को मेरा सादर नमस्कार। अगर वे न होतीं तो आपका अफसाना अधूरा ही रहता।"

अंत में बस, इतना ही कि मनु जी की कहानी अभी पूरी नहीं हुई। उसके कई पड़ाव अभी आने हैं, जिनमें जाने हुए प्रकाश मनु के साथ ही न जाने हुए प्रकाश मनु की भी शायद कई बहुरंगी छवियाँ हमें देखने को मिलेंगी।

रमेश तैलंग, फ्लैट नं. - 101, संकल्प सोसाइटी, प्लॉट 50, खारघर, नवी मुंबई-410210 (महाराष्ट्र)
मो. : 09211688748

प्रकाश मनु सर जब 'साहित्य अमृत' के संयुक्त संपादक बनकर आए

प्रेमपाल शर्मा

मनु सर आगामी चार महीने की सामग्री का समायोजन कर अलग-अलग फोल्डर्स में रख दिया करते थे। कलेवर की विविधता ऐसी होती कि लगभग सभी विधाओं की रचनाएँ उसमें रहतीं। मनु सर किसी रचना का चयन उसके स्तर एवं पठनीयता को देखकर ही किया करते थे। लेखक या रचनाकार कितने भी ऊँचे कद का या वरिष्ठ होता, अगर उसकी रचना या आलेख पत्रिका के स्तर का न होता तो उसे स्पष्ट, पर मुलायमियत से मना कर देते। एक बार का वाकया मुझे याद है कि यू.के. के जाने-माने कथाकार कृष्ण कुमार भारत आए हुए थे, तो हमारे कार्यालय में भी आए। उन्होंने एक कहानी 'साहित्य अमृत' में प्रकाशन के लिए दी। मनु सर ने वह कहानी पढ़ी और बिल्कुल पसंद नहीं आई। सर ने उसी समय कह दिया, "कृष्ण कुमार जी, आप बहुत अच्छे लेखक हैं, पर यह कहानी 'साहित्य अमृत' के लायक नहीं है।

बाल जगत की मासिकी 'नंदन' के संपादकीय विभाग में दशकों तक इसे पुष्पित-पल्लवित करने वाले तथा बाल साहित्य के मूर्धन्य लेखक प्रकाश मनु जी का परिचय देना तो वैसा ही है, जैसे दिनकर को दीप दिखाना। बहुत से लोग उन्हें उनकी रचनाओं के माध्यम से जानते हैं, और समकालीन अधिकतर साहित्यकार ऐसे हैं, जो किसी न किसी मंच पर उनका सान्निध्य, स्पर्श और स्नेह पा चुके हैं। मेरे पुण्य कर्मों का परिणाम रहा कि मुझे उनकी निकटता पाने, उनसे सीखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, जब वे हिंदी की प्रतिष्ठित पत्रिका 'साहित्य अमृत' के संयुक्त संपादक बनकर प्रभात प्रकाशन संस्थान में आए। अपने कार्य के प्रति उनकी लगन तथा कर्तव्यपरायणता देखकर मैं तो दंग रह गया।

मैं जब पत्रिका कार्यालय पहुँचता, तो मनु सर को हमेशा पहले से ही काम में जुटा हुआ पाता। नित्य आने वाली रचनाओं को पढ़ना, उन्हें यथास्थान रखना, अलग-अलग अंकों के लिए समायोजित करना, जरूरत के अनुसार लेखकों से रचनाएँ मँगवाना इत्यादि सब काम वे इस तल्लीनता के साथ करते कि उनके आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ से कोई कितनी बार निकल जाए, उन्हें पता ही नहीं चलता था।

हम लोगों ने पहली बार जाना कि काम को किस प्रकार से व्यवस्थित किया जाता है। इनके पूर्ववर्ती जितने संयुक्त संपादक रहे, सब

के सब निष्क्रिय और नाम को ढोने वाले ही थे। वे लोग हमसे दूरी बनाकर रखते थे, मिलते भी तो अफसरी अंदाज में। पर मनु सर तो अपने अधीनस्थों से इतनी आत्मीयता और मधुपगी वाणी में नित्य ही बात किया करते थे। चल रहे काम में मार्गदर्शन करते, उनके स्नेहसिक्त व्यवहार के बारे में क्या कहूँ, जब सर चाय भी पीते तो हमें बड़े प्यार से एक-एक बिस्कुट जरूर खिलाते थे।

मनु सर प्रूफों की रीडिंग इतनी बारीकी से करते कि तथ्यात्मक, वर्तनीगत आदि गलतियाँ तो छोड़ो, कहीं कोमा की गलती छूटने की भी कोई गुंजाइश न रहती। सायं में जब हम छुट्टी कर घर जाते, तब भी मनु सर काम में मुस्तैदी से जुटे रहते। दीदी (मनु सर की बिटिया) का बार-बार फोन आता तो कहते, "हाँ, बस निकल रहा हूँ।" दीदी कुछ देर बाद फिर फोन करतीं, सर फिर वही उत्तर देते, "हाँ-हाँ, बस निकल ही रहा हूँ।" मैं खुद भी कभी-कभी कहता, "सर, आप जाइए, मैं कल आकर इसे देख लूँगा।"

काम के प्रति ऐसे जुनून को देख, मैं तो इस नतीजे पर पहुँचा कि मनु सर रात को भी शायद ही सो पाते हों। हमारे आदरणीय संपादक त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी जी की हस्तलिपि काफी हद तक पढ़ने में नहीं आती। संपादकीय पढ़ते समय मैं खीज जाता था और सर से शिकायत के लहजे में कहता कि ताऊ जी (प्यार से हम उन्हें ताऊ जी कहते हैं) बहुत गंदा लिखते हैं। तब मनु जी मेरा एक हाथ अपने हाथ में लेते हुए बड़े इत्मीनान से कहते, 'अरे, तो क्या हुआ? हम भी भूत हैं, कैसा भी लिखें, सब ठीक कर देंगे।'

मनु सर मेरे पढ़ने के बाद स्वयं पढ़ते, वाक्यों को इस सिलसिलेवार धारा प्रवाह कर देते कि पढ़ने में विभ्रम और अटकाव की कोई गुंजाइश न रहती। कभी-कभी मुझे बुलाकर उन वाक्यों को दिखाते भी और कहते कि देखो, इसे इधर से उधर करें तो कैसा रहे? संपादक जी का संपादकीय लेख मैं आज भी पढ़कर दुरुस्त करता हूँ, अब मुझे खीज नहीं होती, 'भूत' जो बन गया हूँ।

इस उम्र में इतना मेहनती और काम को जुनून की हद तक करने वाला व्यक्ति इससे पूर्व मेरे व्यवहार में नहीं आया था। मनु सर शब्दों का प्रयोग बड़ा सोच-समझकर करते थे। मैं निरंतर उनकी बातों को ध्यान में रखकर काम करता और बाद के दिनों में तो सर मेरे ऊपर पूरा-पूरा भरोसा करने लगे थे। कई बार फरीदाबाद से ही फोन पर कह देते, "प्रेमपाल जी, उस प्रूफ को आप ही एक बार और देख लेना।" मैं हमेशा कोशिश करता कि सर को मेरे काम से निराशा न हो।

अपने आने के पहले ही महीने से मनु सर ने पत्रिका की सूरत-सीरत दोनों बदल दीं। उनके संपादन में निकले अंक एकदम अलग ही नजर आते हैं। ऐसे सर्वांग सुंदर अंक न उनसे पहले कभी निकले और न बाद में। कितने ही नए कवि-साहित्यकारों को उन्होंने 'साहित्य अमृत' से जोड़ा। प्रूफ और मैटर की सैटिंग तो छोड़ो, पत्रिका का कवर (मुखपृष्ठ) जब तक उनकी नजर में खरा न

उतरता, तब तक उसमें संशोधन और बदलाव करवाते, इशारे से ही बता देते कि यहाँ थोड़ा लाइट कलर रखें तो कैसा रहे। हमारे सीनियर आर्टिस्ट मनोज गुप्ता जी उनकी हर बात, हर सुझाव पर गौर करते। मनु सर के सान्निध्य में हमारी पूरी टीम ऊर्जा से लबालब रहती। कारण कि मनु सर सबको प्रोत्साहित-प्रेरित करते थे। आज भी सब उन्हें बड़ी शिद्दत से याद करते हैं।

मनु सर आगामी चार महीने की सामग्री का समायोजन कर अलग-अलग फोल्डर्स में रख दिया करते थे। कलेवर की विविधता ऐसी होती कि लगभग सभी विधाओं की रचनाएँ उसमें रहतीं। मनु सर किसी रचना का चयन उसके स्तर एवं पठनीयता को देखकर ही किया करते थे। लेखक या रचनाकार कितने भी ऊँचे कद का या वरिष्ठ होता, अगर उसकी रचना या आलेख पत्रिका के स्तर का न होता तो उसे स्पष्ट, पर मुलायमियत से मना कर देते। एक बार का वाकया मुझे याद है कि यू.के. के जाने-माने कथाकार कृष्ण कुमार भारत आए हुए थे, तो हमारे कार्यालय में भी आए। उन्होंने एक कहानी 'साहित्य अमृत' में प्रकाशन के लिए दी। मनु सर ने वह कहानी पढ़ी और बिल्कुल पसंद नहीं आई। सर ने उसी समय कह दिया, "कृष्ण कुमार जी, आप बहुत अच्छे लेखक हैं, पर यह कहानी 'साहित्य अमृत' के लायक नहीं है। कृपया आप कोई दूसरी कहानी भेजिएगा।" सामने ही बैठे हमारे प्रबंध निदेशक यह देखकर अवाक् रह गए।

जो व्यक्ति ईमानदार एवं अपने कार्य के प्रति समर्पित होता है, वह निडर होता है। मनु सर कितने उदार और सहनशील तथा संयत रहनेवाले इनसान हैं। एक बार मैंने मनु सर का क्रोधित रौद्र रूप भी देखा। प्रकाशित होनेवाले अंक की सर सूची बना दिया करते थे। सामान्यतया उसमें कोई हेर-फेर नहीं करते थे, न करने देते थे। हुआ यों कि प्रभात कुमार जी (हमारे बॉस) ने उसमें एक नई रचना मुझे कहकर जुड़वा दी।

मनु सर को यह बात नागवार गुजरी। उन्होंने मुझे बुलाकर पूछा कि इसमें यह छेड़छाड़ किसने की है? मैंने सहजता से बता दिया कि प्रभात सर ने यह किया है। मनु सर बड़े गुस्से में उन्हें सुनाते हुए मुझसे डाँटने के अंदाज में बोले कि "प्रभात जी कौन होते हैं इसमें दखल देने वाले। उनकी हिम्मत कैसे हुई यह सब करने की?"

हालाँकि प्रभात जी तीन फीट की दूरी पर ही बैठे अपनी टेबल पर काम कर रहे थे। मैं तो समझ ही रहा था कि मनु सर मेरे माध्यम से उन्हें ही सुना रहे हैं। डेढ़ साल के समय में मैंने पहली बार मनु सर को क्रोध करते हुए देखा था।

कुछ घंटों बाद मौका देखकर प्रभात सर ने मुझे अपने कैबिन में बुलाया और पूछा कि तुम्हारे गुरु जी क्या कह रहे थे? मैंने कहा कि आप सुन तो रहे थे। फिर हँसते हुए बोले, "प्रेमपाल जी, आप सँभाल लेना, अब मैं कोई दखल नहीं दूँगा। मनु जी तो कभी क्रोधित नहीं होते, पर आज अचानक इतना गुस्सा...!" इसके बाद तो प्रभात सर किसी की कोई रचना छपवाते, तो मनु सर

को आग्रहपूर्वक सौंप देते थे। उस दिन हमारे ऑफिस के बहुत सारे कर्मचारियों ने लंच समय में मुझसे कहा कि भाई, आज तो सच में बहुत मजा आया। जो सबको डाँटता है, आपने उसी को डाँट पिलवा दी।

'मनु सर परदुखकातर इतने हैं कि उन्हें अपने कष्ट-तकलीफ की जरा भी फिक्र नहीं होती। दूसरों के कष्ट देखकर-सुनकर ही द्रवित हो जाते हैं। अपने अधीनस्थों को पितृ-गुरु तुल्य प्यार करते हैं। बरसात के दिनों में मनु सर एक जोड़ी कपड़े अपने थैले में डालकर चलते हैं। एक बार हमारा और मनु सर का प्यारा कंप्यूटर ऑपरेटर बाइक पर ऑफिस आते हुए भीग गया। वह सर के आगे से नमस्ते कर, वॉशरूम की तरफ जा रहा था कि देखते ही तुरंत बोले, "अरे बेटा मुकुल, तुम तो पूरे भीग गए। सुनो!" और अपने थैले से कुरता तथा पेंट निकाली, "लो, शर्ट उतारकर कुरता पहन लो, पैंट तो तुम्हारे आएगी नहीं।"

मुकुल संकोचवश मना करने लगा, पर मनु सर ने प्यार-मनुहार कर उसे कुरता पहना दिया, तब उन्हें कुछ चैन मिला। मनु सर का कोई प्रसंग आने पर मुकुल आज भी उनके बारे में बातें करता है तो इतना ही कहता कि मेरे घर-रिश्तेदार आदि में भी ऐसा कोई व्यक्ति नहीं, जो दूसरों से इतना निस्स्वार्थ स्नेह करता हो। मनु सर एकदम अलग तरह के इनसान हैं - दयालु, परोपकारी, हर किसी की मदद के लिए तत्पर।

हर किसी की मदद करना मनु जी का स्वभाव है। कहा जाता है कि लेखक-कवि बड़े भावुक और सहृदय होते हैं, पर मनु जी से ज्यादा नहीं। नए लेखकों को प्रोत्साहित-प्रेरित कर उनको निखारना, उनकी प्रतिभा को चमकाना, उसकी रचना की सराहना कर उसे और अच्छा लिखने के टिप्स देना, यह सब वे बिना किसी अपेक्षा के निःस्वार्थ भाव से करते हैं।

मनु जी शायद वर्ष 2013 के जून महीने में हमारे यहाँ आए थे। मैं जुलाई में उसी वर्ष पहली बार जगन्नाथ पुरी रथयात्रा में गया था। पहली बार मैंने उस यात्रा का विवरण लिखने की कोशिश की। मनु जी ने उसे पढ़कर ढंग से तराशा तो वह बहुत अच्छा बन गया। 'साहित्य अमृत' में प्रकाशन के बाद उस पर बहुत सारे पाठकों की प्रतिक्रियाएँ आईं। मैं भी प्रशंसा भरे फोन सुन-सुनकर फूला न समाया। कुछ महीनों बाद मनु जी ने मुझे टोका कि "प्रेमपाल जी, आपने और भी यात्राएँ की होंगी, उन पर लिखिए। आप तो बहुत अच्छा लिखते हैं। अब तक क्यों नहीं लिखा था?" मैंने कहा कि "सर, मैं जब दिल्ली विश्वविद्यालय में पढ़ रहा था, यानी 1985 में अयोध्या गया था, और तो मैंने कोई यात्रा नहीं की।"

मनु जी बोले कि उसकी कुछ तो स्मृति होगी। मैंने कहा, "हाँ सर, स्मृतियाँ तो ताजा हैं।"

मनु सर तुरंत बोले, "तब तो फौरन लिख डालो।"

मैंने वह यात्रा-वृत्त ठीक तीस वर्ष बाद 2015 में लिखा, तो मनु जी ने उसे 'साहित्य अमृत' में छापा। बहुत सारे पाठकों की प्रतिक्रियाएँ आईं। तब से मुझे भी लिखने का थोड़ा चस्का लग गया।

मैं किसी यात्रा पर जाता हूँ, तो यात्रा से आते ही मनु जी तकादा शुरू कर देते हैं, "प्रेमपाल जी, इसे तुरंत लिख डालो, देर होगी तो बात नहीं बनेगी।" मनु जी के मार्गदर्शन और प्रोत्साहन से अब तक मैं तेरह-चौदह यात्रा-संस्मरण लिख चुका हूँ। मनु जी ही मेरे प्रथम पाठक और आलोचक हैं। छपने से पूर्व मैं अपनी रचना मनु जी को अवश्य भेजता हूँ। मनु जी ने अपने कंप्यूटर में मेरे नाम से एक फोल्डर बना लिया है। कितने भी व्यस्त रहें, लेकिन मेरी रचना पढ़कर उस पर टिप्पणी अवश्य देते हैं।

मनु जी की व्यस्तता को देखते हुए मैं महीने में एक बार उनसे बात जरूर करता हूँ। वह भी तब, जब 'साहित्य अमृत' का नया अंक उनके पास पहुँच जाता है। मनु जी उसकी अच्छाई और कमियाँ, दोनों बेबाकी से बताते हैं। खास अवसर पर मुझे कोई खास रचना चाहिए होती है तो मैं हमेशा मनु जी से ही आग्रह करता हूँ। वे उतनी ही तत्परता से अपने संपर्कों से अभीष्ट रचना भिजवा देते हैं। अपना लेखन-कार्य तो संभवतः सभी लेखक करते हैं, परंतु जो दूसरों को प्रोत्साहित कर सच्चा मार्गदर्शन करते हैं, वे गिनती के ही हैं। और मनु जी जैसे साहित्य को पल-प्रति पल जीने वाले लेखक तो नाममात्र को ही होंगे।

आज के वातावरण में जहाँ लेखक-संपादक झूठी-सच्ची प्रशंसा-सम्मान पाने के लिए इतने लालायित रहते हैं कि इधर-उधर की जुगाड़ बिठाते हैं, परंतु मनु जी इतने प्रसिद्ध-पराङ्मुख हैं कि कोई संस्था उन्हें सम्मानित करने के लिए आग्रह करती है तो उसे शुभकामना देते हुए विनयपूर्वक मना कर देते हैं। अधिक से अधिक समय अपने लेखन को देना चाहते हैं। मनु जी खूब मेहनत कर कार्य को सिरे चढ़ाते हैं। अगर उसमें कुछ चूक हो जाए तो उसकी जिम्मेदारी स्वयं लेते हैं और उस कार्य को सराहना मिले, तो उसका श्रेय अपने अधीनस्थों को देते हैं।

सभी लोग जानते हैं कि उनके कार्यकाल में 'साहित्य अमृत' के जो उत्कृष्ट अंक निकले, उनका श्रेय उन्हीं को जाता है। पर जब मनु सर 'साहित्य अमृत' के कार्य से मुक्त हुए, तब हमारे आदरणीय संपादक जी ने 'साहित्य अमृत' की उत्कृष्ट सेवा के लिए उन्हें एक धन्यवाद-पत्र मेल किया। मनु सर ने उसके आभार में जो पत्र हमारे बॉस को भेजा, उसे पढ़कर मैं इतना भाव-विह्वल हुआ कि अपने आँसू न रोक सका। उन्होंने लिखा था, "प्रभात जी, 'साहित्य अमृत' में मेरे रहते हुए अगर कुछ अच्छा हुआ तो इसका श्रेय प्रेमपाल जी और मुकुल को जाता है। मैं तो आते हुए ठीक से इन दोनों का धन्यवाद भी नहीं कर पाया।" आज कहाँ देखने में आती है ऐसी प्रसिद्धि-पराङ्मुखता!

मनु सर को मैं अपने गुरु के रूप में देखता हूँ। वही मेरे सच्चे साहित्यिक गुरु हैं। लेखन के क्षेत्र में मुझे उँगली पकड़कर चलाया और फिर सरपट दौड़ना सिखाया। आज की भागम भाग वाली जिंदगी और प्रतियोगी वातावरण में किसको किसकी पड़ी है। सब अपने आपको व्यवस्थित करने, निखारने में लगे हैं, पर शरीरधारी कुछ पवित्र आत्माएँ ऐसी हैं, जो जमाने की बुराइयों से कोंसो दूर हैं, मनु सर उनमें से एक हैं। प्रसिद्ध संत कवि सुंदरदासजी ने यह दोहा शायद मनु जी के लिए ही कहा है, 'सद्गुरु सुधा समुद्र है, सुधामयी हैं नैन, नख-शिख सुधा स्वरूप पुनि, सुधा सु बरसत बैन।'

विद्वानों ने शिष्य शब्द को परिभाषित किया है, 'जो गुरु की शिक्षा-विद्या को सहस्र गुना आगे बढ़ाए, वही है शिष्य।' मैं आज भी मनु सर का शिष्य बनने की कोशिश कर रहा हूँ। उनके व्यक्तित्व-कृतित्व पर केंद्रित अंक निकाला जा रहा है। यह अत्यंत स्वागतयोग्य कदम है। यह होना ही चाहिए। लेखक-कवि तो प्रशंसा के पादप होते हैं, उन्हें सराहना-प्रशंसा के जल से जितना सींचा जाता है, वे उतने ही पुष्पित-पल्लवित होते हैं। इस पावन अवसर पर मैं प्रकाश मनु सर का वंदन-अभिनंदन करता हूँ। मेरी एक ही अभिलाषा है कि ईश्वर उन्हें स्वस्थ-नीरोग एवं कलम का धनी बनाए रखे।

प्रेमपाल शर्मा, 'साहित्य अमृत', 4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002
मो. : 9868525741

जिंदगी को मायने देने वाली मर्मस्पर्शी कहानियाँ

मंजुरानी जैन

कहानी जित्ते सर की मृत्यु की सूचना के साथ शुरू होती है। उसके बाद पूरी कथा फ्लैशबैक में चलती है। कहानी में जित्ते सर का विद्रोही रूप खूब उभरता है, और पढ़ाने को लेकर उनका जुनून भी, जो उनके छात्रों के दिलों पर गहरा असर डालता है। कहानी में जित्ते सर की जिंदगी की आखिरी दास्तान भी है, जब कैंसर से ग्रस्त होकर वे दिनोंदिन छीज रहे हैं। ऐसे क्षणों में भी वे भावुक होकर पुराने दिनों को याद करते हैं और छात्रों को रात-दिन अपना प्यार बाँटते हैं। जित्ते सर की मृत्यु का प्रसंग भी बड़ा कारुणिक है। अपने अंतिम दिनों में वे अपने जीवन पर केंद्रित उपन्यास लिख रहे थे, 'हीरेन बाबू की अजीब दास्तन', जिसे वे हर हाल में पूरा कर लेना चाहते थे और जैसा उन्होंने सोचा था, उसी रुग्णावस्था में वे अपना उपन्यास 'हीरेन बाबू की अजीब दास्तान' पूरा कर लेते हैं और उसे अपने प्यारे शिष्यों को समर्पित करते हैं, "मेरे शिष्य जो मेरा परिवार हैं। मेरा भविष्य भी वही हैं। मरने के बाद मैं उन्हीं की आँखों से दुनिया को देखूँगा। उन्हीं में जीवित रहूँगा।"

हिंदी के वरिष्ठ साहित्यकार प्रकाश मनु की कहानियों का अपना अलग रंग है। उनकी ज्यादातर कहानियाँ आत्मकथात्मक कहानियाँ हैं, जिनमें उनके सुख-दुख के जिए हुए लम्हें हैं। मनु जी ने स्वयं लिखा है कि उनकी ज्यादातर कहानियाँ आत्मकथा के अनलिखे पन्नों में से चुपके-चुपके निकलकर आई हैं। साथ ही वे स्वीकार करते हैं कि उनके सभी गुरुजनों ने किसी- न-किसी रूप में उनके अंदर के लेखक को जगाया है। इसी सिलसिले में उन्होंने अपने गुरु देवेंद्र सत्यार्थी जी की एक सीख को उद्धृत किया है, "याद रखो मनु, कहानी सिर्फ तुम ही नहीं लिखते, बल्कि कहानी भी तुम्हें लिखती है, इसीलिए कहानी लिखने के बाद तुम वही नहीं रहते, जो कहानी लिखने से पहले थे।"

आगे उन्होंने लिखा है कि उस कथन के बारे में वे जितना सोचते हैं, उतना ही उनके भीतर उजाला होता जाता है, "कोई बड़ी बात कही जाती है तो कैसे चीजों के नए-नए अर्थ खुलते हैं, यह मैंने सत्यार्थी जी के इस कथन के साथ-साथ बहुत बार भीतरी नदी की यात्राएँ करते हुए जाना।" और बेशक ये अंतर्यात्राएँ मनु जी के लिए बहुत बड़ी और गहन उपलब्धियाँ लेकर आईं।

मनु जी की प्रायः सभी कहानियों में सत्यार्थी जी का वह कथन साकार हुआ

दिखाई देता है। वास्तव में सत्यार्थी जी ने यह बात उनकी कहानी 'यात्रा' सुनकर ही कही थी। इसके अलावा मनु जी ने अपने संघर्ष के दिनों में मिले बड़े-से-बड़े साहित्यकारों के जीवन की मार्मिक घटनाओं को भी अपनी कई कहानियों में सुंदरता के साथ चित्रित किया है। इससे पता चलता है कि उनकी आँख जीवन में हर कहीं कहानियाँ तलाश लेती है।

प्रकाश मनु जी की ताजा कहानियों के संग्रह 'तुम याद आओगे लीलाराम' में सँजोई गई ज्यादातर कहानियाँ भी किसी-न-किसी रूप में मर्म को छू लेती हैं। ये कहानियाँ वंचित और असहाय लोगों को जीने के नए मायने देती हैं। मनु जी ने यह पुस्तक कुरुक्षेत्र यूनिवर्सिटी में शोध के दौरान मिले एक कर्मचारी मानसिंह को समर्पित की है। 'तुम याद आओगे लीलाराम' पुस्तक की शीर्षक कथा है। लेखक ने पुस्तक की भूमिका में इस कहानी को लिखे जाने की कहानी बताते हुए लिखा है, "मेरी आत्मकथा का यह भाग अभी सामने आया नहीं है, पर 'तुम याद आओगे लीलाराम' में कुरुक्षेत्र के दिनों के दारुण कष्टों की तस्वीर आप शायद बहुत विश्वसनीय रूप में देख पाएँगे।" यह कहानी उनके संघर्षपूर्ण दिनों की पूरी कथा कह देती है। शायद बहुत सारे लोगों को इसे पढ़कर अपने गर्दिश के दिनों की झलक भी मिल जाएगी।

मनु जी ने लीलाराम के रूप में मानसिंह के चरित्र को इतनी मार्मिकता के साथ इस कहानी में उतारा है कि उसके प्रति आदर और श्रद्धा का भाव उपजता है। स्वयं मनु जी के शब्द हैं, "मानसिंह ज्यादा पढ़ा-लिखा नहीं था, पर उसकी चेतना मुझे बहुतेरे कथित भद्रजनों और दिन-रात किताबें घोखने वाले पढ़ाकुओं से कहीं उजली नजर आई।" उन्होंने जैसे भावविभोर होकर लिखा है कि "उसकी स्मृति को तो मैं प्रणाम ही कर सकता हूँ। उसकी निकटता में मैंने जीवन के जो गहरे पाठ पढ़े, उन्हें आज भी भूला नहीं हूँ और शायद कभी भूलूँगा भी नहीं।"

संभवतः यही कारण है कि उन्होंने मानसिंह को यह पुस्तक समर्पित करके उसके प्रति कृतज्ञता ही प्रकट नहीं की, वरन् गर्दिश के दिनों में उससे निरंतर मिले प्यार, अपनत्व और दिलासा भरे शब्दों को अपनी यादों में हमेशा-हमेशा के लिए सँजोकर भी रख लिया है। जब यह कहानी छपी तो एक सहृदय पाठक ने तो इसे गुलेरी जी की बहुचर्चित कहानी 'उसने कहा था' की तरह हिंदी की महानतम कहानियों में से एक बताया। इससे पता चलता है कि यह कहानी पढ़ते हुए किस तरह पाठकों के दिल में उतर जाती है।

'आप कहाँ हैं जित्ते सर' भी मनु जी की बड़ी महत्त्वपूर्ण कहानी है। इस कहानी के नायक हैं एक संपन्न परिवार में जनमें विद्रोही, धुनी और खुद्दार प्राध्यापक जित्ते सर, जो अपने छात्रों को जी-जान से प्यार करते हैं और बड़ी मेहनत से पढ़ाते हैं। जित्ते सर में कहीं न कहीं मनु जी की आत्मछवि मौजूद है। उन्होंने पंजाब के मलोट शहर में बिताए दिनों को याद करते हुए लिखा है, "जो मुझे निकट से जानते हैं, वे जित्ते सर की चिंताओं और कशमकश में कहीं-न-कही मेरी व्यथा और बेचैनी को ढूँढ़ लेंगे।"

पाठकों को विकल कर देने वाली इस कहानी में मनु जी ने जित्ते सर के रूप में एक लेखक की त्रासदी को सामने रखा है। एक ईमानदार और सच्चा लेखक, जो किसी की शर्तों के सामने घुटने नहीं टेकता और अंत में अकेला रह जाता है। विपरीत परिस्थितियों में वह निरंतर टूटता है, इसके बावजूद उसका स्वाभिमान कभी झुकता नहीं है। यही कारण है कि उसके छात्र उसे बहुत प्यार करते हैं, जिनके दिलों मे उनकी यादों का दीया हमेशा जलता रहता है।

कहानी जित्ते सर की मृत्यु की सूचना के साथ शुरू होती है। उसके बाद पूरी कथा फ्लैशबैक में चलती है। कहानी में जित्ते सर का विद्रोही रूप खूब उभरता है और पढ़ाने को लेकर उनका जुनून भी, जो उनके छात्रों के दिलों पर गहरा असर डालता है। कहानी में जित्ते सर की जिंदगी की आखिरी दास्तान भी है, जब कैंसर से ग्रस्त होकर वे दिनोंदिन छीज रहे हैं। ऐसे क्षणों में भी वे भावुक होकर पुराने दिनों को याद करते हैं और छात्रों को रात-दिन अपना प्यार बाँटते हैं। जित्ते सर की मृत्यु का प्रसंग भी बड़ा कारुणिक है। अपने अंतिम दिनों में वे अपने जीवन पर केंद्रित उपन्यास लिख रहे थे, 'हीरेन बाबू की अजीब दास्तन', जिसे वे हर हाल में पूरा कर लेना चाहते थे और जैसा उन्होंने सोचा था, उसी रुग्णावस्था में वे अपना उपन्यास 'हीरेन बाबू की अजीब दास्तान' पूरा कर लेते हैं और उसे अपने प्यारे शिष्यों को समर्पित करते हैं, "मेरे शिष्य जो मेरा परिवार हैं। मेरा भविष्य भी वही हैं। मरने के बाद मैं उन्हीं की आँखों से दुनिया को देखूँगा। उन्हीं में जीवित रहूँगा।"

कहानी में कल्पना के साथ-साथ लेखक ने अपना अंतर्मन उड़ेलकर रख दिया है। जित्ते सर का स्वाभिमान अकेलेपन और कैंसर जैसी बीमारी से जूझते हुए भी नहीं टूटता। इससे भावुकता के साथ-साथ उनके व्यक्तित्व की दृढ़ता भी पता चलती है। साथ ही इस कहानी में पंजाब के आतंकवाद की भी चर्चा है, जिसने लोगों के दिलों को बाँटने की कोशिश की थी। धर्म को लेकर जित्ते सर का यह कथन भी दिल में उतर जाता है कि "धर्म हमारे निजी जीवन और आचरण तक ही सीमित रहे तो अच्छा है। सार्वजनिक जीवन में उसका जरूरत से ज्यादा प्रदर्शन उसे भ्रष्ट करता है।"

इससे पता चलता है कि जित्ते सर की सोच कितनी बड़ी है। शायद इसीलिए जित्ते सर जाकर भी कहीं गए नहीं, बल्कि अपने छात्रों के दिलों में समा गए हैं, जो उन्हें कभी नहीं भूल पाते।

मनु जी की इधर लिखी गई प्रायः सभी कहानियाँ भावनात्मक हैं, यथार्थपूर्ण भी। चाहे 'लावनी की आँखें' और 'आखर संगीत' हो, या 'जसोदा बाबू', 'माटी की मूरत', 'भटकती जिंदगी का नाटक', 'घोष बाबू का स्कूल' और 'वह रद्दीवाला लड़का' हो। इनमें 'जसोदा बाबू' कहानी एकदम अलग है। इस कहानी में मनु जी ने एक अनाथ बच्चे जस्सू के पढ़ाई के प्रति आकर्षण का बड़ा ही भावनात्मक चित्रण किया है। जस्सू की पढ़ने की लालसा, उसकी रुचि व योग्यता को पहचानने वाले गुरु अयोध्यानाथ जी उसे पढ़ा-लिखाकर 'जस्सू' से 'जसोदा बाबू' बना देते हैं।

एक दिन जसोदा बाबू को कला पर व्याख्यान देने के लिए पेरिस बुलाया जाता है। वे पेरिस में बहुत सी ख्याति बटोरकर और मधुर यादें लेकर वापस लौटते हैं। वापस जानकीपुर आकर वे अपने गुरु को यह बताना चाहते हैं कि विदेशों में भी भारतीय कला-चिंतन का कितना महत्त्व है। पर यहाँ आकर उन्हें पता चलता है कि मास्टर अयोध्या सिंह जी अब नहीं रहे। वे उनके लिए एक छोटा-सा पत्र छोड़ गए है, जिसमें लिखा है, "प्रिय जस्सू, जानकी बाबू के अधूरे काम को जितना आगे मैं बढ़ा सका, मैंने किया। अब यह जिम्मा तुमपर छोड़कर जा रहा हूँ।" बस, जसोदा बाबू को अपने जीवन की मंजिल मिल जाती है। वे उन्हीं के रास्ते पर चलकर जानकीपुर गाँव में शिक्षा का अलख जगाते हैं।

ऐसे ही 'लावनी की आँखें' भी बड़ी मार्मिक कहानी है। यह एक दिव्यांग लड़की लावनी की कहानी है, जो देख नहीं सकती। लावनी के मन में निरंतर आशा और उम्मीद का दीप जलाने वाली माँ का चरित्र भी बहुत ऊँचा है। वह लावनी की हालत देखकर दुखी है, पर फिर भी लगातार उसे धीरज बँधाती है। माँ की ही प्रेरणा से लावनी संगीत के महान गुरु राघवाचार्य जी के पास पहुँचती है, जो गाँधी जी की प्रेरणा से अपनी ऊँची नौकरी और सुविधाएँ छोड़कर, अब अपने आश्रम में बच्चों को संगीत सिखाते हैं।

लावनी का सुरीला गीत सुनकर राघवाचार्य जी इतने भाव-विभोर हो जाते हैं कि उसी दिन उनके स्कूल में लावनी की संगीत-शिक्षा शुरू हो जाती है। धीरे-धीरे उसके गाने की आवाज गली-मुहल्लों से होकर राघवाचार्य जी द्वारा गाँधी जी के सम्मान में आयोजित बेलापुर की सभा तक पहुँच जाती है। उसके सुरीले गायन से मुग्ध होकर गाँधी जी भी उसे आशीर्वाद देते हैं। उसके बाद दूर-दूर तक उसके गाने की गूँज सुनाई देने लगती है और वह एक ख्यातिप्राप्त गायिका बन जाती है। लावनी के चरित्र में इतनी गहराई और विकलता है कि कहानी पढ़ लेने के बाद भी देर तक पाठकों की आँखों के आगे चलचित्र की तरह घूमती रहती है।

'आखर संगीत' भी कुछ ऐसी ही कहानी है, हालाँकि इसका परिवेश एकदम अलग है। कहानी गाँव के एक गरीब बच्चे से और उसकी सीधी-सादी माँ की है, जिसके चरित्र की दृढ़ता मन मोह लेती है। सरू स्कूल के मास्टर जी की पिटाई से डरकर पाठशाला छोड़ देता है, पर माँ को यह मंजूर नहीं है। मेरा बेटा अनपढ़-उजड्ड रह जाएगा, सोचकर वह दुखी हो जाती है। आखिर गाँव की थोड़ा-बहुत पढ़ी हुई माँ उसे स्वयं अक्षर ज्ञान देने का निश्चय कर लेती है। खाना बनाने के बाद वह चूल्हे की ठंडी राख में उँगलियों से क, ख, ग और गिनती लिखकर उसे बड़े प्यार से पढ़ाती है। और बच्चे के मन में सच ही पढ़ने की लौ पैदा हो जाती है।

इस कहानी में बिना कहे मनु जी ने हमारी शिक्षा व्यवस्था के बारे में बहुत कुछ कह दिया है। प्यार-दुलार से बच्चे को पढ़ाने वाली गाँव की एक सीधी-सरल माँ का कद हमारी हृदयहीन शिक्षा व्यवस्था से ज्यादा ऊँचा नजर आता है।

ऐसे ही 'मिटटी की मूरत' कहानी के कलागुरु अवनी बाबू का चरित्र भी भुलाए नहीं भूलता। अवनी बाबू एक बड़े कलाकार हैं, जो कला शिक्षण की अपनी प्रसिद्ध संस्था कलाभवन में रहते हैं। रोज सुबह वे घूमने जाते हैं। सुबह-सुबह प्रकृति के जिन सुमधुर दृश्यों को वे देखते हैं, उन्हें अपने कैनवास पर साकार रूप देते हैं। एक दिन घूमते हुए अपने ख्यालों में डूबे अवनी बाबू बहुत दूर निकल आते हैं, मेघना गाँव की ओर। वहाँ का सजीव चित्र उनकी आँखों में बस जाता है। वे सुबह के उस चित्र को अपने लैंडस्केप में उतारने का निश्चय करते हैं। फिर वे हर घर की सज्जा को बाहर रुक-रुक देखने लगते हैं। एक घर के द्वार पर सजी पशु-पक्षियों की तरह-तरह के रंगों से भरी सजीव आकृतियाँ देखकर वे विभोर हो जाते हैं।

तभी उन्हें सड़क के किनारे एक साँवला-सा, सात-आठ बरस का बच्चा मिट्टी की सुगढ़ मूर्ति बनाते हुए दिखाई देता है। उसे अपने साथ ले जाकर वे अपने स्नेह के स्पर्श से गढ़ते हैं, तो कन्हाई की प्रतिभा निखर उठती है। दुनिया भर में उसकी कला की धूम मच जाती है। उसके लेख विभिन्न आर्ट जर्नल्स में छपते हैं। हालाँकि कन्हाई में जरा भी अभिमान नहीं है। वह अपनी कलाकृतियों को अवनी बाबू के चरणों में समर्पित करके कहता है, "गुरुदेव, अभी तो मेरी यात्रा शुरू हुई है। आपके आशीर्वाद से मुझे बहुत बड़ा कलाकार बनना है। मैं चाहता हूँ मेरी कला में सारी धरती के लोगों के सुख-दुख और खुशियाँ समा जाएँ।"

कहानी पढ़ते हुए एक कलाकार के रूप में अवनी बाबू के धुनी व्यक्तित्व और गाँव के बच्चे कन्हाई की सरलता दोनों की मन पर गहरी छाप पड़ती है।

सच तो यह है कि एक संवेदनशील कथाकार के रूप में मनु जी अपने आसपास के परिवेश के प्रति बहुत सजग हैं। जहाँ भी वे जाते हैं, उनके पात्र मानो उनकी बाट जोहते रहते हैं। फिर वे कहीं-न-कहीं उनके दिल में पैठ जाते हैं और बाद में उनकी कहानियों में रच-बसकर सामने आते हैं। 'घोष बाबू का स्कूल' कहानी का घर-घर जाकर कूड़ा बटोरने वाला गरीब मिल्दू, 'वह रद्दीवाला लड़का' कहानी का गुपलू और गिरीश बाबू के बगीचे से फूल चुराकर ले जानेवाला सहमा-सहमा सा दुबला-पतला बीरू, ये सभी अभावग्रस्त बच्चे हैं, जिन्हें मनु जी ने अपनी कहानियों का किरदार बनाया है, ताकि मैले कपड़ों वाले इन दीन-दरिद्र बच्चों के मन की उज्ज्वलता सबके सामने आ जाए।

ये सभी अलग-अलग परिवेश में जी रहे गरीब बच्चे हैं, जो अपने और परिवार की गुजर-बसर के लिए छोटे-मोटे काम करने के लिए मजबूर हैं। मनु जी का सपना है कि ये भी स्कूल जाकर पढ़ें-लिखें और आगे निकलें। उनकी कहानियों में ऐसे गरीब और असहाय बच्चों को जीवन में कोई न कोई ऐसा शख्स मिला, जिसने उनके जीवन को गढ़ने का काम किया। इस लिहाज से मनु जी की ये कहानियाँ पाठकों के सामने आदर्श रखती हैं कि अगर पढ़े-लिखे संपन्न लोग ऐसे बच्चों को सहारा दें, तो कई जिंदगियाँ सुधर सकती हैं।

चलिए, पहले 'घोष बाबू का स्कूल' की पहले बात करते हैं। इस कहानी का नायक मिल्दू घर-घर जाकर कूड़ा इकट्ठा करता है। एक दिन घोष बाबू उससे बड़े प्यार से बात करते हैं और उसके मन में पढ़ने-लिखने का सपना जगाते हैं। मिल्दू खुश है, हैरान भी। घोष बाबू उसे चित्रों वाली रंग-बिरंगी किताबें देकर अपने अंदाज में पढ़ाने लगते हैं। मिल्दू को पढ़ाई में मजा आने लगता है। फिर एक दिन इतवार को घोष बाबू उसके घर पहुँच जाते हैं और बस्ती के सभी बच्चों को इकट्ठा करके कहानियाँ सुनाते हैं, खेल-खेल में पढ़ाते भी हैं।

कुछ अरसे बाद घोष बाबू गरीब बच्चों के लिए एक स्कूल खोलते हैं, जिसमें पढ़ाने का जिम्मा मिल्दू ही सँभालता है। 'घोष बाबू का स्कूल' चल निकलता है, जिसमें पढ़ने वाले बच्चे ज्ञान के हरकारे बनकर, दीप से दीप जलाते हैं। अंत में घोष बाबू अपना मकान और पूरी संपत्ति मिल्दू के नाम कर देते हैं, ताकि वह उनके इस सपने को साकार करे कि अब बस्ती का कोई बच्चा सिर्फ कूड़ा बीनने के लिए अपनी जिंदगी बर्बाद नहीं करेगा।

'बीरू के फूल खिल उठे हैं' भी एक बेहद गरीब लड़के बीरू की बड़ी मार्मिक कहानी है। गिरीश बाबू बहुत दिनों से देख रहे थे कि कोई सुबह-सुबह उनके बगीचे से फूल चुराकर ले जाता है। फिर एक दिन वह पकड़ में आ गया। एक दस-ग्यारह साल का दुबला-पतला, मरियल-सा लड़का। वह उनके सामने खड़ा हकलाता हुआ गिड़गिड़ाकर माफी माँग रहा था, "मारना नहीं बाबू जी, मारना नहीं। कल से मैं बिल्कुल नहीं आऊँगा। मैं...मैं...तो अपने दादा जी के लिए फूल...!" उस डरे, सहमे हुए लड़के बीरू की हालत देखकर गिरीश बाबू का सारा गुस्सा काफूर हो जाता है। वे प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरकर उसे आश्वस्त करते हैं। फिर बीरू जब काँपते होठों से अपने घर की दास्तान सुनाता है, तो गिरीश बाबू के अंदर एक सन्नाटा-सा छा जाता है। वे उसे बगीचे से फूल तोड़ने की इजाज़त दे देते हैं, जिससे उसकी माँ और दादी जी फूलमालाएँ बना सकें और दादा जी उन फूलमालाओं को मंदिर के पास बेचकर घर का गुजारा कर सकें।

पर कहानी यहीं खत्म नहीं होती, बल्कि यहाँ से शुरू होती है। वनस्पति विज्ञान के प्रोफेसर गिरीश बाबू अब बीरू को अपने घर बुलाकर पढ़ाना शुरू करते हैं। बाद में गिरीश बाबू के घर में फूलों की चोरी करने वाला यही बीरू फूलों का शोधकर्ता बनकर विज्ञान की दुनिया में अपनी अलग जगह बनाता है। कहानी बड़ी स्वाभाविक गति से चलती है और बीरू का चरित्र क्रमशः निखरता जाता है। एक सहज संवेदनशील इनसान के रूप में गिरीश बाबू भी पाठकों को भूलते नहीं हैं।

इसी तरह 'वह रद्दीवाला लड़का' कहानी का गुपलू भी अपनी नायाब धुन से पाठकों के दिल में अपनी छाप छोड़ता है। तीसरी जमात पढ़ा हुआ गुपलू यूनिवर्सिटी के प्रोफेसरों की कॉलोनी से रद्दी बटोरते-बटोरते, अपने मतलब की सामग्री निकाल लेता हैं और पढ़ता है। और एक दिन अंतरिक्ष किरणों पर शोध करने वाले प्रोफेसर कीर्ति नारायण की नजरों में आ जाता है। यहीं से

उसकी कहानी मोड़ लेती है और आखिर उसकी छिपी हुई प्रतिभा सामने आ जाती है। बहुत अधिक पढ़ा-लिखा न होने पर भी वह ऐसे आश्चर्यजनक काम कर दिखाता है कि बड़े-बड़े वैज्ञानिक भी उसकी विलक्षण सूझ की तारीफ किए बिना नहीं रहते।

यह पाठकों के दिल में एक उम्मीद जगाने वाली कहानी है कि अगर किसी के भीतर प्रतिभा की चिनगारी है तो कोई उसे रोक नहीं सकता। वह कभी न कभी, किसी न किसी रूप में सामने आती ही है और तब हर कोई अवाक् रह जाता है।

मनु जी की इन सबसे काफी अलग कहानी है, 'भटकती जिंदगी का नाटक'। यह एक जाने-माने लेखक और समाज सुधारक वसंतदेव जी की कहानी है। कालीपुर में उनकी सम्मान-सभा में तिल रखने भर तक की जगह नहीं है। अंत में स्वयं वसंतदेव जी से आग्रह किया गया कि वे भी कुछ शब्द कहें। और तब वे अपनी सच्ची जीवन कहानी सुनाना शुरू कर देते हैं। बचपन के ऊधमी और आवारा वसंत के वसंतदेव बनने की बड़ी ही मार्मिक कहानी। अपने इकलौते बेटे वसंत की खराब आदतों से दुखी और विकल पिता निराश होकर चल बसे और फिर माँ की हालत भी बिगड़ने लगी। पर फिर एक दिन माँ के डबडबाते आँसुओं ने उसकी पूरी जिंदगी को बदलकर रख दिया था।

यही वसंत बाद में पढ़-लिखकर साहित्यकार वसंतदेव बना। उनकी रचनाएँ पढ़कर सारी दुनिया आदर करती है। पर उन्हें वसंतदेव बनाने वाली तो उनकी माँ है, जिन्हें वे कभी भूल नहीं पाए। कहानी में शुरू से लेकर अंत तक वसंतदेव की शख्सियत और कामों को मनु जी ने जिस तरह शब्द-चित्रों में बाँधा है, वह अद्‌भुत है।

इसी तरह 'लुंबा' बिल्कुल अलग तरह की कहानी है। एक दिन सेठ बावनदास जंगल से गुजरते हुए बनमानुष सरीखे लुंबा को पकड़कर घर ले आते हैं और एक पिंजरे में बंद कर देते हैं। वे उसे एक सर्कस वाले को बेचकर पैसा कमाने के चक्कर में हैं। इसके लिए सौदा भी हो जाता है। पर उनके बेटे शीलू का मन यह देखकर विद्रोह कर उठता है। उसकी लुंबा से दोस्ती हो गई है और उसका कष्ट वह नहीं देख सकता। आजादी पाने की उसकी ललक को वह महसूस करता है। इसलिए एक दिन चुपके से उसने पिंजरे का दरवाजा खोलकर उसे आजाद कर दिया, ताकि वह फिर से जंगल में चला जाए। कहानी में शीलू के निर्मल मन का बड़ा सुंदर चित्र उभरता है। वह खुशी-खुशी पिता से मार खा लेता है, पर अपने काम का उसे जरा भी अफसोस नहीं है।

'टैक्सी ड्राइवर रामलाल दुआ की सच्ची कहानी' मनु जी की लंबी कहानी है, जिसे पढ़ते हुए मन रामलाल दुआ की अंतर्वेदना के साथ बहने लगता है। यह एक टैक्सी ड्राइवर की दुख भरी कहानी है, जो बातों-बातों में अनायास ही पाठकों के आगे आ जाती है। मनु जी अपनी एक यात्रा में टैक्सी ड्राइवर रामलाल दुआ से बातें करते-करते भावनात्मक रूप से उससे इतना जुड़ जाते हैं

कि उससे उनका मित्रता का रिश्ता कायम हो जाता है। उनकी सहानुभूति पाकर न जाने कब टैक्सी ड्राइवर रामलाल दुआ का दुख उमड़ता है और वह अपने जीवन की तकलीफ भरी कहानी सुनाने लगता है। वह अपनी माँ से बेहद प्रेम करता है, लेकिन पैसे को हरदम छाती से चिपकाकर रखने वाले पिता की हृदयहीनता से उसे बुरी तरह ठेस लगती है। आखिर उसे अपना घर छोड़कर दर-दर की ठोकरें खानी पड़ती हैं। फिर परिस्थितियाँ कैसे उसे टैक्सी ड्राइवर बना देती हैं, यह भी अनोखी कथा है।

मनु जी का कहानी कहने का अंदाज कुछ ऐसा है कि यह लंबी भावनात्मक कहानी अंत तक पाठकों को बाँधे रखती है। कहानी का अंत भी बहुत स्वाभाविक है।

कहना न होगा कि प्रकाश मनु जी की इधर लिखी गई कहानियाँ जीवन के काफी नजदीक हैं। ये मर्म को छूने वाली कहानियाँ हैं। कहानी के हर पहलू को सुंदरता के साथ विस्तार देने की उनकी अपनी ही शैली है, जो बेहद आकर्षक है। सबकुछ मानो आँखों के सामने घटता दिखाई देता है। अनौपचारिक लहजे में लिखी गई ये कहानियाँ आशा और उम्मीद की कहानियाँ हैं, जिनमें एक नई दुनिया का सपना है। ज्यादातर कहानियाँ काफी लंबी हैं, लेकिन बीच-बीच में आने वाले सहज संवाद उन्हें बेहद दिलचस्प बना देते हैं। साथ ही इनमें किस्सागोई का आनंद है। कहानी और जिंदगी के फासलों को पाटने वाली ये कहानियाँ आसानी से पाठक के दिल में गहरे पैठ जाती हैं।

मनु जी की किस्सागोई वाली शैली की एक खूबी यह भी है कि वे अनायास ही अपनी जिंदगी में घटित हुए प्रसंगों और उनसे जुड़े पात्रों को अपनी कहानियों में बड़ी सुंदरता से पिरो देते हैं। यही कारण है कि इन कहानियों में जीवन के बहुत रंग हैं, खासा उतार-चढ़ाव और रोचकता भी। बेशक ये कहानियाँ पाठकों को एक नए सपने से जोड़ेंगी और उन्हें जीने के मायने देंगी।

मंजुरानी जैन, 502 राधाकृष्ण कुंज, प्लाट नं. - 377-ए, 9वीं ऑफ क्रॉस रोड, निकट अहोबिला मट, चेंबूर, मुंबई-400071 (महाराष्ट्र), 10, नरूल्ला बिल्डिंग, 21वीं रोड, चेंबूर (ईस्ट), मुंबई-400071
मो. : 09869686430, ई-मेल : manjuranijain@yahoo.com

✧ ✧ ✧

प्रकाश मनु की कविताएँ : संभावनाओं का नया आकाश

सुरेश्वर त्रिपाठी

संबोधन की शैली में लिखी गई इस तरह की अंतरंग कविताओं में प्रकाश मनु एक व्यक्ति को याद करने के बहाने पूरे समाज को अपना संदेश दे जाते हैं। उनकी कविताओं में एक ओर किसी विशेष व्यक्ति के लिए सम्मान की भावना है तो दूसरी ओर इस बात का रोष भी है कि ऐसे योग्य और समर्थ व्यक्ति को समाज से जो मिलना चाहिए था, वह मिल नहीं पाता। ऐसा नहीं कि ये गिले-शिकवे केवल कुछ विशेष लोगों से ही हैं, जिनकी कही गई बातों पर वे तिलमिलाते हैं, बल्कि उनकी कविताओं में यह आक्रोश इस बात भी दिखाई देता है कि हमारे समाज में एक साधारण मनुष्य को स्वयं को जीवित रखने के लिए कितना संघर्ष करना पड़ता है। यह उनके लिए बहुत परेशान कर देने वाली बात है।

हिंदी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार प्रकाश मनु ने सभी विधाओं में बहुत लिखा है, बल्कि सच कहा जाए तो इतना अधिक लिखा है कि साधारण पाठक ही नहीं, बड़े-बड़े साहित्यकारों को भी उनका कृतित्व और सृजन सामर्थ्य देखकर चकित रह जाना पड़ता है। उनकी लगभग दो सौ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, संस्मरण, आत्मकथा, आलोचना के अलावा बच्चों के लिए उनका विपुल लेखन भी शामिल हैं। उनके कविता-संग्रह 'छूटता हुआ घर' और 'एक और प्रार्थना' बहुत चर्चित हो चुके हैं। इनमें 'छूटता हुआ घर' के लिए मनु जी को प्रथम गिरिजा कुमार माथुर स्मृति पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।

एक लंबे अंतराल के बाद प्रकाश मनु जी की कविताओं का ताजा संग्रह आया है, 'चुनी हुई कविताएँ'। लिटिल बर्ड पब्लिकेशन द्वारा प्रकाशित 168 पृष्ठों के इस कविता-संग्रह में उनकी कुल 44 कविताएँ संगृहीत हैं। लेकिन इस लंबे अंतराल का कारण? प्रकाश मनु स्वयं कहते हैं, "पच्चीस वर्षों के लंबे अंतराल के बाद मेरा नया कविता-संकलन 'चुनी हुई कविताएँ' सामने आ रहा है। मेरे लिए यह कम रोमांच की स्थिति नहीं है। कुछ-कुछ भावुक कर देने वाली...!" पाठकों के मन में एक प्रश्न अचानक उभरता है कि कविताओं से यह दूरी क्यों? इतना लंबा अंतराल क्यों? प्रकाश मनु

कहते हैं, "पर कविता...? बेशक 'एक और प्रार्थना' के बाद मेरा कोई और कविता-संकलन सामने नहीं आया, पर कविताएँ तो निरंतर लिखी ही जाती रहीं। आखिर कविता के जरिए ही मैंने सबसे पहले साहित्य की जमीन को टटोला था।"

जो भी हो, उनके इस नए कविता-संग्रह 'चुनी हुई कविताएँ' को पढ़ना एक तरह का सुख तो देता ही है, पर साथ ही ये कविताएँ मन को बेचैन भी कर देती हैं। इस लिहाज से उनकी कविता 'पुरस्कार पाने वाले एक युवा कवि के लिए' की कुछ पंक्तियाँ देखिए -

वैसे सुना है, काफी व्यस्त रहते हो
सुना है, राजधानी में खासी धमक है तुम्हारी
साहित्यिक जगत के दादा हो माने हुए
सुना है, अकादमी भवन में तुम्हारी कविता पर
बैठकें होती हैं, बहसें होती हैं
कोई पुरस्कार का चक्कर है...!

इस कविता में अखिलेश भादुड़ी के बहाने प्रकाश मनु साहित्य जगत की तमाम विसंगतियों को हमारे सामने लाते हैं और जुगाड़ू साहित्यकारों की नीयत पर जबरदस्त प्रहार करते हैं। एक सचेत साहित्यकार होते के नाते, मनु जी को साहित्य जगत के अँधेरे कोनों और सड़ाँध के बारे में अच्छी तरह पता है, पर वे जिस साहस के साथ इस कविता में पुरस्कार लोलुप लेखकों के गिरोह पर चोट करते हैं, वैसा किसी अन्य साहित्यकार की रचना में देखने को कम ही मिलता है।

इस कविता में वे साहित्य में व्याप्त 'वाद' के गड़बड़झाले की बखिया उधेड़ देते हैं, जिसने बहुतों को 'सुविधा की मौजमस्तियाँ' प्रदान कर दी हैं -

दरअसल वाद तो सिर्फ वाद होते हैं
ये सब तो बिल हैं न, सुविधा की मौज-मस्तियाँ
सफल आदमी इन्हें चिपकाता है, उतारता है
फिर चिपकाता है ठहर-ठहरकर
असल बात तो यही है न कि
सारे सफलतावादी एक ही राह जाते हैं
कितनी ही विरोधी क्यों न हों यात्राएँ
आखिर वे पहुँचेंगे एक ही धुर!

इस कविता को पढ़कर लगता है, जैसे कवि अपने सबल शब्दों के हथियार से साहित्यिक विसंगतियों पर निरंतर चोट करता हुआ, ललकार रहा है।

फिर एक बात पर और ध्यान जाए बिना नहीं रहता। वह यह कि मनु जी की कई कविताएँ किसी न किसी 'के लिए' हैं। इनमें उनके प्रियतर नायक हैं तो साथ ही कुछ ऐसे लोग भी, जिन्हें वे अपने शब्दों से घेरते हुए, सामने लाने का जतन करते हैं। इस संग्रह में ऐसी छह कविताएँ हैं - 'एक

चिट्ठी बेटी के लिए', 'पुरस्कार पाने वाले एक युवा कवि के लिए', 'मुक्तिबोध के लिए', 'सु. के लिए एक कविता', 'अमृता प्रीतम के लिए' और 'दोस्त हरिपाल त्यागी के लिए'। ये सभी कविताएँ किसी न किसी के लिए हैं, जिनमें उन नायकों के जीवन चरित ही नहीं, उनके द्वारा कही गई बातें भी हैं, जिन्हें बड़े मार्मिक ढंग से याद किया गया है।

एक कविता में मनु जी अपने मित्र प्रसिद्ध चित्रकार हरिपाल त्यागी का स्मरण करते हैं -

यह तुम नहीं -
तुम्हारे चित्रों की लकीरें कहती हैं।
पूरी जिंदगी के सीखे हुए दाँव
लड़ाइयाँ, मोरचे
हर मोरचे पर हिल-मिलकर संगीन की तरह
तन जाती हैं तुम्हारी लकीरें
बड़ी ही कड़ियल, बड़ी पुरजोर...
तुम्हारे रंगों की अजब-सी अनबन
से उबलकर
निकलता है सत्य,
हवा में कंपन भर जाता है!

संबोधन की शैली में लिखी गई इस तरह की अंतरंग कविताओं में प्रकाश मनु एक व्यक्ति को याद करने के बहाने पूरे समाज को अपना संदेश दे जाते हैं। उनकी कविताओं में एक ओर किसी विशेष व्यक्ति के लिए सम्मान की भावना है तो दूसरी ओर इस बात का रोष भी है कि ऐसे योग्य और समर्थ व्यक्ति को समाज से जो मिलना चाहिए था, वह मिल नहीं पाता। ऐसा नहीं कि ये गिले-शिकवे केवल कुछ विशेष लोगों से ही हैं, जिनकी कही गई बातों पर वे तिलमिलाते हैं, बल्कि उनकी कविताओं में यह आक्रोश, इस बात में भी दिखाई देता है कि हमारे समाज में एक साधारण मनुष्य को स्वयं को जीवित रखने के लिए कितना संघर्ष करना पड़ता है। यह उनके लिए बहुत परेशान कर देने वाली बात है।

'मुक्तिबोध के लिए' कविता में उनकी पूरी जीवन-त्रासदी है, और यहाँ प्रकाश मनु के शब्द किसी धारदार चाकू की तरह तीखे लगते हैं -

और अब तक - तुम्हारे मरने के
बाद भी उन्होंने बहुत इंतजार किया है
कि तुम ठीक-ठिकाने आ सको
ठीक-ठिकाने यानी उनकी पार्टीबाजी
में फिट आ सको प्रचार के लिए
कुछ नाटकीय पंक्तियों के साथ

उलटे लटकाए जा सको...!

एक तरफ वे देवेंद्र सत्यार्थी, मुक्तिबोध, हरिपाल त्यागी जैसे लोगों पर कविताएँ लिखते हैं तो दूसरी ओर उनका ध्यान अत्यंत साधारण लोगों पर भी जाता है। 'सीता की रसोई' में आम जीवन की सीता की बात कहते हैं -

पास ही दो मुड़ी-तुड़ी थालियाँ
एल्यूमीनियम की दो कटोरियाँ दो गिलास
एक पिचके हुए पीपे में पानी
जिसमें गिरा दिए दुष्ट हवा ने नीम के पत्ते दो-चार,
पास ही एक मैली गठरिया में
कपड़े दो-चार
लकड़ी के एक रेढ़े से खेलती एक अधनंगी लड़की
मैली कथरी पर लेटा एक दुबला कमजोर बच्चा
और इस सबमें जीवन भरती
खदबदा रही थी दाल?

इस कविता की पंक्तियों में जो दाल खदबदाती है, उसे पढ़कर हमारे मन में तरह-तरह के प्रश्न कौंधते हैं और हमारे दिमाग में भी बहुत कुछ खदबदाने लगता है।

यहाँ पाठक के मन में एक प्रश्न यह भी उठता है कि आखिर कौन-सी बात प्रकाश मनु को कविता लिखने के लिए प्रेरित करती है। इस ओर इशारा करते हुए, वे 'लिखूँ?' शीर्षक कविता में कहते हैं -

कविता लिखूँ, न लिखूँ?
कविता के अलावा और भी हैं बहुत काम
और भी हैं बहुत काम परिणाम कुहराम
उस दुनिया में जिससे जीता हूँ
जिसमें नहीं है कविता बाकी सब है।

वे कविता को जन-जीवन से जोड़ते हैं। उनका मानना है कि कविता से जरूरी बहुत से काम हैं, आदमी को जीवित रहने के लिए। इसीलिए वे जो कविताएँ लिखते हैं, उनमें बच्चे हैं, बच्चियाँ हैं, बेटी है, पत्नी है, औरत है, घर है, रसोई है, पुत्र है, छूटता हुआ घर भी है...आदि आदि। मनु जी अपने पात्रों के माध्यम से कविताओं में समाज से जुड़ी बड़ी-बड़ी बातों की ओर ध्यान खींचने में सफल होते हैं। 'एक बच्ची की पापा से दो बातें' में बेटी अपने पापा से कहती है -

पापा, सब रावणों की क्या मूँछें होती हैं
ऐसी-ऐसी टेढ़ी-बाँकी,

रावण बड़े गंदे होते हैं न पापा?
तभी तो आप बोल रहे थे उस रोज मम्मी से
बॉस साला रावण की औलाद है....
रावणों को कौन बनाता है पापा? कैसी होती है
रावण की औलाद?

कवि इस कविता में रावण के बहाने कई तरह के संदेश देना चाहता है और कविता एक प्रश्न उठाकर हमें बहुत कुछ सोचने को बाध्य करती है। बेटी को जब पता चलता है कि पापा उसके सवाल पूछने से उदास हो जाते हैं तो वह उन्हें दिलासा भी देती है -

अरे पापा, आप तो उदास हो गए,
बच्चों को पूछने नहीं चाहिए न ऐसे-ऐसे सवाल?
आपकी आँखों में आँसू!
लाओ, मैं पोंछ देती हूँ पापा।

यह गौर करने की बात है कि जीवन की बहुत बड़ी और गंभीर बातों को एक मासूमियत के साथ प्रस्तुत करने से भी कविता धारदार बन जाती है। लेकिन पापा भी तो तरह-तरह के प्रश्न पूछने वाली अपनी बेटी को बहुत चाहते हैं। इसलिए बेटी के घर में न रहने पर वे उसकी बहुत कमी महसूस करते हैं -

तेरे पीछे यह खाली-खाली कमरा
बिल्कुल भी अच्छा नहीं लगता बेटी
कोने में औंधा पड़ा तेरा भालू जरूर
आँसू बहाता होगा चुपके-चुपके
और हरी, नीली चोटी वाली गुड़िया तो मुझे
पक्का यकीन है
चारपाई तले कबाड़ में फँसी
दाँत किटकिटाती होगी मुझ पर।

एक परिवार के सदस्यों के आपसी संबंधों की छोटी-छोटी बातें जब कविता में आती हैं तो दूर तक संदेश देकर जाती है। प्रकाश मनु जब भी किसी आत्मीय संबंध पर कविता लिखते हैं तो भावनाओं में बहते दिखाई देते हैं। 'सु. के लिए एक कविता' (यहाँ सु. का तात्पर्य संभवतः उनकी पत्नी सुनीता जी से है) में वे कहते हैं -

इसीलिए पुनीते-सीते
ओ गैरिक वस्त्रे!
जगदंबा सी ओ पापहरा धरित्री
मुझ अभागे सत्यवान की सावित्री
पसंद हो

बहुत-बहुत पसंद हो तुम मुझे
रची हो रोम-रोम में
अंतर में
श्वास की तरह
हवा, पानी और आकाश की तरह।
सामने चाहे कुछ न कहूँ
चुप-चुप दहूँ!
पर अकेले में चुपचाप कर लिया करता हूँ नमन मैं...!

कोई किंतु-परंतु नहीं, संबंधों की जो गहराई है, उसे उसी रूप में कविता में व्यक्त कर देते हैं। जब वे अपने पिता पर कविता लिखते हैं तो उन्हें एक बूढ़े बरगद में अपने पिता की छवि दिखाई देती है। 'बूढ़ा बरगद और पिता का चेहरा' कविता इस लिहाज से ध्यान खींचती है -

उलझी अरूप डालों, घने पत्तों वाले बरगद का
धूपलिया चेहरा
अकसर मेरे लिए पिता का चेहरा बन गया है...।

एक अन्य कविता 'क्षमा-याचना' में वे अपने पिता से क्षमा माँगते हैं। वे बहुत व्यथित और आकुल होकर कहते हैं -

माफ करना
पिता
तुम्हारी शुभकामनाओं को साकार
मैं कभी नही कर सका
हर बार मँझधार में डूब गिरूँगा मैं
तुम्हारी उम्मीद के खिलाफ
वही मुझ बे-पीढ़ीदार की नियति है
बहुत छोटा, बहुत मामूली रहकर
तुम्हारे खिलाफ
खड़ा रहने को अभिशप्त हूँ
पिता...!

हालाँकि इस कविता में वे घोर निराशा में उलझे नजर आते हैं। उन्होंने केवल अपने पिता से ही माफी नहीं माँगी, बल्कि वे दोस्तों, पत्नी और साहित्यिकों से भी माफी माँगते हैं। उन्हें लगता है कि वे ऐसा कोई काम नहीं कर सके, जिससे उनके पिता, उनकी पत्नी या उनके दोस्तों को गर्व हो सके। लेकिन भीतर की गहरी व्यथा के साथ, वे साहित्यिकों से यह जरूर कहते हैं -

मुझे अ-कवि ब-कवि
बीट या चीट कवि - कुछ भी
कहकर इतिहास से नाम उड़ा देना
साहित्यिको,
और माफ करना
मेरी मनहूस अड़ंगेबाजियों, सख्त बहसों
संशयों के लिए
मा...फ...करना...!

कविता पढ़कर लगता है कि साहित्य जगत में अपने कवि-कर्म की घोर उपेक्षा या फिर उस पर मिल रही नकारात्मक प्रतिक्रियाओं से वे अत्यंत क्षुब्ध हैं, और यही गुस्सा जब पछतावे में बदलता है तो अपने जीवन की निष्फलता से अत्यंत व्यथित होकर वे पिता, पत्नी और दोस्तों से माफी माँगते दिखाई देते हैं।

प्रकाश मनु की कविता में स्त्री की उपस्थिति बहुत प्रमुख है। साथ ही हमारे घर-परिवार या समाज में स्त्रियों पर हो रहे तरह-तरह के अन्यायों को लेकर वे जबरदस्त प्रतिरोध करते हैं। उनकी कविता में इस बात पर गहरा रोष है। औरतों की मर्म दशा और शोषण से विचलित होकर, वे अपने गुस्से और आक्रोश का खुलकर इजहार करते हैं -

औरत चाहे आधुनिका हो
फैशनेबल हो, पढ़ी-लिखी हो, बुद्धिमती हो
या गाँव की तहजीब में पली मायावती हो,
उसे बताओ -
कि आज भी यही सदियों पुरानी
जर्जर नींव है उसके वजूद की।

प्रकाश मनु की कविता यहीं नहीं रुकती, वह आगे जो कुछ कहती है, उससे मन में गहरी उथल-पुथल सी मच जाती है, और पाठक सोचने लगता है कि भला कवि ने गलत क्या कहा है, यही सब तो हो रहा है हमारे चारों ओर -

कि मरद का गुस्सा हलकाने
जब भी हो मौका
गोरा गेहुँआ मांस परोसकर
तश्तरी में लाए -
रोज
रोज
एक वही स्वाद-
और और भीतर खोलती चली जाए।

इतना ही नहीं, कवि बहुत साहस के साथ अपने भीतर की पूरी झाँईं सामने रख देता है। वह स्वीकार करता है कि कभी किसी क्षण में पास बैठी पत्नी की ओर उसका ध्यान नहीं जाता और वह वहाँ से बहुत दूर जाकर सपनों में डूबने लगता है। 'सोच' शीर्षक कविता में कवि की सोच है, और इस सोच के साथ ही बहुत कुछ है -

सोचता-सोचता अपने नीले अँधेरों में वह कोसों दूर
जंगलों, झाड़ियों, सरोवरों में चला जाता है
पास बैठी पत्नी की तुलना में मीलों दूर का
ओस चूता गुलाब वन उसे साफ दिखाई देता है
फिर अचानक लुप्त हो जाता है।

प्रकाश मनु का अनुभव-जगत बहुत व्यापक है, इसलिए उनकी कविता का दायरा भी बहुत बड़ा है। मनु जी उन लोगों पर भी कविताएँ लिखते हैं, जो चलते-चलाते रास्ते में मिल जाते हैं और उनका जीवन कुछ लीक से हटकर होता है। ऐसा ही एक पात्र है, 'बहादुरगढ़ का बहादुरलाल'। जरा देखें तो कि यह बहादुरलाल कैसा आदमी है -

लेकिन कह रहा हूँ कि उसके हाथ में
कुछ सर्टिफिकेट हैं
और वह किसी प्यासे बैल की तरह
दिल्ली की सड़कों पर
हाँफता अकसर देखा जा सकता है
अब तक ना कोई नौकरी ना काम-धाम
मगर बेनागा गाँव से शहर
आता है रोज
घर पर ठंडी मुसमुसाई गरीबी के बीच
छूट जाती है माँ-बीवी एक-डेढ़ कपड़ों में
और एक नंगा बच्चा जिसका जिगर बढ़ गया है
जो अकसर बाप की फालतू हो चुकी किताबों के बनाता है घर
और हर बार वह घर
बनते-बनते गिर जाता है।

यह केवल एक बहादुरलाल की बात नहीं है, बल्कि असंख्य बहादुरलालों को यही सब कुछ झेलना पड़ रहा है, जिनकी ओर कवि प्रकाश मनु ध्यान खींचना चाहते हैं।

कुछ इसी तरह की कविता है, 'राघव भाई दारूवाला पर एक निबंध'। इस कविता में राघव भाई मोटी खाल वाला एक ऐसा चरित्र है जो जनता को तरह-तरह से मूर्ख बनाकर पैसे ऐंठता है, पर उसकी पहुँच इतनी बड़ी है कि कोई उसका कुछ बिगाड़ नहीं पाता -

मैं राघव हूँ मगर दारूवाला भी तो हूँ नशे में
पासे फेंकते हुए कहते हैं झूमते-झामते कहते हैं तो
और गहरे हो जाते हैं आँखों के लाल डोरे
उनके एक-एक पासे से मरते हैं कई हजार
उनकी गोलियों से सैकड़ों घर-बार मगर राघव भाई
तटस्थ हैं
इस नश्वर दुनिया पर खुशी न गम
राघव भाई सचमुच संत हैं।

इन व्यंग्यात्मक पंक्तियों को पढ़ते हुए राघव भाई दारूवाला का पूरा घामड़ चरित्र सामने आ जाता है। कविता के माध्यम से समाज की समस्याओं और विद्रूप को सामने लाने का प्रयास बहुत पहले से होता आया है। इस कविता में भी कवि की यही कोशिश है कि कुछ बातें जो सीधे-सीधे नहीं जा सकतीं, उन्हें कविता के माध्यम से सामने लाया जाए, और समाज के ऐसे खलनायकों की पोल खोली जाए, जो पूरे समाज के लिए खतरा हैं।

इसी तरह एक कविता में दोस्ती और आपसी संबंधों में गरमाहट न होने, और परस्पर प्रेम के छीजते जाने पर प्रश्न उठाया जाता है -

क्या बिना तर्क के
कोई दोस्ती हो सकती है, कोई सही दोस्ती
कि जो जीती है फालतू या जरूरी दैनिक जरूरतों
से परे या उनके साथ भी
किसी गहरे अर्थ में।

इसी बात को कुछ और आगे बढ़ाते हुए प्रकाश मनु एक अन्य कविता, 'चालीसवें जन्मदिन पर' कहते हैं -

सिवा इस बात के
कि तब हम दोस्तियों की कसमें कुछ ज्यादा
ही खाते थे
कभी-कभी एक-दूसरे के कंधे पर रखकर हाथ
बातों में बहते तो कुछ ज्यादा ही बहते जाते थे
बुनते थे ऐसे सपने
जिनके पूरा होने की नहीं होती थी उम्मीद।

प्रकाश मनु जी की कविताओं में उनकी पूरी दुनिया है। इसीलिए उनका विषय कुछ भी सकता है - घर, पत्नी, बेटी, दोस्त, लेखक, यहाँ तक कि कवि स्वयं ही कविता का पात्र हो सकता है।

उनकी एक कविता है, 'प्रकाश मनु कौन है', जिसमें कवि जब एक मंच से कुछ तीखे प्रश्न करता है तो सामने से प्रत्युत्तर में एक प्रश्न उछाला जाता है कि 'प्रकाश मनु कौन है'। कवि का मन आहत है और उस मार्मिक चोट से उपजी कविता अब बेधक बन जाती है -

अब कुछ आखिरी छण बचे थे
और सिर्फ आखिरी दाँव...
मैने वही किया जो मरता करता है
शब्दों को चीमटे की तरह झटका
मूसल की तरह ताना
होठों के बीच चिंधी जहरी नागफनियाँ
अब के जो बोला तो वे बेचौन हो आए
बेचौनी-पत्थर पर छूटी एक बारीक लकीर!
और वे सारे के सारे चेहरे/लहूलुहान...!

एक सच्चा और खरा कवि जब आवेश में होता है तो उसके शब्द एक अस्त्र की तरह सामने वाले को बींध देते हैं। यही तो कविता की शक्ति है, जो प्रकाश मनु की कविताओं में बार-बार उभरकर सामने आती है।

लेकिन दूसरी ओर उनकी कविता में आत्म-वेदना और करुणा भी उतनी ही मुखर है। 'हमने तो जीना चाहा था माँ!' कविता में कवि गहरे दुख और संताप से भरकर माँ से एक ऐसा प्रश्न पूछता है जो संभवतः प्रत्येक व्यक्ति के मन में कभी-न-कभी आता ही होगा -

तो यह क्या हुआ-क्या हुआ माँ कि
आज तो नरक और नरक और नरक के बीच
कोई रास्ता ही नहीं हमारी जिंदगी का
हम तो आज कहीं नहीं, कुछ भी नहीं
कभी-कभी हमें खुद के जिंदा होने पर भी
होने लगता है शक
एक-दूसरे की मौत तक का नहीं हमें अफसोस
एक-दूसरे को मारने में कहीं न कहीं
हमारा छिपा हुआ हाथ
हमारे दिलों में पत्थर ही पत्थर उछलते
टकराते एक-दूसरे के सिर और छातियों से!

मनु जी की कविता की ये पंक्तियाँ जैसे ठंडे पड़े संबंधों में फिर से एक नई गरमाहट और आँच लाने की कोशिश करती हैं।

अपने आत्मकथ्य में प्रकाश मनु स्वयं कहते हैं, "सच पूछिए तो मेरी कविताएँ एक अर्थ में कविता के हर्फों में लिखी गई मेरी आत्मकथा और समय-कथा भी है। वे ऐसी क्यों हैं? क्या इससे भिन्न भी हो सकती है कविता, मैं नहीं जानता। शायद कविता का यही रूप मुझे प्रिय है और इसी रूप में मैंने उसे भीतर तक महसूस किया है। उसके सहारे मैंने आपबीती और जगबीती को समझा है और जीवन का अर्थ टटोला है।"

मनु जी की कविताओं में 'घर' शब्द बार-बार आता है। इस संग्रह में भी पहली कविता 'छूटता हुआ घर' है। कवि घर से बहुत प्रेम करता है, परंतु वह जिस घर को मन में सँजोए हुए है, वह घर नहीं मिलता, मिलता है तो एक ऐसा कमजोर हिलता, काँपता हुआ सा घर कि -

अब इस घर की दीवारें हिलती हैं
दरवाजे चिंचियाते हैं। सफेदी
मकड़ी की जालेदार टाँगों में फँसी है
झड़ा हुआ पलस्तर और मैला एकांत
सब धकियाते
फटकारते हैं बाहर निकल जाने को।
कल ही छोड़कर चला जाऊँगा यह घर
यह संसार।

कवि को घर से निराशा है, पर यह बात बार-बार उसकी कविताओं में सामने आती है कि आखिर वह कैसा घर चाहता है? 'चिड़िया का घर' कविता में कवि जैसे उल्लास से भरकर कह उठता है -

और यल्लो, चिड़िया पंखों पर
नहीं, चिड़िया पर-पर है
चिड़िया है घर की रानी, चिड़िया है सोनपरी
बिटिया है लाडली सूरजी की
घास, तिनके, धूप, उत्साह के साथ मिलाकर सुतली
अपनी अचूक कला से
रचेगी वह घर
जरूर रच लेगी कल तलक!

प्रकाश मनु के इस घर के बारे में इसी संग्रह के प्राक्कथन में प्रियदर्शन ने विस्तार से चर्चा की है। वे कहते हैं, "जिस घर के जिक्र से बात शुरू हुई थी, यह पूरा संग्रह जैसे उसे बसाने की कोशिश है - अपने मित्रों से, उनकी स्मृति से, आस-पास पसरी चीजों से, चिड़ियों से, बच्चों से, नरम धूप से, हिंसा के खिलाफ ली जाने वाली प्रतिज्ञाओं से और उन सबसे, जिसमें एक सहज-मानवीय संसार संभव होता है।"

सच ही मनु जी की कविताओं में घर की पुकार व्याप्त है, और वही उन्हें पाठकों के इतने करीब भी ले आती है।

तो क्या प्रकाश मनु की कविताओं में केवल निराशा और नाराजगी भारी पड़ती दिखाई देती है? उनकी समग्र कविताओं को पढ़ने से ऐसा नहीं लगता है। यह सही है कि वे अपने आस-पास की बहुत-सी ऐसी बातों से क्षुब्ध हैं, जो मनुष्य के विरोध में काम करती हैं। इसी संग्रह की भूमिका में गिरिधर राठी कहते हैं, "प्रकाश मनु के मन में वसंत और बच्चों का, दृश्यों आदि का उल्लास भी बहुत है, केवल हालात पर मातम नहीं। उनकी कविता हमें 'परिचित' से नया 'परिचय' कराने में समर्थ है। कहीं-कहीं अपरिचय के विंध्याचलों को उलाँघती भी है। गाहे-ब-गाहे जो लोग, मेरी तरह, उनके गद्य से अधिक और उनकी कविता से कुछ कम मिलते रहे हैं, उन्हें एक साथ चुनिंदा कविताएँ पढ़ने के बाद लगेगा कि कविता का एक और सहयात्री उन्हें मिल गया है....!"

प्रकाश मनु की कविताओं में संभावनाओं का एक आकाश दिखाई देता है। संग्रह की कविताओं को पढ़ने से एक अलग ही सुख मिलता है। खासकर संग्रह की अंतिम कविता 'अभी मैं नहीं मरूँगा' में प्रकाश मनु कविता के भविष्य के प्रति आशान्वित दिखाई देते हैं। वे पूरी उम्मीद और आस्था के साथ कहते हैं -

अभी तो बाँहों में बाँहें फँसा उलटने हैं
कई पहाड़
करनी है क्रांतियाँ
अभी तो आसमान-धरती का करना है गठबंधन
और तमाम टीले पीठ पर उठाकर ले जाने हैं
समंदर पार।

इतना ही नहीं, कविता की अंतिम पंक्तियों में वे जैसे पूरे आत्मविश्वास के साथ कह उठते हैं-

अभी तो मुझे जीना है
अभी मैं नहीं मरूँगा
अभी मुझे करने हैं बहुत काम।

और शायद यही कारण है कि जो लोग जीवन और कविताओं से प्रेम करते हैं, उनको प्रकाश मनु के भीतर बैठे कवि में बहुत बड़ी संभावना दिखाई देती है।

सुरेश्वर त्रिपाठी, 281, सेक्टर 19, फरीदाबाद (हरियाणा), पिन-121002
मो. : 09871469579

लोक के आलोक में स्नात मनु का मन

डॉ. रामशंकर भारती

मनु जी की इस वासंतिक अवधारणा को नमन। सच तो यह है कि प्रकाश मनु अंतःकरण से साहित्यिक मिठास में साँसें लेते हैं। उनके आस-पास नगरीय कंक्रीटों के जंगल तो उगे हैं, पर हृदय में वसंत बयार की मादक मिठास ही भरी हुई है। उनका सृजन कल्पना के नकली पंख लगाकर कभी नहीं उड़ा, अपितु यथार्थ की भावभूमि पर पल्लवित, पुष्पित और फलित हुआ है। वे जैसा लिखते हैं, सोचते हैं, वैसे ही वे हैं। उनका मसिधर्म दोहरा चरित्र नहीं जीता, जो देखता है, वही लिखता है, जो बोलता है, उसी को तौलता है। ऐसी विशिष्टता और सामर्थ्य बिरले साहित्यकारों को नसीब होती है। इसलिए इस भूमंडलीकरण के शोषक वातावरण में उनके वर्तमान को भविष्य की कुरूपताओं में नहीं देखा जा सकता। उनका पारदर्शी सृजन शाश्वतता की चिर स्थायी नींव पर रखा हुआ है, जिससे प्रेरणा तो ली जा सकती है, उसका रूपांतरण नहीं किया जा सकता।

देश के सुप्रसिद्ध साहित्यकार आदरणीय प्रकाश मनु को समय की सदानीरा उस मोड़ पर लेकर आ गई है, जहाँ वानप्रस्थी बिछोह की सर्जनात्मक आकुलताएँ अनंत आकाश में सघन मेघ बन मन-प्राण को रसगंधी बनाने को आतुर हैं, वहीं दूसरी ओर अगरु रची रवि-रश्मियाँ संन्यासिक देहरी के मंगलमय द्वार खोले, अकलुष पदचाप की बाट जोह रहीं हैं।

मगर पचहत्तर वर्षीय बालक मनु अम्माँ की शुक्लपक्षी यादों से चिपका हुआ, वनपाँखियों के संग भोर की प्रभाती दोहरा रहा है -

उठ जाग सवेरे।
गुराँ दा ध्यान,
गंगा इश्नान।
हथ विच लोटा,
मोढे लोई
राम जी दी गउआँ
सीता दी रसोई...!

बचपन में माँ से मिले सनातनी संस्कार रोशनी की पगडंडियों से ले जाते हुए उसे सूरज के गाँव लेकर आ गए हैं, जहाँ चतुर्दिक वाग्मिता प्रकाश के झरने ही झरने झर-झर हो रहे हैं। मनु का मन इन्हीं झरनों के अमल-धवल जल में विमल हो रहा है। पोर-पोर से सराबोर है। भीतर-बाहर भीग रहा है। ऊर्ध्वगामी उदात्त लहरों संग गलबहियाँ डाले हुए आनंदगंधी अलकनंदाओं को

आत्मसात् कर रहा है।

देखते-देखते प्रकाश मनु का पचहत्तरवाँ बौराया वसंत देह की देहरी पर दस्तकें देते हुए कपाट खुलने की प्रतीक्षा किए बिना ही भीतर घुस आया है। और अब वह स्वयं मनु से ही बतियाए जा रहा है -

"सच ही, वसंत जीवन है, जीवन राग भी। हवाओं की मधुर रागिनी और बदली-बदली हुई-सी चाल, प्रकृति का मोहक रूप और पेड़-पौधों का पुराने कलेवर को छोड़ नित नई कांति और सुंदरता का वरण करना, यह कोई मामूली घटना नहीं है। पेड़-पौधों के नए-नए पत्ते ऐसे लगते हैं, जैसे अभी-अभी पानी में नहाकर निकले हैं। उनकी चमक, उनकी कांति, उनकी ताजगी और कोमलता कुछ भी तो नहीं भूलता। यह सही मायनों में सृष्टि का पुनर्नवा होना है, जिससे वह अपनी अनंत लय और सुंदरता को बनाए रखती है। इसीलिए वसंत जीवन है और इसीलिए मन न जाने कब से उसकी प्रतीक्षा कर रहा होता है...!"

मनु जी की इस वार्सतिक अवधारणा को नमन। सच तो यह है कि प्रकाश मनु अंतःकरण से साहित्यिक मिठास में साँसें लेते हैं। उनके आस-पास नगरीय कंक्रीटों के जंगल तो उगे हैं, पर हृदय में वसंत बयार की मादक मिठास ही भरी हुई है। उनका सृजन कल्पना के नकली पंख लगाकर कभी नहीं उड़ा, अपितु यथार्थ की भावभूमि पर पल्लवित, पुष्पित और फलित हुआ है। वे जैसा लिखते हैं, सोचते हैं, वैसे ही वे हैं। उनका मसिधर्म दोहरा चरित्र नहीं जीता, जो देखता है, वही लिखता है, जो बोलता है, उसी को तौलता है। ऐसी विशिष्टता और सामर्थ्य बिरले साहित्यकारों को नसीब होती है। इसलिए इस भूमंडलीकरण के शोषक वातावरण में उनके वर्तमान को भविष्य की कुरूपताओं में नहीं देखा जा सकता। उनका पारदर्शी सृजन शाश्वतता की चिर स्थायी नींव पर रखा हुआ है, जिससे प्रेरणा तो ली जा सकती है, उसका रूपांतरण नहीं किया जा सकता।

भौतिकता की चकाचौंध में संसार शोषण की शुष्कता का आधार बनता जा रहा है। शायद इसलिए सृष्टि की देहरी पर मनु का मन तमाम विद्रूपताओं, विसंगतियों, विडंबनाओं और नाइंसाफियों को जमींदोज करते हुए, लोकमंगल की स्थापना करने को आकुल है। उनकी इस आकुलता में मनुष्यता साँसें लेती है, जीवन-मूल्य सजते-सँवरते हैं, संस्कृति विहँसती हुई सदा सुहागन भोर की देहरी पर लोकमंगल के चौक पूरती है। दोपहर गुनगुनी धूप में नहाती है। साँझ अपने पाँवों में सुहागिनी महावर रचाती है और मधुर यामिनी सर्जना के आनंदगंधी अभिसार सिरजती है।

यही कारण है कि मनु जी के आत्म-संस्मरण कभी ललित निबंध, तो कभी कवित्व का आनंद प्रदान करते हैं। इसी आनंद के अवगाहन से मेरा मन बड़ी जलेबी देख ठिनठिनाना शुरू कर देता है। प्रकाश मनु जी 'बालवाटिका' पत्रिका में प्रकाशित वेदमित्र शुक्ल के संस्मरण के हवाले से बड़े पते की बात लिखते हैं -

"वेदमित्र और उनकी बहन, जब छोटे थे, तो स्कूल न जाने के बहाने खोजा करते थे। माँ के लिए यह अजब मुसीबत थी। तब पड़ोस की एक चाची मदद के लिए आगे आईं। उन्होंने दोनों बच्चों को कपड़े पहनाकर स्कूल के लिए तैयार करके भेजने की जिम्मेदारी ले ली। वे खेल-खेल में दोनों भाई-बहन को कपड़े पहना देतीं। बीच-बीच में खाने के लिए कभी चने, कभी जलेबी मिलती और दोनों नटखट बच्चे कब तैयार हो जाते, पता ही न चलता। पर हाँ, जब जलेबी खाने को दी जाती तो दोनों भाई-बहन एक-दूसरे की जलेबी पर कसकर नजर गड़ाए रहते थे। अगर दूसरे को दी गई जलेबी ज्यादा बड़ी या मोटी है, तो उसका ठिनठिनाना शुरू। ऐसे में पड़ोस की उस समझदार चाची ने रास्ता निकाला। वे जलेबी का एक छोटा-सा अतिरिक्त टुकड़ा देकर ठिनठिनाते बच्चे को संतुष्ट कर देती थीं..."

आगे मनु जी ने लिखा है कि "पता नहीं, वेदमित्र के पड़ोस में रहने वाली वे चाची पढ़ी-लिखी थीं या नहीं, पर वे बाल मनोविज्ञान को समझती जरूर थीं और बाल मनोविज्ञान को समझने के लिए बड़े-बड़े पोथों की नहीं, बल्कि एक सीधे-सरल मन और संवेदना की दरकार होती है...."

मनु जी साहित्य अकादमी के पहले बाल साहित्य पुरस्कार से सम्मानित लेखक हैं। उनकी भाषा बच्चों जैसी खिलंदड़ी भाषा है। यही कारण है कि उनकी भाषा में जो बतरस है, वह हर किसी का मन मोह लेता है। उनकी बतकही मनकही बनकर भीतर-भीतर धँसती चली जाती है, गहराते पानी की तरह।...मनु का मन लोक-संस्कृति के इर्द-गिर्द मँड़राता रहता है, किसी लोकरस लोभी भ्रमर की तरह। और उनका चित्त आत्म-उल्लास से आपूरित पर्व-संस्कृति के मानवीय अंतःस्थलों में रमा हुआ है। यही नहीं, उनका लोक-मन और उसकी उँगली पकड़कर दौड़ने वाला जीवन, फागुनी अकुलाहट से परिपूर्ण है। इसीलिए उनके सृजन में वनपाँखियाँ चिहुँकतीं हैं, सूर्य किरणें फूल-सी पंखुरियों से बतियातीं हैं। साँझ पश्चिम के आँगन में शुक्रतारे का दीप जलाकर आकाश के मौन को शब्द देती है। शायद इसीलिए मनु जी घोषणा करते हैं,

"वसंत जीवन है, जीवन-राग भी।"

वे वसंत के क्षरण को लेकर हमें सचेष्ट भी करना चाहते हैं। उनकी अभीप्साओं को मैं अपने शब्दों में यों दोहराता हूँ -

जितना भी शेष है वसंत
कछारों-बागानों में
नदी के इस पार-उस पार
तैरती तरंगित नौकाओं में
चप्पुओं के मूठ से चिपकी
कुँआरी हथेलियों में
माझी के अलमस्ती भरे गीतों में
चाँदी-सी चमचमाती ठंडी रेत पर बने

निश्छल प्रेमियों के युगल पद-चिह्नों में
आकाश छू रही रंग-बिरंगी पतंगों में
डोरियों-मज्जाओं को ऊपर-नीचे करते
मासूम सलोने छोटे-छोटे हाथों में
मेहनत का महावर रचाए
नंगे-खुरदरे पाँवों में
महुओं के मदिराए दुकूलों में
टेसू के रतनारे फूलों में
गुलमोहर की गछनारी गाछ में
आमों के कामोद्दीप्त बौरों में
सरसों की सर-सर करती पीली चूनर में
चौती गाते चौंतुओं की तानों में
खेतों-खलिहानों, बागानों में
और.....
बच-बचाकर
जहाँ-जहाँ भी
पसरा है अनंत वसंत
बचाना है उसे अंत से
आधुनिक होते मानव से
कृत्रिमता के खोखलेपन से
सहेजना, सँवारना, दुलारना है
सृजनधर्मी वसंत को कल के लिए....!

' प्रकृति-पुरुष के आंतरिक-बाह्य क्रीड़ा-कौतुक द्वारा संरचित सृष्टि के सौंदर्य का अमिय रसपान सहज स्वभाव से जीने वाले कर्मठ लोक हितैषी, मनीषी ही कर पाते हैं। यह सौभाग्य प्रकाश मनु के हिस्से में बखूबी आया है। यह हम सबके लिए, उनके असंख्य पाठकों के लिए, उनके साहित्य से सरोकार रखने वालों के लिए एक सुखानुभूति है। मनु जैसा विरल व्यक्तित्व मन-कर्म-वचन के पवित्र भाव से ही विनिर्मित होता है। तभी व्यक्ति के भीतर 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' की अनंत चेतना जाग्रत होती है। इसी चेतना के प्रकाश से अंतःकरण का अंबुज विकसित होता है। प्रकृति, संस्कृति और संसृति-इन तीनों का विलय मनुष्य को मनुष्यता प्रदान करता है। प्रकृति-पुरुष का प्रेम में तदरूप हो, एकाकार हो जाना निश्चित रूप से मनुष्यता के असंख्य द्वार खोलता है।

प्रकाश मनु के सृजन में ऐसे असंख्य द्वार और गवाक्ष हैं, जहाँ से केवल और केवल उजास के झरने झर-झर झरते रहते हैं। प्रेम एकाकार श्वास के इकतारे पर झंकृत हो, नाद-ब्रह्म द्वारा

शब्द-ब्रह्म की साधना में निमग्न हो, आह्लादिकताओं से समृद्ध होने लगता है। जीवन जीने की ललक मनुष्य, पशु-पक्षी, कीट-पतंगों तथा जड़-चेतन सभी में दृष्टिगोचर होती है। इसे बहुत समीप से देखना, समझना हो, तो फिर हमें प्रकाश मनु के साहित्य के आलोक-पथ से गुजरना होगा, जो तमाम वीभत्स अँधेरों को धकियाते हुए, ध्वस्त करते हुए हमें प्रकाश से समृद्ध करता है।

लेखक कोई भी हो, किसी भी विधा का हो, यदि उसके जीवन में माँ-पिता, भाई-बहन, परिवार, पड़ोस, समाज, देश, राष्ट्र, जीवन-मूल्यों और प्राकृतिक संपदाओं के प्रति अनुराग नहीं है, प्यार नहीं है, तो फिर वह कितनी ही महागाथाएँ लिखे, महाकाव्य लिखे, उसके लेखन में जीवन और कलाओं का ललित आनंद नहीं मिल सकता। सत्-चित्-आनंद की प्रतिष्ठा उसमें हो ही नहीं सकती।

आज के बहुरूपिए बाजारूपन की बाजीगरी से हटकर प्रकाश मनु ने जिस तरह का जीवन जिया है, वह दिखता तो सरल है, लेकिन है बहुत कठिन। कबीराना ठाठ की तरह असाधारण है। इस असाधारणता को साधारणता में बदलकर जिंदगी को खुद्दारी के साथ जीना हर किसी के बूते में नहीं है।

प्रकाश मनु जी एक ऐसे दुर्लभ साहित्यकार हैं, साहित्यचेता हैं, जिन्होंने एक साथ साहित्य की विविध विधाओं को समृद्ध किया है। उन्हें साहित्यिक संस्कारों से सँवारा और सँजोया है। उन्होंने न केवल कहानियाँ, कविताएँ और संस्मरण लिखे, बल्कि उपन्यास, जीवनी के साथ ही बाल केंद्रित साहित्य भी खूब जमकर खिला। कोई पच्चीस बरसों तक 'नंदन' जैसी प्रतिष्ठित बाल पत्रिका के संपादन से जुड़े रहकर, बच्चों के लिए, सीधी-सरल और रसपूर्ण भाषा में विभिन्न कथाओं के माध्यमों से संस्कारों का बीजारोपण करते रहे हैं।

प्रकाश मनु पर लिखना, उनकी साहित्य-यात्रा को निरूपित करना बहुत कठिन है। हाँ, उसे छुआ जा सकता है। उसके पारस-संस्पर्श से स्वयं को कुंदन जैसा बनाया जा सकता है। मनु के बौराए हुए चिर वसंत से सुवासित हुआ जा सकता है।

प्रकाश मनु इस 12 मई को पचहत्तर साल के हो रहे हैं। मगर मुझे लगता है पचहत्तर वर्षीय इस वृद्ध के भीतर एक अंतर्मुखी बच्चा बैठा है। पालीवाल प्राइमरी स्कूल का वही भोला कुक्कू, वही खिलंदड़ी मनु उनके भीतर पालथी मारे बैठा हुआ है, जो दौड़-दौड़कर तितलियाँ पकड़ता है और उनके रंग-बिरंगे पंख गिनता है। चिड़ियों को दुलारता है, झूलों पर पेंग बढ़ाता है, गुनगुनी धूप में नहाता है, तख्ती और बुदक्का सँभालता है, कोड़ा बदामशाही खेलता है, 'कुकड़ूँ-कूँ, राजे दी धी परना दे तूँ' जैसे लोकगीत गाता-गुनगुनाता है और न जाने क्या-क्या करता है। मगर जो करता है, वह अनूठा है और अप्रितम भी।

प्रकाश मनु के पचहत्तर वर्षीय जिंदगी के सफरनामे के शिलालेख दिग्भ्रमित समाज-जीवन का मार्गदर्शन करते दृष्टिगत होते हैं। वे ऊबड़-खाबड़ और पथराई धरती को समतल व रसार्द्र

बनाते दिखाई देते हैं। उसे उर्वर बनाने के लिए सतत प्रेरित करते हैं। मनु जी के आत्म-संस्मरणों में माँ के वात्सल्य की पुष्करिणी आप्लावित है। जातीय संस्कारों की लोकगंध जगह-जगह उद्घाटित है। संघर्षों की विप्लव गाथाएँ हैं, तो जीवंत जिजीविषाएँ भी हैं, जो पथराए पतझारी होंठों पर वसंत की चौतन्य मुसकराहट के असंख्य फूल खिला रहीं हैं। इस मुसकराहट में जीवन के अनेक उत्स भरे हुए हैं। जिंदगी यहाँ सुकून से साँसें ले रही है। संस्कृतियाँ बोल रहीं हैं, स्मृतियाँ डोल रहीं हैं, संबंधों की अमराइयाँ किल्लोल कर रहीं हैं।

ऐसे अनूठे व्यक्तित्व और साहित्य-सृजन में इतने पारंगत लेखक को मैं पूरी श्रद्धा और विश्वास से नमन करता हूँ। मेरे लिए यह सौभाग्य की बात है कि मैं उनके जीवन-प्रसंगों को पढ़ते हुए आह्लादित और समृद्ध हो रहा हूँ। आदरणीय प्रकाश मनु जी का यह उपकार मैं कभी नहीं भूलूँगा, जो उन्होंने अपने विषय पर मुझे लिखने का अवसर देकर दिया।

बड़े मन वाले मनु जी शतायु हों, स्वस्थ एवं सानंद रहें। परमात्मा से यही विनती है।

डॉ० रामशंकर भारती, निदेशक, बुंदेलखंड सांस्कृतिक एकेडेमी, मोनू बुक डिपो,
खातीबाबा रोड, दीनदयाल नगर, झाँसी-280043
दूरवाणी - 9696520940

✧ ✧ ✧

भावों की पुण्य सलिला है प्रकाश मनु की रामकथा

पद्मा मिश्रा

इस कृति में अनेक ऐसे मार्मिक प्रसंग हैं, जहाँ पाठक का मन विचलित हो उठता है। उदाहरण के लिए राम के राज्याभिषेक की खुशियों के बीच रानी कैकेयी का राम वनवास का वरदान माँग लेना, मानो राज परिवार सहित पूरी अयोध्या के सपनों पर कुठाराघात है। वन के कष्टों को सहन करते हुए सीता का अचानक लंकापति रावण के द्वारा छल-बल से हरण, फिर सीता का करुण विलाप सुनकर जटायु का दौड़कर आना और फिर पूरी ताकत से रावण जैसे बलवान से भिड़ जाना - यह इस कथा का बहुत ही भावुक कर देने वाला प्रसंग हैं। यद्यपि रामकथा अनेक बार पढ़ी गई है, परंतु इस पुस्तक को पढ़ते समय वे सारी घटनाएँ एक बार फिर आँखों के सम्मुख घटित हुई जान पडती हैं। स्वयं लेखक ने रामकथा लिखने की भावभूमि बताते हुए बहुत भावार्द्र होकर कहा है -

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी की अमर पंक्तियाँ हैं, 'राम तुम्हारा चरित् स्वयं ही काव्य है, कोई कवि बन जाय, सहज संभाव्य है!' सचमुच रामकथा की सहज लोकप्रियता, नैतिकता ने जन-मानस को छुआ तो वह सर्वथा वंदनीय, अभिनंदनीय हो गई।

रामकथा आज भारतीय जन-मानस का एक अभिन्न अंग बन चुकी है। उसे जितनी बार पढ़ा जाए, वाचन किया जाए, उसकी रसमयता हर बार भिन्न होती है, समझने, परखने की दृष्टि भिन्न होती जाती है। परंतु जब रामकथा हृदय को तरंगित करती भावनात्मक अनुभूतियों की सतत प्रवाहिता सलिला बन अंतर्मन में बहने लगे और मन का रोम-रोम एक अनिर्वचनीय आनंद से ओतप्रोत होने लगे, तो निश्चित रूप से वह कृति साहित्य की अमूल्य धरोहर बन जाती है।

ऐसी ही एक अनूठी कृति 'फिर आए राम अयोध्या में' पिछले दिनों मुझे पढ़ने को मिली, जिसे वरिष्ठ कवि, साहित्यकार आदरणीय प्रकाश मनु जी ने बड़े मन से और भाव-सागर में डूबकर लिखा है। बिल्कुल राममय होकर। इसलिए पूरी कृति में मानो छल-छल करता रामकथा का रस बहता है। लगा, यह मनु जी का एक स्नेहिल उपहार और आशीर्वाद है मेरे लिए। इस अनोखी रामकथा को पढ़ते हुए मैं त्रेता युग की अयोध्या में घटित सामयिक

घटनाओं के एक-एक पल को जी रही थी। पुस्तक की पठनीयता और रोचकता पाठक को इस कदर बाँधे रखती है कि एक क्षण के लिए भी उसका मन भटकता नहीं है। राम के स्नेह की स्वाति बूँद की चाह मन को चातक के समान एकाग्र और मूक बना देती है। तब याद आते हैं तुलसीदास-

एक भरोसो एक बल, एक आस विस्वास,
एक राम-घनश्याम हित, चातक तुलसीदास।

मैने 'फिर आए राम अयोध्या में' पुस्तक को पढ़ना शुरू किया, तो मन में विचारों का मंथन भी साथ-साथ चल रहा था। इस कृति की सहजता, सरलता और रसमयता ने रामकथा को सर्वथा एक नई दृष्टि प्रदान की है एवं समाज को, जीवन को देखने-समझने और उसके आत्मिक नैतिक मूल्यों को आत्मसात करने का प्रेरक मार्ग भी दिखाया है। वस्तुतः रामकथा केवल कथा-मात्र ही नहीं है, वह जीवन का दर्पण भी है, जो समाज के भटके कदमों को सत्य का नया रूप दर्शाती है।

इसमें रामकथा छोटे-छोटे शीर्षकों में बँटी हुई है, जैसे वह सरयू की लहरों के साथ बहती चल रही हो। ये शीर्षक भी किसी कविता-सा आनंद देते हैं। 'सुनो कहानी राम की', 'दशरथ के घर जनमे राम', 'आए विश्वामित्र नगरी में', 'राम बनेंगे युवराज', 'भरत चले राम को मनाने' आदि।

इन छयालीस अध्यायों में बँधी हुई रामकथा का हर प्रसंग इतना रोचक है कि लगता है, मन कल्पना-लोक की एक सहज भावधारा में बहा जा रहा है। हम अपनी आँखों से देखने लगते हैं कि अहा! यह राम के जन्म की बेला है, अयोध्या उल्लसित है, आनंद में डूबी हुई है। साकेत उत्सव की उमंग में व्यस्त है। राम का जन्म हुआ, मानो अयोध्या का भाग्योदय हो गया। परंतु दिव्य प्रकाश, अप्रतिम सौंदर्य की अनुपम छवि लेकर आए श्रीराम की आभा को माँ कौशल्या हतप्रभ हो देखती रह गई। उनका रोम-रोम पुकार रहा था, 'पुत्र, मैं इस तेज को वहन नहीं कर सकती।' तत्क्षण एक शिशु का रुदन सुनाई देता है, दासियाँ, परिजन सभी दौड़ पडते हैं। आनंद की बधाइयाँ बजने लगीं और इस तरह राम अयोध्या में अवतरित हुए।

राम के जन्म लेने की कथा को इतनी आत्मीयता, स्नेह और सहजता से लेखक ने वर्णित किया है, मानो अयोध्या के राजमहल में हम भी साक्षी रहे हों, उन बहुमूल्य पलों के -

"फिर वह शुभ दिन, शुभ घड़ी आई। चौत्र मास की नवमी तिथि को रानी ने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसके चेहरे पर अलौकिक आभा थी और देवता जिसका यशगान कर रहे थे।"

कहते हैं, रचना में रचनाकार का व्यक्तित्व समाहित होता है। आदरणीय प्रकाश मनु जी का व्यक्तित्व स्वयं भी आदर्श, स्नेहिल करुणामय एवं संवेदनशील है और यही मानवीय गुण राम के जीवन मूल्य हैं। दोनों की साम्यता देखें तो समझ में आएगा कि सच्ची मानवता जीवन में विकसित होती है, समाज को राह दिखाती है। इस कृति में राम परम पुरुष मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में विभूषित तो हैं ही, पर उससे भी बढ़कर मानवीय गुणों की उच्चता का आदर्श उनके स्वरूप में

दिखाई पडता है। माता कौशल्या और दशरथ के आँगन में वे एक साधारण बालक की भाँति तरह-तरह के खेल खेलते हैं।

माँ के एक बार भोजन के लिए बुलाने पर पहले तो वे मना करते हैं, फिर दौड़कर उनके आँचल में छिप जाते हैं। कौशल्या अपने राम को सुलाने के लिए लोरी गाती हैं। ठीक वैसे ही, जैसे हमारे घरों में आम माताएँ गाती हैं -

आ जा तुझे सुलाऊँ,
मैं मीठे गीत सुनाऊँ,
मन बातों से बहलाऊँ,
फिर लोरी तुझे सुनाऊँ।

कितना सुंदर प्रसंग है। पुरुषोत्तम राम के बचपन का वृत्तांत इतने सहज, स्वाभाविक रुप में पढ़कर पाठक मुग्ध हो उठता है। प्रकाश मनु जी स्वयं एक लोकप्रिय बाल कथाकार तथा कवि हैं, इसलिए एक शिशु से लेकर बालपन के अनेक कौतुकपूर्ण प्रसंगों का अत्यंत स्वाभाविक चित्रण कर पाने में सफल रहे हैं। मैं स्वयं कभी एक छोटी-सी बालिका बनकर, कभी वयस्क माँ की दृष्टि से उस बचपन को हँसते-खेलते क्रीड़ांगन में दौड़ते देख रही थी। जैसे माँ कौशल्या दूर से देखतीं और निहाल हो जातीं कि मेरा बालक तो जग से निराला है। ऐसे ही पाठक का मन भी कह उठता है, 'हाँ मैया, सचमुच तेरा बालक जग से निराला है!'

फिर एक और प्रसंग, जो विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जब महर्षि विश्वामित्र यज्ञ की रक्षा और राक्षसों के संहार के लिए राजा दशरथ के किशोर बेटों राम और लक्ष्मण को लेने राजमहल में आते हैं, तो माता-पिता और सभी परिजन हतप्रभ और उदास हैं। अंततः वे अपने दोनों प्रिय पुत्रों को उनके साथ जाने की अनुमति दे देते हैं। यहाँ भी बालक राम की उदारता और आज्ञाकारिता का गुण दर्शनीय है कि वे अपने परिवार से, भाई-बंधुओं से अलग होने पर कोई विरोध नहीं करते। पिता का आदेश उनके लिए सर्वोपरि है।

आश्रम में उन्होंने गुरु विश्वामित्र से शस्त्र और शास्त्र दोनों की शिक्षा ली। वहाँ गुरु से सीखा कि शस्त्र और शास्त्र दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। जब गुरु विश्वामित्र जैसा महर्षि हो तो ज्ञान स्वयं महानता के शिखर पर आसीन होकर बैठ जाता है। गुरु विश्वामित्र ने उन्हें सिखाया कि बिना शास्त्र विद्या के शस्त्र विद्या भी निरर्थक है। बिना शास्त्र विद्या, शस्त्र विद्या व्यक्ति को निर्मम बना देती है। वह नीति-अनीति नहीं जान पाता, इसलिए उसका अनुचित प्रयोग करने लगता है। ऐसा व्यक्ति देश व समाज का कोई भला नहीं कर पाता।

राम ने ताड़का और सुबाहु जैसे राक्षसों का वध किया और धर्म की रक्षा की। यह कथा भी आज के संदर्भ में छात्रों के लिए प्रासंगिक है कि राम की तरह शिष्य, धर्म के रक्षक बनकर और समाज के उत्थान के लिए आगे आएँ। इसके लिए शस्त्र व शास्त्र दोनों की यथासमय उपयोगिता को समझना अत्यंत जरूरी है।

राम की करुणा, उनके आदर्श, बहुज्ञता, गुरुभक्ति, माता-पिता का आदर, आदर्श राजा की प्रजा-वत्सलता, सच्ची मित्रता, कितने ही ऐसे पवित्र गुण हैं, जो उनके चरित्र की व्यापकता और उदारता को सर्वोच्चता प्रदान करते हैं, जिनके दिव्य प्रकाश में हमारी भावी पीढ़ियाँ अपना लक्ष्य निर्धारित कर सकती हैं। रामकथा वाल्मीकि ने भी लिखी और उनके उदात्त चरित्र को स्थापित किया, पर देवभाषा संस्कृत में लिखी होने के कारण वह उच्च शिक्षित विद्वत्जनों के चिंतन के योग्य बनकर ही रह गई और जन-जन तक नहीं पहुँच सकी। वाल्मीकि की रामकथा आध्यात्मिक दर्शन और शास्त्रों के गहन विवेचन की कथा बनी।

वहीं दूसरी ओर, तुलसी ने लोकभाषा अवधी में राम की कथा लिखी और वह देखते ही देखते इस कदर लोकप्रिय हो गई कि उसे हर हृदय ने अपनाया। उसने सबके दिलों में जगह बनाई, लेकिन उसे विद्वत्जनों का विरोध भी सहना पड़ा था। यहाँ क्षेत्रीयता का भी प्रश्न था और उसे समझने की विस्तृत उदार दृष्टि की भी जरूरत थी। परंतु रामकथा का एक अनोखा सौंदर्य, एक अपूर्व रस जो मन-प्राणों को निरंतर आप्लावित करता है, वह रसमय आनंद आदरणीय प्रकाश मनु जी की इस अनोखी रामकथा में हम देख पाते हैं। जैसा कि उन्होंने स्वयं लिखा है-

"इसमें न तो पांडित्य की गुरुता है और न मैं ऐसा चाहता था। एक सीधी-सादी रामकथा है, जिसमें मन का रस है। कहीं से भी डूबो, रस ढुर पड़ेगा और वह देर तक बहता हुआ आपको रामकथा के घाट की ओर खींचेगा।"

सचमुच भाव-रस का मूल है आनंद, और आनंद तभी अनुभव किया जा सकता है, जब गूँगे के गुड़ के समान उसकी मिठास की दिव्यता कही न जा सके, अपितु अनुभव की वस्तु बन जाए। इसी अप्रतिम आनंद, इसी भावनात्मक प्रेम-रस का अनुभव मैंने इस पुस्तक को पढ़ते हुए किया, जो शब्दों से परे है। यहाँ राम सहज मानवोचित आचरण करते हैं, दुख-सुख, हर्ष-विषाद के पलों में भी एक अभिभावक-सा व्यवहार करते हैं। बचपन में ही अपना प्रिय खिलौना अपने भाइयों को दे देना, उन्हें कष्ट में देखकर दुखी हो जाना, यही गुण तो राम को राम बनाते हैं।

इस कृति में अनेक ऐसे मार्मिक प्रसंग हैं, जहाँ पाठक का मन विचलित हो उठता है। उदाहरण के लिए राम के राज्याभिषेक की खुशियों के बीच रानी कैकेयी का राम वनवास का वरदान माँग लेना, मानो राज परिवार सहित पूरी अयोध्या के सपनों पर कुठाराघात है। वन के कष्टों को सहन करते हुए सीता का अचानक लंकापति रावण के द्वारा छल-बल से हरण, फिर सीता का करुण विलाप सुनकर जटायु का दौड़कर आना और फिर पूरी ताकत से रावण जैसे बलवान से भिड़ जाना- यह इस कथा का बहुत ही भावुक कर देने वाला प्रसंग हैं। यद्यपि रामकथा अनेक बार पढ़ी गई है, परंतु इस पुस्तक को पढ़ते समय वे सारी घटनाएँ एक बार फिर आँखों के सम्मुख घटित हुई जान पड़ती हैं। स्वयं लेखक ने रामकथा लिखने की भावभूमि बताते हुए बहुत भावार्द्र होकर कहा है -

"रामकथा के न जाने कितने रूप और दृश्यावलियाँ हैं, कितने उतार-चढ़ाव, उन सबका स्वाद विलक्षण। रामकथा मेरे लिए एक अनंत समुद्र की तरह थी, उसमें अवगाहन करने का आनंद क्या है, यह बताना मुश्किल है।"

तुलसी की तरह ही आदरणीय प्रकाश मनु सर ने अपनी स्वरचित रामकथा को जाति, वर्ग, धर्म, संप्रदाय, वाद-विवाद से बहुत ऊपर उठाकर, उसके जरिए आधुनिक जीवन-शैली एवं जीवन-मूल्यों के अनुरूप नए प्रतिमानों को स्थापित करने का साधु प्रयत्न किया है। यह निश्चय ही सराहनीय है। निषादराज से राम की अनन्य मित्रता, हनुमान से अत्यंत प्रेम भाव से मिलना ये मामूली प्रसंग नहीं हैं। इनसे केवल राम के चरित्र की सरलता और उदात्तता ही नहीं पता चलती, बल्कि यह भी समझ में आ जाता है कि रामकथा वास्तव में भक्ति, स्नेह, त्याग और समर्पण की अद्‌भुत कथा है।

ऐसे ही रावण से युद्ध के लिए प्रयाण से पहले विशाल सागर पर पुल बनाना अत्यंत दुष्कर कार्य था। वनवासी राम के पास भला साधन ही कहाँ थे? पर उनके पास जन-बल था। वानर, भालू, रीछ सरीखे हजारों सरल वनवासियों के प्रेम की दौलत थी। फिर भला उनके काम कैसे रुक सकते थे? और फिर सारी दुनिया को चकित करने के साथ-साथ रावण के हृदय को दहलाने वाला यह अनोखा काम भी संभव हुआ। राम की प्रेरणा और उत्साहवर्धन ने नल, नील, हनुमान और वानर सेना को तो प्रेरित किया ही, एक नन्ही-सी गिलहरी भी अपार भक्ति भावना से भरकर प्रभु के इस पुनीत कार्य में अपना योगदान दे सकी। राम ने कहा -

"यदि भावना बड़ी और सच्ची हो, तो खेल-खेल में ही बड़े काम हो जाते हैं। फिर मिलकर काम करें तो कुछ भी असंभव नहीं है, क्योंकि तब हमारी शक्ति सौगुनी हो जाती है।"

ऐसे राम को भला कोई हरा सकता है? किसकी शक्ति है जो उनके आगे बढ़ते कदमों को रोक सके? यही कारण है कि राम की इतनी विशाल सेना के समुद्र पार कर लेने पर स्वयं लंकापति रावण भी दहल जाता है, और मन ही मन यह समझ भी जाता है कि राम कोई साधारण व्यक्ति नहीं हैं, वे तो परमात्मा के अवतार है, जिन्हें हराना उसके बस की बात नहीं है। अपना अंत उसे नजर आने लगता है।

फिर अनेक घटनाएँ घटती हैं। दोनों ओर की सेनाओं का भीषण युद्ध और रावण की सेना में खलबली। लक्ष्मण और मेघनाद के युद्ध में लक्ष्मण को शक्तिबाण लगना। हनुमान जी द्वारा लाई गई संजीवनी बूटी से लक्ष्मण का फिर से जी उठना। फिर कुंभकर्ण और मेघनाद का वध और अंत में रावण के वध के बाद सीता और राम का मिलन। अंततः राम अयोध्या लौटते हैं। वहाँ राम का भाई भरत के साथ ही गुरु वशिष्ठ, तीनों माताओं समेत सभी परिजनों और प्रजा से प्रेमपूर्वक मिलना। ये क्षण स्वर्गिक आनंद के क्षण हैं।

अयोध्या एक बार फिर खुशियों में झूम उठी। आज ही तो उसके सौभाग्य का सूर्योदय हुआ है। राम राजा बनेंगे, यह कल्पना आज साकार हो रही है। माताओं, भाइयों और हर प्रवासी का

रोम-रोम पुलकित होकर गा रहा है -

राम राजा बने,
राम लाखों दिलों के राजा बने,
आज खुश है अयोध्या, राजा बने।
राम राजा बने!

राम की प्रजा-वत्सलता, स्नेह और न्याय भावना ने रामराज्य की कल्पना को जन्म दिया और उसे साकार भी किया। तभी तो आज रामराज्य एक आदर्श राज्य की मनोरम कल्पना है। लेखक के शब्दों में -

"आज भी भारत का सपना, रामराज्य का सपना है, जिसे सारा संसार उत्सुकता से देख रहा है, ताकि वह भी उससे प्रेरणा लेकर खुद भी अपना सके।"

आज संपूर्ण विश्व में लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था को मान्यता एवं लोकप्रियता मिल रही है। परंतु गोस्वामी तुलसीदास जी ने लोकतांत्रिक न होते हुए भी, राजतंत्रीय शासन को अधिक से अधिक जन कल्याणकारी और जनोन्मुखी बनाने की वकालत की है, जहाँ राम केवल राजा मात्र नहीं, अपितु जनता के प्रिय, प्रजा-वत्सल, पालक अभिभावक के रुप में भी दृष्टिगत होते हैं और तुलसी की यही सम्यक दृष्टि आदरणीय प्रकाश मनु जी की कृति में देखी जा सकती है।

अपनी प्रकाशकीय अभिव्यक्ति में नरेंद्रकुमार वर्मा जी ने बिल्कुल सही लिखा है कि "आज की भौतिकता से उकताई दुनिया के लिए रामकथा शीतल मरहम की तरह है।...आशा है, इसे पढ़कर पाठक भारतीय संस्कृति से कुछ सीखेंगे और अपने जीवन को निखारेंगे। भारतीय संस्कति के महान आदर्श वर्षों से मानवता को प्रेरित करते रहे हैं।"

राम की अनूठी गाथा को खुद में सँजोए अपने ढंग की यह निराली पुस्तक साहित्य संसार का गौरव है, संग्रहणीय व पठनीय तो है ही।

आदरणीय मनु सर द्वारा रचित रामकथा 'फिर आए राम अयोध्या में' का अनुशीलन हमें यह बताता है कि यह पुस्तक सामाजिक जीवन मूल्यों और नैतिक आदर्शों का वह सुंदर आकाशदीप है, जिसके प्रकाश में संपूर्ण समाज अपनी राह चुन सकता है, और अपने आदर्श का निर्माण कर सकता है।

पद्मा मिश्रा, जमशेदपुर (झारखंड)
मो. : 08709148432श ई-मेल : padmasahyog@gmail.com

✧ ✧ ✧

संवेदनाओं की स्याही से लिखी प्रकाश मनु की मर्मस्पर्शी कविताएँ

श्रीमती नीलिमा करैया

प्रकाश का अर्थ है ऊर्जा, रोशनी!! रोशनी ज्ञान की, रोशनी भावनाओं की, संवेदनाओं की, सरलता की, मानव मात्र के प्रति प्रेम की, निर्मल और अत्यधिक स्नेहिल हृदय की! और मनु यानी मानव! वे ऐसे मानव नहीं कि जिनका प्रेम सिर्फ पुस्तकों या लेखन तक सीमित हो। उनका प्रेम सबसे है। वे स्वयं प्रकाश से आलोकित हैं, ऊर्जस्वित हैं और उनकी रश्मियाँ जिस दूरी तक जिस-जिस पर पड़ेंगी, वह भी उनके स्नेह-पुंज से रंजित हो जाएगा। ऐसे हैं प्रकाश मनु! और उनका यह प्रेम आपको सिर्फ उनकी बोली-बानी से ही नहीं, बल्कि उनके शब्दों में भी महसूस होगा। तभी तो हर सुख-दुख से परे, हमेशा मुसकराते रहने वाले इस व्यक्तित्व ने हमें ऐसा प्रभावित किया, मानो पूर्व जन्म का बंधन हो। दुनिया की भीड़ में खोए हुए वे अचानक ही मिल गए।

अपने गुरु रामदरश मिश्र जी के सौंवे जन्मदिवस के अवसर पर प्रकाश मनु जी ने 'पुरवाई' पत्रिका में उनके बारे में और उनकी रचनाधर्मिता के बारे में लिखा था। वह मनु जी से हमारा पहला परिचय था। उसे पढ़कर हमने जाना कि हम जब से साहित्य जगत से जुड़े हैं, अपने गुरु के प्रति इतना अधिक समर्पित व्यक्ति कोई भी नहीं देखा।

आदरणीय मिश्र जी की लेखकीय शख्सियत पर 10 भागों में लिखे गए संस्मरणात्मक लेख में मनु जी ने साबित किया कि श्रेष्ठ साहित्यकार कैसे होते हैं? एक इनसान कितना अच्छा हो सकता है! वहाँ हमने मनु जी को जाना और पहचाना। इस आत्मीय संस्मरण को पढ़ते हुए मनु जी की उदारता, सरलता, अपनत्व और वास्तविक प्रेम की हद नजर नहीं आती, चाहे कितनी ही दूर तक चले जाओ। ऐसे मनु जी पर लिखने के लिए अपने शब्दों के खजाने में से हम ऐसे शब्द ढूँढ़ नहीं पा रहे हैं, जो पूरी तरह हमारी भावनाओं को व्यक्त कर सकें। पर फिर भी आज हमें आदरणीय कलानाथ मिश्र जी द्वारा निकाले जा रहे 'साहित्य-यात्रा विशेषांक' के लिए मनु जी पर लिखना ही होगा, जिन्हें हम अत्यधिक प्यार से 'बाबू जी' कहते हैं।

जब-जब हमने मनु जी को पढ़ा, एक बात हमेशा महसूस की कि वे जिसके बारे में

लिखते हैं, लेख में अपने हृदय को उड़ेल देते हैं, जैसे अपनी रचनात्मक सामर्थ्य को आखिरी बूँद तक निचोड़ देना चाहते हों। मानो उनका बस चले तो उस संस्मरण या लेख को कभी खत्म ही न करें। उनका मन आसानी से तृप्त नहीं होता। हर व्यक्ति, जो उनके साथ जुड़ा है, उसके प्रति मनु जी का अगाध प्रेम, स्नेह और श्रद्धा का घड़ा निरंतर छलकता रहता है। यह अपनत्व की पराकाष्ठा है। यह मानो प्रेम में एकाकार हो जाने जैसी अनुभूति देता है।

कोई दो-ढाई दशक के अंतराल से आए मनु जी के नए कविता-संग्रह 'मैंने किताबों से घर बनाया है' में भी कुछ कविताएँ अपने दोस्तों के नाम से हैं, जिन्हें पढ़ते हुए उनके आत्मीय जीवन के रंगों में विभिन्न अनुभवों के साथ अंतरंगता महसूस होती है। जब इस संग्रह में आप 'धूप में पुश्किन के साथ कुछ दिन' के साथ ही प्यारे दोस्त तैलंग, रामविलास शर्मा, विष्णु खरे, दिविक रमेश, अमृता प्रीतम, चित्रकार हरिपाल त्यागी जैसे मित्रें और आत्मीय जनों पर लिखी कविताओं को पढ़ेंगे, तो आप स्वयं जान पाएँगे।

प्रकाश मनु जी सही अर्थों में अपने नाम को सार्थक करते हैं। प्रकाश का अर्थ है ऊर्जा, रोशनी!! रोशनी ज्ञान की, रोशनी भावनाओं की, संवेदनाओं की, सरलता की, मानव मात्र के प्रति प्रेम की, निर्मल और अत्यधिक स्नेहिल हृदय की! और मनु यानी मानव! वे ऐसे मानव नहीं कि जिनका प्रेम सिर्फ पुस्तकों या लेखन तक सीमित हो। उनका प्रेम सबसे है। वे स्वयं प्रकाश से आलोकित हैं, ऊर्जस्वित हैं और उनकी रश्मियाँ जिस दूरी तक जिस-जिस पर पड़ेंगी, वह भी उनके स्नेह-पुंज से रंजित हो जाएगा। ऐसे हैं प्रकाश मनु! और उनका यह प्रेम आपको सिर्फ उनकी बोली-बानी से ही नहीं, बल्कि उनके शब्दों में भी महसूस होगा। तभी तो हर सुख-दुख से परे, हमेशा मुसकराते रहने वाले इस व्यक्तित्व ने हमें ऐसा प्रभावित किया, मानो पूर्व जन्म का बंधन हो। दुनिया की भीड़ में खोए हुए वे अचानक ही मिल गए।

मनु जी के हृदय की विरल अनुभूतियों से पिरोया गया, उनका कविता-संग्रह 'मैंने किताबों से घर बनाया है' आज हमारे हाथ में है। इस संग्रह में उनकी काव्य बगिया की भिन्न-भिन्न सुवास से सुरभित करने वाले पुष्पों की महक है। संग्रह की कुल 52 कविताओं में उन्होंने लगभग हर विषय, हर भाव, हर रिश्ते को समेटा है। जीवन की एक से एक विरल स्थितियाँ, ऋतुएँ, प्रकृति, यहाँ तक कि स्वयं को भी उससे बाहर नहीं रहने दिया।

पर इन कविताओं पर बात करने से पहले हम उनके ही शब्दों में लिखे हुए आत्मकथ्य 'कुछ सतहें मेरी भी' को पढ़कर उन्हें और जानने का लोभ संवरण न कर पाए। उसे पढ़ते हुए हमने जाना कि वे थे तो विज्ञान के विद्यार्थी, लेकिन वास्तव में उनका जन्म साहित्य के लिए हुआ था। कहाँ विज्ञान में वास्तव का कठोर धरातल और कहाँ एक साहित्यकार का प्रेमिल कोमल हृदय। इतना अधिक कोमल कि वह बड़ा होकर भी बड़ा नहीं हो पाया। भूखे रहकर भी जिसने साहित्य-सेवा का संकल्प लिया हो, ऐसी संत प्रवृत्ति का साहित्य-प्रेम, साहित्य के प्रति प्रेम की उच्च अवस्था ही है।

बाबू जी से पहले पुस्तकों के प्रति इतना अधिक प्रेम हमने धर्मवीर भारती में ही देखा था, जिन्होंने अपना पलंग ही अपने पुस्तकालय में बिछवा लिया था। प्रेम चाहे जिससे भी हो, ऐसा प्रेम अपनी उत्कृष्ट अवस्था का ही साक्षी है। यहाँ प्रेम एक गहरे नशे की तरह महसूस होता है, जहाँ भूख-प्यास के अहसास का पता ही नहीं चलता।

कविता भावनाओं का उद्वेलन है। एक सक्रिय कवि द्वारा चाहे जितनी भी कविताएँ लिखी जाएँ, पर उसे कभी तृप्ति नहीं होती। लगता है कि अभी भी कुछ शेष है जो अंदर एक अकुलाहट-सी पैदा कर रहा है, और अपने ढंग से व्यक्त होना चाहता है। प्राणी मात्र के दर्द से भीगा कवि-हृदय कभी खाली हो ही नहीं पाता। तभी तो पंत जी ने कहा है -

वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान,
निकलकर आँखों से चुपचाप,
बही होगी कविता अनजान।

संग्रह की पहली ही कविता 'इन बारिशों में' कवि हृदय की निर्मलता की परिचायक है। जरा पढ़ें कविता की ये मार्मिक पंक्तियाँ, जो बहुत निर्मल हृदय से लिखी गई हैं -

बह गए वे जख्म
खाए जो अपने-परायों से न जाने कब-कब
अजाने
बह गए दर्द पुराने
बह गई टीस बहुत-सी अनकही
बह गया भीतर-भीतर रोता श्वान-सा
और कभी न पलटकर देखता धुमैला उफान।

इस कविता में अपमान की व्यथा, सारी तिक्तता, किए और अनकिए अपराधों का पश्चात्ताप, बरसों के सूखे उजाड़, अमृत संवेदन के कंकाल-मानो सब के सब बारिश के पानी के साथ तिरोहित हो गए, बह गए और कवि-मन रुई के गाले-सा हलका हो गया। एकदम पवित्र, मानो भीतर अंतरात्मा में नवीन दीपक जलाने के लिए तत्पर हो।

सच पूछिए तो मन के सारे दुख, सारे क्लेश, सारे भेद-भाव, ईर्ष्या, द्वेष, शत्रुता भुलाकर क्षमा-याचना करना बुद्ध हो जाने की तरह है। यों क्षमा माँगना इतना सरल भी नहीं। इनसान को अपना अहंकार दाँव पर लगाना पड़ता है, जो जोंक की तरह उससे चिपका रहता है। लोगों का अहंकार जहाँ बोलने पर नियंत्रण नहीं रख पाता, शब्दों को तोल नहीं पाता, वहाँ कवि-मन अपने किए और अनकिए अपराध के लिए क्षमा याचना कर, अंतर्मन के सारे दुर्भावों को निकालकर एक नवीन दृष्टि से संसार को देखता है।

यों मनु जी की 'इन बारिशों में' कविता पढ़कर समझ में आता है कि सिर्फ नजरिया बदलने से सारा संसार बदल जाता है। 'वसुधैव कुटुंबकम्' का भाव समस्त सृष्टि को मन की निर्मलता के साथ प्रेमपूर्ण दृष्टि से देखता है।

हर कवि की दुनिया उसकी अपनी बनाई हुई दुनिया होती है और उस पर उसका ही राज होता है। भले ही कवि आज की 'पैसावादी' दुनिया की नजरों में 'छोटा आदमी' हो, पर छोटे आदमी की भी अपनी दुनिया है, जहाँ धन-पशुओं का आना मना है। वहाँ सीधे-सादे, सरल लोगों की दिल की कली खिलती है। दिल की बातें, दिल के ही रास्ते और दिल की ही पगडंडियाँ हैं।

यों सच पूछिए तो कवि की दुनिया सारे संसार से अलग होती है, जैसे संत समाज अलग से नजर आता है, जो परोपकार से पोषित होता है। मानव मात्र के प्रति दयालु कल्याणकारी। यहाँ हमें कवि-मन मुक्तिबोध सदृश महसूस हुआ। कवि की दुनिया सरलता और सच्चाई से भरी होती है। उसमें द्वेष और कलुषता के लिए कोई जगह नहीं होती। 'एक कवि की दुनिया' कविता में कवि की ललकार कला और साहित्य की दुनिया के ताकतवर बाहुबलियों से कह कहती है -

कला और साहित्य की दुनिया के ताकतवर बाहुबलियों
और परम आचार्यो,
मेरी वह सीधी-सरल फूलों से महकती दुनिया कमजोर है
मगर इतनी कमजोर भी नहीं
कि तुम्हारे जैसे बाहुबलियों के घमंडी
गुस्से, फूत्कार और षड्यंत्र से
तड़क जाए!

आगे वे नन्ही चिड़िया के नन्हे घोंसले के हवाले से, पुरजोर उम्मीद और हौसले के साथ निरंकुश बाहुबलियों को चेताते हैं -

कल तुमने अपने पैरों से रौंदा था जो घोंसला नन्ही चिड़िया का
सुनो जरा सुनो -
कि आज फिर उसकी गुंजार सुनाई देती है
सुनाई देती रहेगी कल-परसों...युगांतर बाद भी!

यहाँ कवि-मन बेधड़क और निर्भय है, जो संसार में किसी से नहीं डरता। वह देश की आम जनता के साथ खड़ा है। इसलिए समूची जनता का बल ही उसका बल है।

एक बिल्कुल भिन्न तरह की कविता में कवि-मन जाड़े की धूप को गुलाबी फ्रॉक पहने हुए नन्ही बच्ची की तरह महसूस करता है। यहाँ मानवीकरण और माधुर्य भाव का अहसास होता है। न गरमी अधिक, न ठंड अधिक! यह मौसम का सुखद अहसास है, जो एक अबोध बच्ची से जुड़े बड़े कोमल बिंबों की शक्ल में सामने आता है।

इसी तरह 'पेड़ हरा हो रहा है' कविता उम्मीद और आशा की, हौसले और उत्साह की कविता है। और यह भाव इस संग्रह की अनेक कविताओं को पढ़ते हुए आप महसूस करेंगे, क्योंकि यह कवि की आस्था से जुड़ा हुआ है। प्रकाश मनु जी की कविताओं का स्थायी भाव भी यही है।

'सीता की रसोई' संग्रह की बहुत मार्मिक कविता है, जिसे बार-बार पढ़ने का मन होता है। यह शहराती लोगों की आरामदायक जिंदगी से परे, खड़िया के गोल घेरे में रेलवे स्टेशन पर एक गरीब महिला के खाना बनाने की स्थितियों पर लिखी गई है। जैसे माता सीता के लिए पंचवटी के आश्रम में लक्ष्मण द्वारा एक सुरक्षा घेरा बना दिया गया था, उसी तरह वह स्त्री खड़िया या चॉक से एक गोल घेरा बना लेती है। मानो उसके अंदर किसी का भी आना निषिद्ध हो। चार ईंटों को जोड़कर वह चूल्हा बनाती है। यहाँ तवे पर फूलती और नाचती रोटियों को देखकर कवि-मन अत्यधिक प्रफुल्लित है -

इस वक्त जबकि लगातार फूल की तरह खिल और खिलखिला रही हैं रोटियाँ
दूर एक झबरा कुत्ता हिलाते हुए दुम
गिरा रहा है लार....मगर क्या मजाल कि खड़िया के उस गोल के घेरे के भीतर
पड़ जाएँ उसके पैर
गो कि आकृष्ट कर रही हैं उसे तवे पर नाचती
गोल-गोल रोटियाँ
रोटियों की दूर-दूर तक उड़ती सुवास।
कि तभी उठी सीता माई इस गोल घेरे के भीतर से
कुत्ते के लिए फेंकीं दो रोटियाँ
एक रोटी रखकर दाल बढाई अधनंगी बच्ची की ओर
एक संतुष्ट नजर डाली उस पर
और फिर उसी तरह
जुट गई अपने काम में
प्लेटफॉर्म पर छितराई हुई भीड़ की
हजारों-हजार
उत्सुक आँखों से बेफिक्र!

इस समय वह गरीब स्त्री अन्नपूर्णा है और उसे देखकर कवि के मन में माता सीता का ही बिंब उभरता है। यह नए समय की सीता माई है, जिसे जिंदगी ने कठोर से कठोर हालात में भी जीने का मंत्र दिया है। सच तो यह है कि भूख से बड़ी इस संसार की कोई पीड़ा नहीं और रोटी से श्रेष्ठ अमृत तत्व भी नहीं। किसी आदमी के तप, सच्चाई और अंतःकरण की परख भी यहाँ हो जाती है।

इस कविता को जितनी बार भी पढ़ें, इसके नए अर्थ सामने आते हैं। यहीं मनु जी एक बात याद आती है, जो काफी अरसे से हमारे जेहन में लिखी हुई है कि -

"जो सहृदय पाठक केवल शब्दों को ही कविता नहीं मानते, बल्कि शब्द और शब्द तथा पंक्ति और पंक्ति के बीच के खाली स्थान को भी पढ़ना जानते हैं, वही सही मायने में कविता की समझ रखते हैं।"

हमें याद नहीं कि मनु जी का यह कथ्य हमने कब और कहाँ पढ़ा, पर उनकी इस बात से शायद ही किसी की असहमति हो। बल्कि कविता को पढ़ने की सही दृष्टि इससे मिलती है। कविता सरसरी तौर से पढ़ने की चीज नहीं। उसमें डूबना पड़ता है और इसलिए हर बार पढ़ने पर उसमें से नए-नए अर्थ, नए आशय निकलकर सामने आते हैं।

इस संकलन में पिता को लेकर दो कविताएँ हैं। दोनों ही बहुत मार्मिक। पहली 'पिता के लिए एक कविता' और दूसरी 'खाली कुर्सी का गीत'। दोनों कविताओं को पढ़ते हुए आँखों से बरबस आँसू निकल पड़ते हैं। कौन ऐसा कठोर होगा, जो इन्हें पढ़कर भीग न जाए! पिता हमारी जिंदगी में सचमुच आसमान हैं, घर की छत की तरह, घर की नींव की तरह। इसलिए पिता कहते ही पूरे शरीर में एक नवीन ऊर्जा, एक चेतना-सी संचरित होने लगती है। इस पूरी कविता में पिता के लिए एक विशाल बरगद का बिंब उभरकर आता है। हमें बरगद से उपेंद्रनाथ अश्क का 'सूखी डाली' एकांकी याद आ गया। उसमें परिवार के प्रति दादा जी के भाव भी कुछ ऐसे ही थे। एक छोटा बच्चा जब पिता की उँगली पकड़कर चलता है तो वह अपने आप को सबसे अधिक सुरक्षित महसूस करता है -

पिता हमारी दुनिया में वो थे जो सिर्फ
पिता ही हो सकते थे
हमारी कल्पना के थे वे सबसे बलशाली नायक
सबसे सुंदर, समरथ रुआबदार और फैले, ओर से छोर तक
कुछ भी नहीं था जो उनसे बाहर हो इस विशाल दुनिया में
और जिसे वे हाथ बढ़ाकर हासिल न कर सकते हों
कुछ भी नहीं जो उनके होते हुए हमें छू जाता या कि दुखाता हमारा माथा।

इतनी निश्चिंतता और इतनी निर्भयता पिता के आश्रय में ही मिल सकती है। पिता ही अपने व्यक्तित्व से सिखाते हैं कि बड़ा कैसे हुआ जाता है, और यह भी कि छोटा तो इनसान अपने मन से होता है -

पिता ने बड़ा होना सिखाया
अपने से बाहर निकलकर बड़े होने का भान
इसलिए बुरे दिनों में भी याद रहा

कि आदमी छोटा अपने मन से होता है
और गरीबी में भी गुरबत होती है।

सच है यह, कि पिता के न रहने पर भी कोई इनसान, चाहकर भी पिता की छाया से मुक्त नहीं हो पाता। वे हर जगह साथ होते हैं। कहीं सही राह पर चलने का निर्देश देते हुए, कहीं हमें सँभालते हुए, कहीं दुख में पुचकारते हुए। आज जब माता-पिता वृद्धाश्रम में शरणागत की जिंदगी जी रहे हैं और वृद्ध आश्रमों का जाल-सा बिछ रहा है, यह कविता हमारी जिंदगी में पिता के होने और उनकी महत्ता की दिग्दर्शिका की तरह है। कविता की निम्नलिखित पंक्तियाँ पिता के होने को हौसले के रूप में देखती हैं -

यों भी दुनिया में कोई कहीं भी जाए
कितना ही लड़े-झगड़े अकुलाए
पिता की छाया से कौन जा सका है बाहर?
हमारी आदतों और सपनों में, ऊँचाइयों-चढ़ाइयों और टूटन और ध्वंस में
भीतर-बाहर साथ-साथ चल रहे होते हैं पिता
समझाते हुए कि बेटा! यहाँ खतरा है!

'खाली कुर्सी का गीत' भी पिता पर लिखी गई बड़ी अद्‌भुत कविता है। यों तो कुर्सी के खेल बड़े निराले हैं। अपने आप में जीवित न होते हुए भी वह बहुत महत्वपूर्ण होती है। पर सच तो यह है कि कुर्सी का महत्व उस पर बैठने वाले व्यक्ति से होता है। उसके सारे क्रिया-कलाप उस पर बैठने वाले से ही जुड़े रहते हैं और अगर वह कुर्सी खाली है, तो वह अर्थहीन है। उसके साथ उस पर बैठने वाले की यादें, उसके काम और स्मृतियाँ जुड़ी होती हैं और वे बार-बार याद आती हैं।

कुर्सी से जुड़े इस गीत का संबंध परिवार से है। यह परिवार के मुखिया की कुर्सी है, पिता की कुर्सी है, जिनके होने से कुर्सी का एक अलग ही महत्व था, और उसके आसपास जिंदगी की तमाम हलचलें थी। इस कारण कुर्सी में भी जैसे जान सी पड़ गई थी -

वह आदमी था तो सब था
आदमी था तो बहुत से वादे थे
नए-पुराने
बहुत सी लंबी-चौड़ी बहसें और योजनाएँ...
किताबें थीं और किताबों की पूरी एक दुनिया।
इस कुर्सी के इर्द-गिर्द हँसते थे ठहाके
गाता था प्रेम
नाचती थीं किताबें
और हवा में थरथराते थे शब्द
बहुत कुछ था जो जिंदा था और जिंदादिली से भरा।

इस पर बैठने वाला आदमी चला गया तो
जैसे सब चला गया...
और बच गया बस कुर्सी का एक खाली-खाली गीत।

जिस आत्मीयता से पिता का संरक्षण रहा, उनके जाने के बाद उनकी खाली कुर्सी के लिए लिखा यह गीत स्मृतियों की अतल गहराई तक ले जाता है। हालाँकि लगता है, इस कविता में मनु जी ने कुर्सी पर बैठने वाले पिता में कहीं न कहीं खुद को भी शामिल कर लिया है। इसलिए इस हलचलों भरी कुर्सी पर बैठने वाले व्यक्ति की शक्ल कई बार खुद उनसे भी मिलने लग जाती है।

अलबत्ता, ये पिता ही हैं, जिनके कारण इस कुर्सी में जान थी, और उसका होना भीतर तक जान पड़ता था। वरना खाली कुर्सी के लिए आत्मा बिना किसी कारण के नहीं भीगती, न ही भाव इस तरह छलकते हैं। निस्संदेह, यह संग्रह की बिल्कुल अलग ढंग की, और बड़ी मर्मस्पर्शी कविता है।

'मैंने किताबों से घर बनाया है' कविता इस पुस्तक की शीर्षक कविता है। निश्चय ही इस कविता का वजन हर दृष्टि से अन्य कविताओं से भारी है। होना भी चाहिए, क्योंकि शीर्षक पुस्तक की पहचान है। इस कविता की भावनात्मक गहराई अंतहीन है। किताबों से प्रेम भी किसी नशे से कम नहीं होता। मनु जी का किताबों से प्रेम भी नशे की तरह है, और नशा भी कैसा? सच पूछिए तो यह संवेदनाओं के अंतहीन रास्ते पर सफर करने का जुनून है। कवि-मन जीवन के हर भाव, हर पल को महसूस करता है। वह ममतामयी माँ की तरह इस जगत के सारे दुख देखता है और उसे दूर करने का उपक्रम करता है। कौन कहता है कि तलवार ही काटती है, मारती है। शब्द भी वह सब कुछ करने में समर्थ हैं, जितना कुछ संसार में होता है या हम अपने आसपास देखते हैं। करुणा और सहानुभूति की दृष्टि से, परस्पर सहयोग की दृष्टि से, प्रेम की दृष्टि से, गुस्से और विद्रोह की दृष्टि से।

लिखते वक्त एक कवि का माँ की तरह सहृदय होता है। उसकी भावांजलि एक परिचारिका की तरह बहुत कुछ सहजने की ताकत रखती है, पर दूसरी ओर अत्याचार पर उसका क्रोध शब्द-शिव का तांडव हो सकता है। इसी तरह राजनीतिक, सामाजिक और पारिवारिक क्षेत्र में उसका कुछ कहना एक नैतिक हस्तक्षेप की तरह होता है। शब्द को ब्रह्म ऐसे ही नहीं कहा गया। लिखते समय वही ब्रह्म तत्व कवि-मन की संवेदनाओं के रक्त से अनुरंजित होकर, पाठकों के हृदय में उतर जाता है। कवि-मन का उद्वेलन उन्हें भीतर तक महसूस होता है। और यह सब जब भी होता है, तब एक नई किताब का जन्म होता है, और कवि के अंतरतम से ये शब्द निकलते हैं, 'मैंने किताबों से घर बनाया है'।

यह शीर्षक कहता है पाठकों से कि, "मुझे महसूस करो! महसूस करो कि घर कैसे बनता है?" किताबें ही हैं, जो कवि को अमर कर देती हैं। जैसे हमारा परिश्रम एक घर को बनाने में

लगता है, वही परिश्रम इस शीर्षक में परिलक्षित होता है। मानव मन का एक ही ख्वाब, एक ही चाहत है। जहाँ उसे स्थायित्व महसूस होता है, सुकून मिलता है, शांति मिलती है, जहाँ अपना परिश्रम पोषित होता है, महसूस होता है, नजर आता है, वह है घर। और यह किताबों का घर, जिसमें भावनाओं की नींव है, संवेदनाओं की दीवारें। कवि का आत्म-तत्व अपने भिन्न-भिन्न रंगों में आत्मकथात्मक रूप से कविताबद्ध होकर पुस्तकों के इस घर के कोने-कोने में नजर आएगा। पुस्तकों से बने इस घर में पुस्तकें ही आपको एक कमरे से दूसरे कमरे तक ले जाएँगी। जरा पढ़ें तो प्रकाश मनु जी की ये पंक्तियाँ -

मैंने एक घर बनाया है,
किताबों से
किताबों से एक घर बनाया है मैंने
जिसके दरवाजे किताबों के हैं, खिड़कियाँ किताबों की
किताबें हैं जो एक कमरे से दूसरे कमरे तक
ले जाती हैं
और फिर दरवाजों में दरवाजे
कमरों में से तमाम-तमाम कमरे खुलते हैं।
और यह कोई तिलिस्म नहीं, हकीकत की है दुनिया
जिसमें हर कमरे की है अलग रंगत
अलग ऊष्मा
हर कमरे की है एक दुनिया
जिसमें कोई अजब दीवाना, सत्यखोजी,
अपनी खोज में जुटा है।

यहाँ आपको एकरसता का जरा भी आभास नहीं होगा। इसलिए कि यहाँ राग-विराग और भावनाओं की पूरी एक जीती-जागती दुनिया है -

यह घर जो किताबों से बनाया है मैंने
उसका आसमान जरा अलग है
उसमें एक नहीं
कई ध्रुव तारे हैं ज्योतित
उसमें एक गोर्की है, एक प्रेमचंद, एक निराला, एक टैगोर, टॉलस्टाय
दोस्तोवस्की चेखव, पुश्किन, सार्त्र और शेक्सपियर
और और भी तमाम ग्रह-उपग्रह, सूरज-चाँद
नहलाते रोशनियों से धरती-आकाश....!

और यों कवि ने मानो बिन कहे यह स्पष्ट कर दिया कि उसकी रचनाओं में एकरसता नहीं है। उनकी आत्मकथात्मक कविताएँ उनकी आत्मा के रंग में ही रँगी हुई हैं। भावनाओं के असीम रस में डूबकर, हर पड़ाव पर ठहरकर, हर रिश्ते की गंध को महसूस करते हुए, वे अपने अहसास को संवेदनाओं की स्याही से अंकित कर, उसमें अपने अनुभवों के रंग भरते है। प्रकाश मनु जी की कविताएँ पढ़ने के बाद दिमाग से निकलती नहीं, ठहर ही जाती हैं।

सारी भावनाएँ, सारी संवेदनाएँ और उनके जितने भी रूप, जितने भी रंग होते हैं, सभी को प्रकाश मनु जी ने होली के रंगों की तरह इस किताब में कविताओं के रूप में भी बिखेर दिया है। वे आत्मा की कलम से लहू की स्याही में डुबो-डुबोकर लिखते हैं। कविता के प्रसव की पीड़ा को वे भीतर तक महसूस कर पाते हैं। तभी ऐसी सर्जना का जन्म होता है, जो सचमुच दिल से दिल तक पहुँचती है।

यों लिखने को तो बाबू जी की हर कविता ऐसी है, जिस पर जितना चाहे लिखा जाए, कम लगता है। उनके प्रति अनेक शुभकामनाओं के साथ लेखकीय सीमा की मर्यादा के तहत मैं अपनी कलम को यहीं विराम देती हूँ।

श्रीमती नीलिमा करैया, दहेज नगरी स्टील, कसेरा मोहल्ला, नर्मदापुरम (मध्य प्रदेश), पिन-610001
मो. : 07400979716

✧ ✧ ✧

हम उनसे इतना प्रकाश ले सकते हैं कि हमारी आत्माएँ जगमगा उठेंगी

अभिषेक मिश्र

यह सूची ही काफी हद तक बता देती है कि मनु जी के मन का आयतन कितना बड़ा है और कितनी विविधताओं भरे लेखकों के साथ वे इतना आत्मीय संवाद साध सके। निश्चय ही यह कोई आसान काम नहीं रहा होगा। पर जैसा कि मैंने पहले भी कहा है, मनु जी का दिल बहुत बड़ा है और उसमें विविध शख्सियतों वाले हमारे बड़े लेखकों के रह पाने के लिए काफी जगह है। फिर मनु जी के भीतर विचारों का एक लोकतंत्र भी है, जिससे वे अपने से भिन्न, यहाँ तक कि विरोधी विचारों का भी सम्मान कर सकते हैं। यह एक बड़ा ही दुर्लभ गुण है, जो मनु जी को हमारे समय के बहुत सारे लेखकों की भीड़ से अलगाता भी है। यों यह पुस्तक हमारे दौर की बहुत-सी असहिष्णुताओं का जवाब भी है और यह काम प्रकाश मनु जी ने कैसे कर दिखाया है, यह जानने के लिए 'साहित्य मनीषियों की अद्‌भुत दास्तानें' पुस्तक का हर शब्द बड़े ध्यान से पढ़ना होगा।

हिंदी के सुविख्यात कवि-कथाकार और संपादक प्रकाश मनु जी के निराले संस्मरणों की पुस्तक 'साहित्य मनीषियों की अद्‌भुत दास्तानें' डायमंड बुक्स से हाल ही में प्रकाशित हुई है। हिंदी अकादमी के साहित्यकार सम्मान और साहित्य अकादमी के प्रथम बाल साहित्य पुरस्कार से सम्मानित, अपने ढंग के विलक्षण धुनी लेखक प्रकाश मनु जी की यह पुस्तक सभी को पढ़नी चाहिए। इसलिए कि इसमें हिंदी के दिग्गज साहित्यकारों के ऐसे गहगहे, अंतरंग संस्मरण हैं, जिनका कोई जोड़ नहीं।

प्रकाश मनु जी का पूरा जीवन हिंदी के बड़े साहित्यकारों की संगत में गुजरा है। लोक यायावर देवेंद्र सत्यार्थी, शीर्ष आलोचक रामविलास शर्मा, बाबा नागार्जुन, त्रिलोचन, रामदरश मिश्र, शैलेश मटियानी, विष्णु खरे, डा. माहेश्वर, हरिपाल त्यागी, शेरजंग गर्ग और बल्लभ सिद्धार्थ समेत कितने ही सिरमौर साहित्यकार हैं, जिनका आत्मीय सान्निध्य उन्हें मिला। इसीलिए वे बड़े गर्व के साथ कहते हैं कि "मेरे जीवन का सबसे बड़ा सौभाग्य यह है कि मुझे हिंदी के बड़े साहित्यकारों के चरणों में बैठकर सीखने को मिला। मेरे जीवन की सबसे बड़ी दौलत भी यही है, दुनिया का बड़े से बड़ा खजाना या बड़े से बड़ा पुरस्कार भी जिसका मुकाबला नहीं कर सकता!"

अन्य लेखकों की तरह मनु जी से भी यह

प्रश्न बहुत बार पूछा जाता है कि वे लेखक ही क्यों हुए, कुछ और क्यों नहीं। यह पुस्तक जाने-अनजाने इसका जवाब भी है। 'साहित्य मनीषियों की अद्‌भुत दास्तानें' पुस्तक पढ़ते हुए आपको कदम-कदम पर इसका जवाब मिलेगा। साथ ही प्रकाश मनु जी के लेखक बनने का क्रम आपको समझ में आएगा कि कैसे बड़े साहित्यकारों के सान्निध्य में हुई मुलाकातों से जो कुछ मिला, उससे एक वेगवाही झरने की सी क्षिप्रता और आंतरिक आह्लाद से विकल होकर उन्होंने अपनी झोली भर ली।

मनु जी का साहित्य उतना ही सीधा, सरल और भावनात्मक है, जितना उनका अपना व्यक्तित्व। वे एक छोटे से बच्चे की तरह सीधे-सरल और प्रेममय हैं। निस्संदेह, जो व्यक्ति अथाह स्नेह से भरा हुआ हो, वही ऐसी भावमग्न कर देने वाली कहानियाँ लिख सकता है, जिनमें प्रेमचंद जैसी सादगी, सहजता और गहराई है। और फिर कहानियाँ ही क्यों? उनकी लिखी कविता हो, या उपन्यास, संस्मरण, रेखाचित्र, या फिर समीक्षा और आलोचनात्मक लेख ही क्यों न हों, सब आपको अपने साथ बहा ले जाते हैं। यही कारण है कि प्रकाश मनु अपने समकालीन अन्य लेखकों से इतने अलग हैं और उन्हें प्यार करने वाले पाठकों की बहुत बड़ी संख्या है। ऐसे पाठक और प्रशंसक, जो उनके लिखे साहित्य को ढूँढू-ढूँढ़कर पढ़ते हैं। सच ही उन्होंने हिंदी के बड़े और दिग्गज साहित्यकारों के सान्निध्य में जो कुछ सीखा और पाया, वही आज उनकी कलम की शक्ति और दुर्वह आकर्षण भी है।

यही कारण है कि 'साहित्य मनीषियों की अद्‌भुत दास्तानें' पुस्तक पढ़कर आपको मनु जी के लेखक बनने की पूरी कहानी का पता चलेगा, कि कैसे साहित्यकारों के आस-पास रहकर उन्होंने अपनी लिखने की उर्वरा जमीन को मजबूत किया है और उसे विस्तार भी दिया है। फिर पुस्तक की एक बड़ी खासियत यह भी है कि पढ़ते हुए एक आम पाठक को यह कहीं भी बोझिल नहीं लगती। इसमें कुछ ऐसी किस्सागोई है कि नदी की धारा की भाँति बहती चली जाती है। शब्दों का चयन और वाक्यों का विन्यास भी बिल्कुल सटीक है तथा करीब साढ़े चार सौ पृष्ठों की इस पुस्तक की रोचकता अंत तक बरकरार रहती है।

मनु जी के इन संस्मरण और साक्षात्कारों का 'पहल', 'वागर्थ', 'नया ज्ञानोदय', 'वीणा', 'अक्षरा', 'साहित्य अमृत', 'साहित्य आजतक' तथा 'सेतु' जैसी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में छपना भी इनकी गुणवत्ता को दिखाता है। कहना न होगा कि इन सभी पत्रिकाओं की साहित्य जगत में ऊँची जगह है और ये पर्याप्त चर्चा में रही हैं। इसके अलावा विस्तृत आकार-प्रकार के इक्कीस संस्मरणों को एक बृहत् पुस्तक के कलेवर में संगृहीत करने के पीछे लेखक का मूल भाव यही रहा होगा कि हमें अपने पुरखों को कभी नहीं भूलना चाहिए, जिन्होंने सचमुच हमें गढ़ा है।

उन बड़े और दिग्गज साहित्यकारों को एक बार फिर से स्मृतियों में लाना ही लेखक का उद्देश्य है। और जिन बड़े साहित्यकारों ने साहित्य-सृजन के लिए अपना पूरा जीवन समर्पित कर दिया, उन्हें इतनी जल्दी भुला दिए जाने के दुख और अथाह पीड़ा ने ही लेखक से यह पुस्तक

लिखवा दी, जिसमें साहित्य जगत की इक्कीस सर्वाधिक उज्ज्वल मणियों को माँ सरस्वती के एक सुंदर गलहार के रूप में पिरोया गया है। कहना न होगा कि हिंदी के बड़े साहित्यकारों के प्रति मनु जी के असीम आदर और सम्मान की भावना के कारण ही, अपने ढंग की यह विशिष्ट और अद्वितीय कृति आपके समक्ष उपस्थित है।

जैसा कि पहले भी कहा गया है, इस बृहत् ग्रंथ में मनु जी ने तीन पीढ़ियों के कुल 21 बड़े साहित्यकारों की संस्मरणात्मक जीवनियों को शामिल किया है। ये स्वनामधन्य साहित्यकार हैं - लोकसाधक देवेंद्र सत्यार्थी, विष्णु प्रभाकर, रामविलास शर्मा, बाबा नागार्जुन, त्रिलोचन, भीष्म साहनी, रामदरश मिश्र, नामवर सिंह, विद्यानिवास मिश्र, श्यामाचरण दुबे, धर्मवीर भारती, रघुवीर सहाय, शैलेश मटियानी, कन्हैया लाल नंदन, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, लाखन सिंह भदौरिया सौमित्र, डॉ. शेरजंग गर्ग, बालस्वरूप राही, हरिपाल त्यागी, विष्णु खरे और बल्लभ सिद्धार्थ।

यह सूची ही काफी हद तक बता देती है कि मनु जी के मन का आयतन कितना बड़ा है और कितनी विविधताओं भरे लेखकों के साथ वे इतना आत्मीय संवाद साध सके। निश्चय ही यह कोई आसान काम नहीं रहा होगा। पर जैसा कि मैंने पहले भी कहा है, मनु जी का दिल बहुत बड़ा है और उसमें विविध शख्सियतों वाले हमारे बड़े लेखकों के रह पाने के लिए काफी जगह है। फिर मनु जी के भीतर विचारों का एक लोकतंत्र भी है, जिससे वे अपने से भिन्न, यहाँ तक कि विरोधी विचारों का भी सम्मान कर सकते हैं। यह एक बड़ा ही दुर्लभ गुण है, जो मनु जी को हमारे समय के बहुत सारे लेखकों की भीड़ से अलगाता भी है।

यों यह पुस्तक हमारे दौर की बहुत सी असहिष्णुताओं का जवाब भी है और यह काम प्रकाश मनु जी ने कैसे कर दिखाया है, यह जानने के लिए 'साहित्य मनीषियों की अद्‌भुत दास्तानें' पुस्तक का हर शब्द बड़े ध्यान से पढ़ना होगा।

पुस्तक में पहला संस्मरण देवेंद्र सत्यार्थी जी पर है, जिन्हें मनु जी अपना कथागुरु मानते हैं। उनके पास बैठकर प्रकाश मनु जी ने सीखा कि लिखना क्या होता है। सिर्फ लिखना ही नहीं, और भी बहुत कुछ उन्होंने सत्यार्थी जी से ही सीखा। इनमें जीवन जीने के कुछ अनोखे गुर भी हैं, जो किताबों से नहीं, बल्कि सत्यार्थी जी जैसे महान लेखकों की संगत में ही सीखे जा सकते हैं। खुद मनु जी लिखते हैं -

"सो दिल्ली मुझे बेगाना सा शहर लगता था। अंदर कोई कहता था, 'यहाँ से भाग चलो, प्रकाश मनु। यह शहर तुम्हारे लायक नहीं है या शायद तुम ही इसके लायक नहीं हो...!'

"मुझे लगता था, भला कोई सीधा-सादा आदमी दिल्ली में कैसे रह सकता है? पर सत्यार्थी जी से मिला तो लगा, 'अरे, ये तो मुझसे भी सीधे हैं। बिल्कुल बच्चों की तरह।...अगर ये दिल्ली में रह सकते हैं तो मैं क्यों नहीं?"

इसी तरह पहली बार सत्यार्थी जी ने ही मनु जी को जीना सिखाया। उन्होंने एक मीठी फटकार लगाते हुए कहा, "तुम अपने आनंद में आनंदित क्यों नहीं रहते हो?...खुश रहा करो मनु।...तुमने कोई अपराध थोड़े ही किया है। खुलकर हँसना सीखो, खुलकर जियो।...हमें यह जीवन आनंद से जीने के लिए मिला है। अगर तुम यह सीख लो, तुम्हें कोई मुश्किल नहीं आएगी।"

और सचमुच सत्यार्थी जी के नजदीक आते ही, मनु जी के आगे रास्ते खुलते चले गए थे। और जैसा कि वे कहते भी हैं, उन्हें "जीने का तरीका आ गया था।"

इसी तरह सत्यार्थी जी ने ही पहली बार मनु जी को साहित्य और कला का एक अनोखा गुर बताया था, जिसे वे आज तक नहीं भूले। ऐसे विरल किस्म के साहित्यकार देवेंद्र सत्यार्थी की विलक्षण शख्सियत बारे में मनु जी लिखते हैं, तो उनके शब्द-शब्द से मानो भावनाओं की नदी बहने लगती हैं -

"सच तो यह है कि लोकगीत की खोज करते-करते देवेंद्र सत्यार्थी खुद एक लोकगीत बन गए, जिसकी मार्मिक धुन और करुणा हमारे अंतरतम को बेधती है और हमारे कंधे पर हाथ रखकर हमें कुछ और निर्मल, कुछ और संवेदनशील इनसान बनने को न्योतती है! यहाँ तक कि गौर से सुनें तो समूची बीसवीं सदी के साहित्य और संस्कृति की 'मर्म-पुकार' उसमें सुनाई दे सकती है! इससे बड़ा और सार्थक जीवन भला सत्यार्थी जैसे विलक्षण लोकयात्री का और क्या हो सकता था।"

इतने सुंदर और मार्मिक भाव कि पढ़ते हुए आप भी भावनाओं के एक तीव्र आवेग में बहने लगते हैं। अगर आप गंभीरता से पुस्तक का आकलन करेंगे तो पाएँगे इन बड़े-बड़े साहित्यकारों के बहाने, असल में मनु जी खुद को ही लिख रहे है।

लेकिन नहीं, लिख तो वे साहित्यकारों के बारे में ही रहे हैं, और साथ-साथ यह भी रेखांकित करते जाते हैं कि भला इन दिग्गजों में ऐसा क्या है कि वे याद आते हैं और बार-बार याद आते हैं। और कि हम क्यों नहीं भूलते इनको? क्योंकि जिस दिन हम अपने प्रेरणाशील पुरखों और पुरानी जड़ों को भूल जाएँगे, उस दिन हमारा अस्तित्व ही नहीं बचेगा। हम सूखे पेड़ के समान हो जाएँगे, और अपनी हरियाली खो देंगे। इस आमद-रफ्त में आने आप को बचाए रखने के लिए सबसे ज्यादा जरूरी है कि हम जितना हो सके, अपने पुरखों से सीखें और उनका आशीर्वाद हम सभी पर बरसता रहे।

ऐसे ही मनु जी बरसों तक रामविलास जी के सान्निध्य में रहे। रामविलास शर्मा का व्यक्तित्व निर्भीक और खासा तेजस्वितापूर्ण है, और उन्होंने अकेले दस आलोचकों के बराबर काम किया है। वे हिंदी के महान साहित्यकार, विचारक, सभ्यता समीक्षक और आलोचक थे। मनु जी ने रामविलास शर्मा सरीखे दिग्गज साहित्यकार के सान्निध्य में क्या कुछ सीखा, और

कैसे रामविलास जी बिना कुछ कहे, चुप-चुप उन्हें गढ़ रहे थे, इस बारे में आइए, मनु जी से ही सुनते हैं -

"...पुरस्कार और सम्मानों के लिए उनकी घोर विरक्ति ने मेरी आँखें खोल दीं और बिन कहे समझा दिया कि एक सच्चा लेखक क्या होता है। एक लेखक का स्वाभिमान क्या होता है! बहुत से लोग और संस्थाएँ उन्हें आदर से बुलाती थीं, सम्मानित करना चाहती थीं। पर रामविलास जी के लिए उनका काम ही सब कुछ था। अपना काम बीच में छोड़कर, यहाँ-वहाँ सम्मानित होने चल देना उन्हें बड़ा ही हेय, बल्कि हास्यास्पद लगता था। उनका मानना था कि किसी लेखक का सच्चा सम्मान तो उसका साहित्य पढ़ना है। इसलिए कोई उन्हें सम्मानित करने के लिए आमंत्रित करता तो उनका जवाब होता था, आप मेरा लिखा हुआ पढ़ लीजिए। बस, यही मेरा सम्मान है!

"कहना न होगा कि रामविलास जी का यह तरीका मुझे बहुत भाया और उसने पुरस्कारों के मायाजाल के साथ-साथ, बहुत तरह के भटकावों से भी मुझे बचाया। एक ऐसे समय में जब युवा लेखकों को ही नहीं, खासे पहुँचे हुए साहित्यकारों को भी मैं पुरस्कारों के लिए लालायित होकर यहाँ-वहाँ दौड़ते देखता हूँ, रामविलास जी की दृढ़ता मुझे राह दिखाती रही है।"

इसी तरह रामविलास जी से प्रकाश मनु ने लोभ और लालच से परे, एक खुद्दार लेखक के रूप में दृढ़ता और निर्भीकता से अपनी बात कहना सीखा। वे लिखते हैं -

"ऐसे बुरे वक्त में जब साहित्य की जमीन पर लोभ-लालच की फिसलन कहीं ज्यादा है, रामविलास जी ने मुझे मजबूती से पैर जमाकर, पूरे स्वाभिमान के साथ सिर उठाकर खड़े होने की ताकत दी। यही मेरी जीवनशक्ति भी है, जो मुझे बुरे से बुरे समय और हालात में भी हारने नहीं देती और कलम के स्वाभिमान के साथ जीने के लिए प्रेरित करती है, जैसे स्वयं रामविलास जी जिए। वे अंतिम साँसों तक काम करते हुए गए। मैं भी मन ही मन यही प्रार्थना करता हूँ कि अंतिम साँसों तक काम करते हुए खुशी-खुशी इस दुनिया से जाऊँ!"

ऐसे ही और बहुत से रोचक और सीख देने वाले प्रसंगों से सराबोर है यह पुस्तक, जिसका हर कोना आपको भावनात्मक और वैचारिक रूप से अधिक समृद्ध और उन्नत बनाने का काम करती है।

अगर मैं पुस्तक में शामिल सभी साहित्यकारों की शख्सियत और उनसे जुड़े रोचक प्रसंगों की चर्चा करूँ, तो बात बहुत लंबी हो जाएगी। फिलहाल मैंने कुछ बानगियाँ ही प्रस्तुत की हैं। अवसर मिला तो आगे फिर कभी इस पर विस्तृत बात होगी। अगर हम सभी साहित्यकारों से जुड़े संस्मरणों के शीर्षक भी पढ़ें तो पुस्तक का जैसे पूरा सार ही सामने आ जाता है। इससे मनु जी की कलम का कमाल और लेखन कला की बारीकी पता चलती है कि वे किस तरह अपने जीवन में घटित होने वाले छोटे से छोटे प्रसंगों को भी विचारों की अजस्र धारा से जोड़कर उनमें एक नई चमक ले आते हैं।

यों तो पुस्तक पढ़ने के बाद ऐसी बहुत सारी बातें हैं जो अब भी मन में उथल-पुथल सी मचा रही हैं, लेकिन उन सबको लिख पाना शायद कठिन है। उदाहरण के लिए भाषा और शिल्प की बात करें तो मनु जी कविता लिखें या कहानी, उपन्यास, संस्मरण, आत्मकथा, रेखाचित्र, या फिर कोई आलोचनात्मक लेख, वे बहुत ही सहज तरीके से अपनी बात कहते हैं। उन्हें प्रेमचंद की तरह सीधी, सहज और किसी नदी सरीखी बहती हुई भाषा अधिक प्रिय है। अधिक स्पष्ट रूप से कहूँ, तो 'साहित्य मनीषियों की अद्‌भुत दास्तानें' पुस्तक में मनु जी की भाषा बोलचाल की एकदम सादा और खुली भाषा है, जिसमें लोगों और विचारों की आवाजाही निरंतर चलती रहती है।

इसके साथ ही कुछ एकदम ग्राम्य या देहाती शब्द उनके यहाँ आकर एक अलग ही प्रभाव छोड़ते हैं। इसी तरह हमारी रोजमर्रा की बोलचाल में आ गए अंग्रेजी शब्दों का भी वे निस्संकोच प्रयोग करते हैं। फिर एक बात यह बात भी है कि पुस्तक के बहुत से संस्मरणों में लेखकों से मुलाकात या साक्षात्कार की स्मृतियाँ छाई हुई हैं। तो जाहिर है, कि इसमें बतकही की गुंजाइश कहीं ज्यादा है और मनु जी बड़े अनोखे ढंग से उसे आगे बढ़ाते हैं। यों इन संस्मरणों में संस्मरण और साक्षात्कार, दोनों का ही मिला-जुला रंग मिलेगा। यही इस पुस्तक की खूबसूरती भी है, जो आपको अपनी ओर खींचती है।

एक और उदारहण देखिए। पुस्तक में भीष्म साहनी जी पर एक बड़ा ही सुंदर और भावनात्मक संस्मरण है, जिसका शीर्षक है, 'वह हँसी बहुत कुछ कहती थी!' और इस संस्मरण के अंत में देखिए कि मनु जी कितने सुंदर ढंग से लेखक की शख्सियत का बखान करते हैं और मन पर पड़े उसके प्रभाव को बड़े निर्मल ढंग से सामने रख देते हैं -

"भीष्म जी का समूचा लेखन इस बात के लिए ललकारता है कि हम हिंदीभाषी लोग अपने बड़े लेखकों और समाज के बीच की खाई को पाटें, तो उन बहुत से नैतिक प्रश्नों के उत्तर भी खोज सकते हैं, जो आज पूरे भारतीय समाज में उथल-पुथल मचा रहे हैं। भीष्म जी के साहित्य में वह बहुत कुछ है, जो आज फिर से हमें मनुष्य होने की संवेदना से भरकर अपनी जड़ों की तलाश में मदद देता है और अपनी कमजोरियों से उबरकर भविष्य की ओर देखने की शक्ति देता है। इस लिहाज से भीष्म जी के साहित्य के पुनर्पाठ की चुनौती आज हम सभी के सामने है।"

ठीक ऐसे ही रामदरश मिश्र जी सरलता और सादगी का मनु जी पर बहुत गहरा असर पड़ा। और यह सरलता और सादगी केवल रामदरश जी की शख्सियत का ही हिस्सा नहीं है, बल्कि उनका समूचा लेखन ही इसकी बड़ी ही खूबसूरत मिसाल है। लगता है, जैसे रामदरश जी प्रेमचंद की ही परंपरा को आगे बढ़ रहे हों। इस लिहाज से रामदरश जी की गजल 'बनाया है मैंने यह घर धीरे-धीरे' एक तरह से रामदरश जी के पूरे जीवन की कहानी कह देती है। मनु जी लिखते हैं -

"'सहचर है समय' पढ़कर पता चलता है कि निपट गँवई गाँव का एक अभावों में पलता और थोड़ा-सा झिझका हुआ भयकातर बच्चा कैसे धीरे-धीरे अपनी सीमाओं और अभावों से टकराता

है, अपने समय के थपेड़े झेलता है और धीरे-धीरे राह बनाता हुआ आगे निकलता जाता है। इस रास्ते में उसे दुख, अपमान, बार-बार की पराजय, विश्वासघात के धक्के और जख्म, क्या कुछ नहीं मिला। लेकिन सबको वह अपने समय का प्रसाद मानकर ग्रहण करता है। और अपनी ही गति से एक ईमानदार राह पर आगे बढ़ता जाता है। तमाम हैं, जो शॉर्टकट के सहारे आगे निकलना चाहते हैं, बहुत-से उसे टँगड़ी मारकर भी आगे बढ़ जाना चाहते हैं। वह सबको देखता है समझता है, पर अपनी राह नहीं छोड़ता और एक दिन उसी राह पर चलते-चलते वह हासिल करता है, जो किसी भी लेखक का, एक सच्चे और ईमानदार लेखक का प्राप्य है।"

इसी तरह रामदरश जी की आत्मकथा 'सहचर है समय' मनु जी को बहुत प्रिय है, जिसमें रामदरश जी ने अपनी आत्मकथा के बहाने अपने पूरे समय की कथा कह दी है। इसे पढ़कर मनु जी ने जो पंक्तियाँ लिखी हैं, उससे उनकी बारीक निगहहानी का पता चलता है -

"खास बात यह है कि आत्मकथा लिखते समय रामदरश जी कैमरे का 'लेंस' सिर्फ खुद पर नहीं रखते, उसे लगातार अपने साथियों और सहयात्रियों पर घुमाते रहते हैं।"

और फिर इस संस्मरण का अंत बेहद मार्मिक है, जिससे इसके शीर्षक का औचित्य सामने आ जाता है -

"हालाँकि अपनी लेखकीय उपलब्धियों को हासिल करने के लिए उन्होंने न कभी उतावली दिखाई और न औरों की तरह बढ़-चढ़कर हाथ मारे। उनकी एक बढ़िया और बहुचर्चित गजल के शेर चंद अल्फाज में उनके संघर्ष की पूरी कहानी कह डालते हैं :-

बनाया है मैंने ये घर धीरे-धीरे,
खुले मेरे ख्वाबों के पर धीरे-धीरे।
किसी को गिराया न खुद को उछाला,
कटा जिंदगी का सफर धीरे-धीरे।
जहाँ आप पहुँचे छलाँगें लगाकर,
वहाँ मैं भी आया, मगर धीरे-धीरे। ३
जमीं खेत की साथ लेकर चला था,
उगा उसमें कोई शहर धीरे-धीरे।
मिला क्या न मुझको ए दुनिया तुम्हारी,
मोहब्बत मिली, मगर धीरे-धीरे।"

मनु जी आगे बड़े मार्मिक शब्दों में लिखते हैं, "जहाँ छलाँगें लगाने वाले लोगों का ही बोलबाला हो, वहाँ अब भी रास्ते पर धीरे-धीरे मगर दृढ़ता से चलता एक ईमानदार आदमी मिल जाए, यह चीज खुद में क्या आस्था देने वाली नहीं है। क्या यही वजह नहीं है कि रामदरश जी का पूरा साहित्य आदमी पर विश्वास और आस्था का साहित्य है और उन्हें पढ़ना अपने आपसे

मिलने जैसा है!"

पुस्तक में ऐसे ही और भी साहित्यकारों के एक से एक रसमग्न कर देने वाले संस्मरण है, जिन्हें आप खुद पढ़ें, तभी उनका पूरा आनंद आएगा। किंतु एक बात का विश्वास मैं जरूर दिला सकता हूँ कि इस पुस्तक को पढ़ने के बाद आप अपने आप को भीतर-बाहर से बदला हुआ महसूस करेंगे। इस मानी में यह पुस्तक आपको कहीं अधिक सभ्य और सुसंस्कृत बनाएगी। और बेशक यह आपके अंदर के आदमीपन को हरा कर देने की सामर्थ्य लिए हुए है।

सच पूछिए तो प्रकाश मनु जी के आत्मीय संस्मरणों की पुस्तक 'साहित्य मनीषियों की अद्भुत दास्तानें' इतनी रोचक, रसपूर्ण और किस्सागोई वाले आनंद से लबरेज है कि एक बार पढ़ना शुरू करने के बाद आप इस बातकही की दुनिया से बाहर आना ही नहीं चाहेंगे। कम से कम मैं तो जितनी देर तक इसने डूबा रहा, उतना ही आत्मिक सुख में भीगता रहा। उम्मीद है कि मेरी ये चंद सतरें पाठकों को भी बड़ी ही रसपूर्ण बतकही से निकले रंग-रंग के इन भावनामक संस्मरणों के निर्मल सरोवर में नहा लेने को प्रेरित करेंगी।

अभिषेक मिश्र, 148 गली न. 6, ज्वाला नगर, शाहदरा, दिल्ली - 110032
मो. : 8178500732, ई-मेल - abhishekdpb@gmail.com

✧ ✧ ✧

हिंदी बाल उपन्यासों के मौन नायक व साधक प्रकाश मनु जी

अमित कुमार

मनु जी तो वाकई बहुत भावुक और संवेदनशील व्यक्तित्व वाले साहित्यकार हैं। उनकी निश्छल वाणी में वही सहृदयता व मिठास की अनुगूँज है, जो उनके बाल साहित्य में बिखरी पड़ी है। मनु जी की एक खास बात यह है कि उनकी बातों का जादू हर बड़े से बड़े साहित्यकार से लेकर छोटे से छोटे शोधार्थी पर भी इतना तारी हो जाता है कि वे समझ ही नहीं पाते कि हम कब मनु के हो गए या कब मनु जी हमारे हो गए। कोई भी अबोध साहित्यकार या शोधार्थी मनु जी से पहली बार बात करने पर यह नहीं कहेगा कि मैं उनसे पहली बार बात कर रहा हूँ। किसी बड़े साहित्यकार को लेकर हमारे हृदय में जो डर, झिझक या कह लीजिए घबराहट की एक हलकी-सी रेखा खिंची रहती है, वह मनु जी से बातें करते ही कैसे मिट जाती है, हमें पता भी नहीं चलता।

कोई चार बरस पहले की बात। घर के हालात अच्छे नहीं थे। जल्दी से जल्दी मुझे कोई नौकरी पकड़नी चाहिए थी, जिससे घर वालों की थोड़ी आर्थिक मदद कर सकूँ। कितनी कठिनाई से उन्होंने अब तक मुझे पढ़ाया-लिखाया था और अब मेरे सामने थोड़ा ऋण उतारने का अवसर था। एम.ए में प्रथम श्रेणी। अंक बहुत अच्छे थे। मेरे अध्यापक मुझसे प्रसन्न थे। मुझे भी बहुत अच्छा लग रहा था। हर समय साहित्य की दुनिया में लीन रहता और कभी-कभी तो लगता, मन एक नए क्षितिज की ओर उड़ता जा रहा है। विचारों की रेलपेल शुरू होती तो मन दुनियादारी से बहुत दूर चला जाता। इधर कुछ अरसे से कविताएँ भी लिखने लगा था और लिखते हुए कुछ ऐसे एकांत में चला जाता कि मन होता, ये एकांत के क्षण कभी खत्म न हों।

पर फिर वास्तविकता की जमीन पर पाँव पड़ते, तो मन परेशान-सा हो जाता। लगता, मुझे जल्दी से जल्दी नौकरी पकड़ लेनी चाहिए। लेकिन फिर मैं सोचता, कौन-सी नौकरी मुझे मिलेगी? भले ही एम.ए. में अच्छे नंबर हैं, पर केवल एम.ए. पास करने से होता क्या है? तो फिर मन में चल पड़ता, मुझे शोध करना चाहिए। मेरा मन तो उसमें रमेगा ही। साथ ही शोध के बाद प्राध्यापकी भी मिल जाएगी। तब निश्चिंत होकर परिवार वालों की

आर्थिक सहायता भी कर सकूँगा। घर की हालत थोड़ी सुधरेगी।

यों बार-बार मन शोध की ओर भागता। शोध मेरे जीवन का सपना भी था। अब उसे पूरा करने का अवसर मेरे सामने था, तो भला उसे कैसे छोड़ दूँ? अंतत मैंने तय कर लिया कि चाहे जैसे भी हो, मुझे शोध करना है और पूरी तरह लीन होकर खूब मेहनत और लगन से कोई बड़ा काम कर दिखाना है।

लेकिन भला शोध के लिए विषय क्या हो? मैं अपने मन के किसी विषय पर शोध करना चाहा था, ताकि शोध कोई थोपा हुआ काम न लगे। मैं पूरी तरह उसमें डूब जाऊँ।

यों अपने शोधकार्य के लिए जब मैं कोई अच्छा-सा विषय चुनने की छानबीन में लगा हुआ था, तो मैंने राजस्थान के एक प्रोफेसर विवेक शंकर की पुस्तक 'हिंदी साहित्य' में एक स्थान पर प्रकाश मनु जी का नाम पढ़ा। साथ में दिखाई दिए उनके तीन उपन्यास 'यह जो दिल्ली है', 'कथा-सर्कस' व 'पापा के जाने के बाद'। उपन्यासों के नाम बहुत आकर्षक थे, जैसे अपनी ओर खींच रहे हों। तो फिर यह प्रकाश मनु भला हैं कौन, जिन्होंने ऐसे उपन्यास लिखे हैं? मेरे भीतर उधेड़बुन-सी शुरू हो गई।

मैंने अपने मोबाइल का सहारा लेते हुए गूगल और अन्य माध्यमों पर जब मनु जी के बारे में कुछ और पढ़ा, तो पाया कि उन्होंने जितना साहित्य बड़ों के लिए लिखा है, उससे कई गुना बच्चों के लिए भी लिखा है, और उनके लिखे में कुछ अलग ही बात है। मुझे लगा, प्रकाश मनु इतनी दूर से ही मुझे खींच रहे हैं और मैं उनके आकर्षण के जादू में बँधता जा रहा हूँ।

फिर तो मन में उन्हें जानने की एक ललक-सी पैदा हो गई। मैं मोबाइल से ही कई दिनों तक उनके लेख, कविताएँ आदि पढ़ता चला गया। साथ ही मेरे मन में यह बात भी हिलोरें मारने लगी कि मैं अपने शोध का विषय बाल साहित्य को चुनूँगा, और उसमें भी प्रकाश मनु जी का बाल साहित्य।

प्रकाश मनु जी को मुझे मनु जी कहना ज्यादा प्यारा और अच्छा लगता है। इसमें मन की थोड़ी निकटता-सी है, अनौपचारिकता भी। फिर उनका पूरा नाम लेने में एक झिझक सी महसूस होती है। इसलिए मैं प्यार से उन्हें मनु जी ही कहता हूँ। उन्हें पास से देखने का सौभाग्य मुझे अभी तक प्राप्त नहीं हुआ, पर हाँ, विभिन्न माध्यमों पर उनकी लिखी जो रचनाएँ मैंने पढ़ीं, उनमें मुझे मनु जी का संपर्क नंबर जरूर मिल गया था। मन हुआ, मैं उनसे बात करूँ। मन में हलकी-सी झिझक थी, पर उत्सुकता भी बहुत थी। सोच रहा था, जिन्होंने इतनी अच्छी रचनाएँ लिखी हैं, भला वे बात किस तरह करेंगे? कहीं ऐसा तो नहीं कि वे मुझसे ठीक से बात ही न करें।

पर जब मनु जी से मेरी बात हुई, तो पहली बार में ही मैं उनकी आवाज का कायल या कह लीजिए मुरीद हो गया। मुझे उनकी आवाज में एक साथ अनेक भावों के दर्शन हो रहे थे। ऐसी वात्सल्यपूर्ण मधुर आवाज, जो पहली बार में ही सबको अपनी ओर खींच लेती है। मुझे उनमें एक

ही साथ एक शिक्षक, दिशा-निर्देशक, एक सफल सहित्यकार, एक पिता जैसा प्रेम, साथ ही गुरु जैसे निर्देशक-एक साथ सबकुछ ही तो समाया हुआ लग रहा था। मैंने मनु जी को अपने शोध के विषय में बताया कि मैं उनके बाल साहित्य को आधार बनाकर शोधकार्य शुरू करने जा रहा हूँ, तो वे अत्यंत प्रसन्न हुए। तब तक मैंने अपना विषय भी तय कर लिया था 'प्रकाश मनु का बाल साहित्य : संवेदना एवं शिल्प'। मनु जी विषय सुनकर और भी प्रसन्न हुए, क्योंकि संवेदना एवं शिल्प को आधार बनाकर उनके बाल साहित्य पर अभी तक शोध नहीं हुआ था।

तब मनु जी ने मेरी सहायतार्थ बहुत-सी सामग्री मेरे पास ई-मेल से ही भेज दी, जिससे मुझे अपने शोध के विषय को पास करवाने में कोई तकलीफ नहीं हुई और इस तरह मेरे शोध का कार्य शुरू हो गया। अब धीरे-धीरे मैंने मनु जी का बाल साहित्य मँगवाकर पढ़ना शुरू किया। उनके लेखन के जरिए उन्हें और गहराई से जाना और समझा, तो पाया कि मनु जी तो वाकई बहुत भावुक और संवेदनशील व्यक्तित्व वाले साहित्यकार हैं। उनकी निश्छल वाणी में वही सहृदयता व मिठास की अनुगूँज है, जो उनके बाल साहित्य में बिखरी पड़ी है। मनु जी की एक खास बात यह है कि उनकी बातों का जादू हर बड़े से बड़े साहित्यकार से लेकर छोटे से छोटे शोधार्थी पर भी इतना तारी हो जाता है कि वे समझ ही नहीं पाते कि हम कब मनु के हो गए या कब मनु जी हमारे हो गए। कोई भी अबोध साहित्यकार या शोधार्थी मनु जी से पहली बार बात करने पर यह नहीं कहेगा कि मैं उनसे पहली बार बात कर रहा हूँ। किसी बड़े साहित्यकार को लेकर हमारे हृदय में जो डर, झिझक या कह लीजिए घबराहट की एक हलकी-सी रेखा खिंची रहती है, वह मनु जी से बातें करते ही कैसे मिट जाती है, हमें पता भी नहीं चलता।

मनु जी ने बच्चों के लिए भरपूर साहित्य लिखा है और बहुत रुचिकर ढंग से लिखा है। उन्होंने बाल साहित्य में कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि सभी चर्चित विधाओं में लिखा है। लेकिन मेरा मन उनके बाल उपन्यासों में अधिक रमा है। पहला कारण यह है कि मुझे कहानी के साथ-साथ दूर-तलक और देर-तलक चलने में ज्यादा मजा आता है, क्योंकि उपन्यास का रसात्मक बहाव हमारे मन पर देर तक अपना आकर्षण बनाए रखता है। किसी कहानी की घटना को पढ़कर एक बार हम भूल सकते हैं, परंतु यदि हम किसी रोचक उपन्यास को पढ़ें तो वह घटना हम शायद ताउम्र याद रखते हैं, जैसे 'गोदान' व 'गुनाहों का देवता' जैसे उपन्यास।

प्रकाश मनु जी के उपन्यासों की भी यही खास बात है, फिर चाहे वे बड़ों के लिए लिखे गए उपन्यास हो या बच्चों के लिए। लेकिन यह बात भी सच है कि मनु जी ने बच्चों के लिए जो बाल उपन्यास लिखे हैं, उनमें उनका मन बहुत रमा है। प्रकाश मनु जी ने अपने पहले ही बाल उपन्यास 'गोलू भागा घर से' का कैनवास अपने जीवन से जोड़कर तैयार किया है। जब मेरी उनसे बात हुई तो उन्होंने बताया कि बेटे, 'गोलू भागा घर से' उपन्यास में गोलू के चरित्र के रूप में कहीं न कहीं मैं ही हूँ। बचपन में मैं किसी बात को लेकर घर से निकल गया था। लेकिन मैं निकल तो गया, पर बाद में मुझे किन-किन परेशानियों का सामना करना पड़ा, इसका बहुत कुछ मिलता-जुलता रूप

और चरित्रांकन आप गोलू के रूप में देख पाएँगे। गोलू का व्यक्तित्व हर उस भावुक पाठक के हृदय को द्रवीभूत कर देता है, जो उसे डूबकर पढ़ता है।

मुझे अब भी याद है, 'गोलू भागा घर से' उपन्यास के मध्य पड़ाव तक आते-आते मेरी आँखें नम होने लगी थीं और आँखों के कोने से आँसू की कुछ बूँदों ने मेरे गालों को भिगो दिया था। गणित में थोड़े कम अंक आने पर घर वालों का उसके प्रति रूखा व्यवहार। स्कूल में गणित के अध्यापक उसे बार-बार बेंच पर खड़ा कर देते। उसे मूर्ख व पागल जैसे शब्द सुनने को मिलते। गोलू को हिंदी की पुस्तकें पढ़ने का बहुत शौक था और उसका मन भी उन्हीं में रमता था, मगर गणित तो उसके लिए एक सींग वाला डरावना पशु ही बन गया था, जो उसके ख्वाबों में भी आ-आकर उसके पीछे भागा करता था। बाहर से ठीक-ठाक दिखने वाला गोलू अंदर ही अंदर टूटता जा रहा था। रोज-रोज उसे घर और बाहर सबके ताने और डाँट सुनने को मिलती। तब गोलू इस वातावरण से बाहर निकल जाने का मन बना ही लेता है और एक दिन वह घर से भाग जाता है।

कहते हैं कि व्यक्ति की अहमियत उसके घर रहते पता नहीं चलती। जब वह चला जाता है, तब सबको उसकी याद भी आती है और उस पर प्यार भी आता है। यही हालत गोलू के मम्मी-पापा की भी होती है। वे उसे बहुत ढूँढ़ते हैं, तड़पते हैं और रोते हैं, पर गोलू तो अब घर छोड़कर, कुछ निश्चय करके निकल गया था। गोलू को दिल्ली जैसे महानगर में कुली, घरेलू नौकर और फैक्टरियों में कोई छोटा-मोटा काम करने को मजबूर होना पड़ता है। जब शुरुआत में ही कुली के रूप में गोलू पाँच रूपए में एक यात्री का कुछ घरेलू सामान अटैची वगैरह उठाता है और वे जाते वक्त गोलू के हाथ पर दस का नोट रखते हैं, तब गोलू का अंतर्मन कह ही उठता है, 'वाह गोलू वाह...! इसीलिए आया था न तू दिल्ली में? तेरा भाई अभी कुछ समय में इंजीनियर बनके आ जायेगा और तू ऐसे ही पाँच-पाँच रुपए की कमाई करके पक्का कुली हो जाएगा।...वाह-वाह!'

अब गोलू को एक घर में घरेलू नौकर का काम मिलता है, जिसमें उसे घर की साफ-सफाई, जूठे बर्तन धोने और बच्चे को खिलाने, उसका खयाल रखने का काम मिलता है, उसके बाद भी घर की मालकिन सरिता मैडम की जली-कटी सुनने को मिलती है। बाद में उसे शक व चोर की निगाह से भी देखा जाता है। इन सब परिस्थितियों से विचलित होकर गोलू दुखी मन से यहाँ से भी चला जाता है। यहाँ से जाते वक्त मास्टर जी गोलू को जीवन का एक मूल मंत्र देते हैं, "याद रख गोलू, मुश्किलों का सामना करके तुझे उन्हें खत्म करना है, वरना मुश्किलें तुझे खत्म कर देंगी।" और इस प्रकार गोलू मन के अनेक सपनों, इच्छाओं को भीतर दबाए, बड़े निराश मन से यहाँ से भी चल देता है।

इस बेगाने अनजान शहर में जहाँ एक ओर गोलू को घर की याद सता रही थी, वहीं दूसरी ओर खुले आकाश तले बैठा वह तरह-तरह की बातें सोच रहा था। गोलू जिस तरह घर से भागकर आ गया था, वह वैसे ही घर वापस नहीं जाना चाहता था। वह बहुत से सपने लेकर आया

था, जिन्हें साकार करने का संकल्प उसके मन में था, तो घर के लिए बहुत सारी खुशियाँ एक साथ ले जाने का दृढ़ निश्चय भी। परंतु अभी तो उसके पास दो जून की रोटी का सहारा भी नहीं था।

कहते हैं कि जब सब रास्ते बंद होते नजर आते हैं तो किसी-न-किसी को ईश्वर हमारा अन्नदाता या मित्र बनाकर जरूर भेज देता है, जो कुछ पल के लिए ही सही हमारा सुख-दुःख का साथी बनता है। गोलू के साथ भी वैसा ही होता है। रणजीत का गोलू के जीवन में उस समय आना जब वह बिल्कुल अकेला पड़ गया था, किसी आश्चर्य से कम न था। वह गोलू को अपने साथ दिल्ली घुमाता है और उसे उस फैक्टरी में काम दिलवाने की भी बात करता हैं, जिसमें वह खुद लगा था। गोलू भी रंजीत के साथ खूब घुल-मिल गया था। अब उसे बहुत आनंद आने लगा था। पर जब जल्दी ही रंजीत मुम्बई जाने का मन बना लेता है और एक दिन चला भी जाता है, तो गोलू एकदम अकेला पड़ जाता है।

इस बार गोलू एक रहस्यपूर्ण शख्स बिन पॉल के चंगुल में पड़ जाता है। वे गोलू को किसी काम के लिए नहीं कहते। उसे अच्छा खाने-पीने को, पहनने को मिलता है और रहने को आलीशान कोठी आदि में व्यवस्था कर दी जाती है। पर गोलू को आगे चलकर उसके जरिए कुछ गैर-कानूनी काम करने पड़ते हैं। गोलू बच्चा है, इसलिए कोई शक भी नहीं करता। लेकिन गोलू की आत्मा उसे कचोटती है। तब गोलू ने बड़ी चालाकी व होशियारी से पुलिस की गाड़ी में बैठकर, डी.आई.जी. साहब को सब वृत्तांत कह सुनाया। उन्होंने गोलू को बहुत शाबाशी दी और उस जासूसी के गिरोह को पकड़ लिया गया।

उसके बाद गोलू की बहादुरी की प्रशंसा और गहरी चर्चे चारों ओर फैलने लगे। गोलू के कसबे मक्खनपुर में भी चारों ओर उसी का जिक्र हो रहा था। तब डी.आई.जी साहब ने सम्मानपूर्वक गोलू को घर भिजवाया। अब गोलू के भाई-बहन, माता-पिता गाँव वाले सब उसे बहुत प्यार करते और हँसते-खेलते गोलू के दिन कटने लगे।

प्रकाश मनु जी ने यह उपन्यास बड़े ही संवेदनशील क्षणों में लिखा था। इसका एक कारण यह भी है कि गोलू के जीवन की घटनाओं के तार मनु जी के जीवन से जुड़े है। यह मनु जी ने भी स्वयं स्वीकारा है। इस कथा का ताना-बाना मनु जी के मन में बहुत लंबे समय से चल रहा था। उन्होंने अपनी सर्जनात्मक कल्पना के जरिए गोलू का एक ऐसा बिंब तैयार किया है, जो पाठक के संवेदनशील हृदय को झकझोर कर रख देता है।

आज समाज में गोलू जैसे न जाने कितने बच्चे और युवा है, जो घरवालों की छोटी-छोटी बात को दिल पर लेकर घर से भाग खड़े होते हैं, और बाद में मजबूरियाँ और परिस्थितियाँ उनसे क्या-क्या नहीं करवाती। इसका साक्षात उदाहरण के रूप में रेलवे प्लेटफार्मों, चाय की दुकानों, फैक्टरियों तथा अनेक धंधों में लगे छोटे-छोटे बालकों एवं युवाओं को देखा जा सकता है। इसके साथ ही सड़कों पर भीख माँगते अनेक बालकों को हम अपनी रोजमर्रा की जिंदगी में देखते रहते हैं।

अकसर कहा जाता है कि बाल साहित्य में कल्पनागत उड़ानों एवं काल्पनिक घटनाओं का ही सहारा लिया जाता है। लेकिन मनु जी ने 'गोलू भागा घर से' उपन्यास को यथार्थवादी शैली में लिखा है और वह भी अपने जीवन की सत्य घटना को आधार बनाकर। पाठक जब इस उपन्यास की कथाभूमि में प्रवेश करता है तो वह अपने संवेदनात्मक हृदय को थामकर बैठ जाता है। बीच-बीच में कभी-कभार वह मुसकरा भी लेता है, लेकिन उन क्षणों में भी उनकी आँखें गोलू के संघर्ष को देखकर डबडबाती रहती हैं। कभी-कभी इस यात्रा में उसकी आँखों से आँसू की बूँदें छलक पड़ती है, तो कभी उसके चेहरे पर किंचित हँसी की प्रसन्न उजास दिखाई दे जाती है। इस उपन्यास का अंत मनु जी ने सुखात्मक रूप में किया है। इस दृष्टि से यदि हम देखें, तो यह उपन्यास प्रेमचंद के आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की श्रेणी के उपन्यासों के निकट पड़ता है।

मनु जी ने 'गोलू भागा घर से' उपन्यास में दुख की गहरी स्याही कुछ ज्यादा ही बिखेर दी है, जिससे पाठकों का करुणापूर्ण हृदय गोलू के प्रति अत्यंत भावुक एवं संवेदशील हो जाता है। चूँकि यह बाल उपन्यास था, तो यहाँ बच्चों के मनोरंजन, हलके-फुलके हास्य-विनोद के क्षणों या हँसी के फव्वारों जैसी चहलकदमी न के बराबर ही बनी रही है। इसे ध्यान में रखते हुए प्रकाश मनु जी ने अपना अगला बाल उपन्यास 'एक था ठुनठुनिया', 'गोलू भागा घर से' के एकदम विपरीत, बल्कि दूसरे छोर पर जाकर लिखा। 'एक था ठुनठुनिया' हँसी से लोट-पोट कर देने वाला, बच्चों को खूब हँसाने वाला और उनका खूब मनोरंजन करने वाला उपन्यास है। इसमें ठुनठुनिया के सामने घर की अनेक परेशानियाँ थीं, फिर उसकी अपनी चिंताएँ थीं, घर की लाचारी थी, गरीबी के कसमसाते दिन थे, फिर भी ठुनठुनिया इससे हताश नहीं होता। उसने इन सब विपरीत स्थितियों से लड़ना सीखा है। हर संघर्ष, हर परिस्थितियों में जीना सीखा है, व अपने आपमें हर परिस्थिति में खुश रहना सीखा है।

मनु जी के जीवन का प्रभाव सीधे-सीधे 'गोलू भागा घर से' उपन्यास के कथानायक गोलू के चरित्र पर पड़ा है। वहाँ घटनाएँ गोलू के जीवन और मनु के जीवन में उस क्षण में साम्य रखती है, जब मनु जी भी घर से किसी बात को लेकर भाग जाते हैं। इसी तरह कहीं न कहीं ठुनठुनिया का चरित्र, कथा का वातावरण व घटनाएँ मनु जी के संपूर्ण जीवन के अनुभव से साम्य रखती हैं।

ठुनठुनिया के मन में जहाँ एक ओर पिता के न होने का बहुत बड़ा दुख है, वहीं दूसरी ओर घर की तंगी और गरीबी में जीवन गुजारने की माँ की लाचारी है। इन सब में भी माँ अपने लाड़ले बेटे को पढ़ा-लिखाकर कुछ बनाना चाहती है, ताकि उसकी तिल-तिल कटती जिंदगी में खुशियों की बहार पुनः लौट आए। मगर ठुनठुनिया का मन तो कभी मालपुए खाने, कभी मस्ती में बाँसुरी बजाने, कभी भालू बनकर गाँव वालों को डराने, तो कभी भालू का मुखौटा पहनकर नाचने में लगता है। इन सब कामों में उसे खूब मजा आता है, और इस तरह ठुनठुनिया अपनी मस्ती में मस्त रहने वाला पात्र है।

'ठुनठुनिया' जैसे पात्र के साथ मनु जी का मन ऐसा रमा कि कलम उसके व्यक्तित्व को,

उसके संवादों को, उसकी हँसी-ठिठोली को बस गढ़ती चली गई और ठुनठुनिया जैसे पात्र के व्यक्तित्व और उसके चारित्रिक गुणों में निखार आता चला गया।

जब मैं मनु जी के इन दो बाल उपन्यासों को पढ़कर मनु जी के व्यक्तित्व और उनके द्वारा कल्पित किये गये पात्रों के चरित्र तथा उनकी जीवन-शैली का मंथन कर रहा था तो मैंने जाना कि प्रकाश मनु जी बहुत ही भावुक व्यक्ति हैं। वे जिस पात्र की जीवन-शैली को गढ़ने बैठते है, यदि वह पात्र भावुक है तो मनु जी भी उनके साथ इतने अधिक भावुक हो जाते हैं कि उनके साथ दो आँसू भी बहा लेते हैं, तो कभी चुपके से रो लेते हैं। जैसे गोलू के साथ, क्योंकि गोलू के जीवन के तार कहीं न कहीं मनु जी के जीवन के तारों के साथ जुड़े हुए हैं। दूसरी और ठुनठुनिया जैसे चरित्र को गढ़ने में उनकी विनोद-वृत्ति और सर्जनात्मक रचना-शैली ने पाठकों को खूब हँसाया, खूब रिझाया है। स्वयं मनु जी भी उसके साथ-साथ खूब हँसते चलते हैं।

ऐसा नहीं है कि ठुनठुनिया के सामने परेशानियाँ नहीं है या उसके मन में कोई चिंता नहीं है। उसकी अपनी भी समस्याएँ हैं, और माँ की कुछ सहज आकांक्षाएँ हैं, उनके सपने है। मगर वह एकबारगी इन सबसे निजात पाकर वह फिर से अपनी मस्ती की धुन में खो जाता है। कहीं मालपुए खाना, कहीं भालू बनकर गाँव वालों को डराना तथा बाद में उनका खूब मनोरंजन करना, तो कहीं कंचे खेलना, कहीं पतंग उड़ाना, कहीं नए-नए यार-दोस्तों के साथ नौका-यात्रा करना आदि अजब-गजब खेल थे ठुनठुनिया के।

मनु जी भी मनु जी ही हैं। वे अपनी कहानी को ऐसे आगे बढ़ाते हैं, जैसे हम किसी फिल्म थिएटर में बैठकर बड़े मजे में फिल्म देख रहे हो, जिसमें दृश्य के बाद दृश्य बदलते जाते हैं, चित्र के बाद चित्र बदलते जाते हैं और हमारा मन चाह रहा होता है कि हम सब दृश्यों, सब चित्रों को बस एक साँस में देख जाएँ।

मनु जी ने अपने इन दोनों उपन्यासों में बालक के मन के दो अलग-अलग छोरों को पकड़ने की कोशिश की है, जहाँ एक छोर पर एक अत्यंत उदास मन वाला बालक अपने जीवन की हताश, उदास परिस्थितियों में जीने को अभ्यस्त है। परिस्थितियाँ उससे जो कुछ करवाती हैं, वह करता चला जाता है, वहीं दूसरी ओर ठुनठुनिया जैसा बालक है जो बाहर की सब परेशानियों से एकबारगी मुक्त होकर, बड़े अलमस्त ढंग से जीवन जीना चाहता है तथा खूब मौज-मस्ती करता है। वह बच्चों व बड़ों को खूब हँसाता है। प्रकाश मनु जी के ये दोनों बाल उपन्यास हिंदी बाल साहित्य जगत में अपना विशेष स्थान रखते हैं।

मनु जी का बाल उपन्यास 'एक था ठुनठुनिया' पाठकों द्वारा इतना सराहा गया कि सन् 2010 में साहित्य अकादमी द्वारा इसे प्रथम बाल साहित्य पुरस्कार से अलंकृत किया गया है।

मनु जी की एक बड़ी विशेषता यह है कि वे किस्सागो शैली के साहित्यकार हैं। वे अपने उपन्यासों, कहानी, नाटकों आदि में पात्रों की मनःस्थिति और के चरित्र के अंतःस्थल में पहुँचकर,

उसके अनुसार ही संवादों और शब्दों को गढ़ते चलते हैं और इसी सब के बीच कहानी या उपन्यास कब बनता चला जाता है, यह उन्हें भी पता नहीं चलता है। फिर चाहे वह बड़ों के लिए लिखा गया साहित्य हो या फिर बच्चों के लिए लिखी गई कृतियाँ हों, उनका ढंग नहीं बदलता, और वे खुद अपने रचे हुए चरित्र और कथानक में पूरी तरह खो जाते हैं।

मनु जी ने बच्चों के लिए एक से बढ़कर एक उपन्यास लिखे, जिन्होंने हिंदी बाल प्रेमियों, बाल साहित्यकारों और पाठकों का खूब मन मोहा है। 'एक था ठुनठुनिया' बाल उपन्यास के बाद प्रकाश मनु जी ने 'खुक्कन दादा का बचपन', 'चीनू का चिड़ियाघर', 'नन्ही गोगो के अजीब कारनामे', 'पुंपू और पुनपुन' तथा 'खजाने वाली चिड़िया' जैसे एक से एक लाजवाब उपन्यास लिखे हैं। हिंदी बाल उपन्यास की धारा में बेशक उनका अलग स्थान है।

सच तो यह है कि हिंदी बाल उपन्यास को मनु जी ने अपने एक से एक सुंदर और विविधता भरे उपन्यासों से बहुत समृद्ध किया है।

अमित कुमार, शोधार्थी, हिंदी विभाग, विजय सिंह पथिक राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कैराना (शामली), मो० : 7505803271

पटना पुस्तक मेला में प्रलेक प्रकाशन के स्टॉल पर बुद्धिनाथ मिश्र के गीत संग्रह 'गीत उत्तरा फाल्गुनी' के लोकार्पण के अवसर पर साहित्यानुरागी विद्वतजन।

मंत्रिमंडल सचिवालय, बिहार सरकार के राजभाषा विभाग द्वारा आयोजित सृजनात्मक लेखन कार्यशाला (हिंदी कथा साहित्य) का उद्घाटन करते हुए डॉ. ओम प्रकाश वर्मा, श्री सुमन कुमार, डॉ. कुमार वरुण, साहित्य यात्रा के संपादक, कथाकार डॉ. कलानाथ मिश्र, डॉ. शिवदयाल, डॉ. निवेदिता और डॉ.ध्रुव कुमार।

RNI No. : BIHHIN05272
ISSN 2349 - 1906
Postal Registration No. : PT-7C

डॉ. कमल किशोर गोयनका

11 अक्टूबर, 1938 - 01 अप्रैल, 2025

डॉ. कमल किशोर गोयनका उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द के साहित्य के सर्वोत्तम विद्वान शोधकर्ता के रूप में जाने जाते हैं। प्रेमचन्द पर उनकी अनेक पुस्तकें व लेख प्रकाशित हो चुके हैं। प्रवासी हिन्दी साहित्य की दिशा में भी उन्होंने बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया। हिंदी साहित्य में अनेक साहित्यकारों पर रुचि के साथ उन्होंने गहन अध्ययन करते हुए तथ्यों का उद्घाटन किया। साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित प्रेमचन्द ग्रंथावली के संकलन एवं सम्पादन में उनका विशेष योगदान है।

उनके साहित्य सेवा के लिए उन्हें 'व्यास सम्मान' समेत अनेक अलंकरणों से समय-समय पर सम्मानित किया गया है। विगत् 1 अप्रैल, 2025 को उनके देहावसान से हिंदी जगत को अपूरणीय क्षति पहुँची है। साहित्य यात्रा की ओर से उन्हें विनम्र श्रद्धांजलि।